सुमन भारती प्रकाशन
जमशेदपुर - 831001

शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि

संपादक - दिनेश

शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि

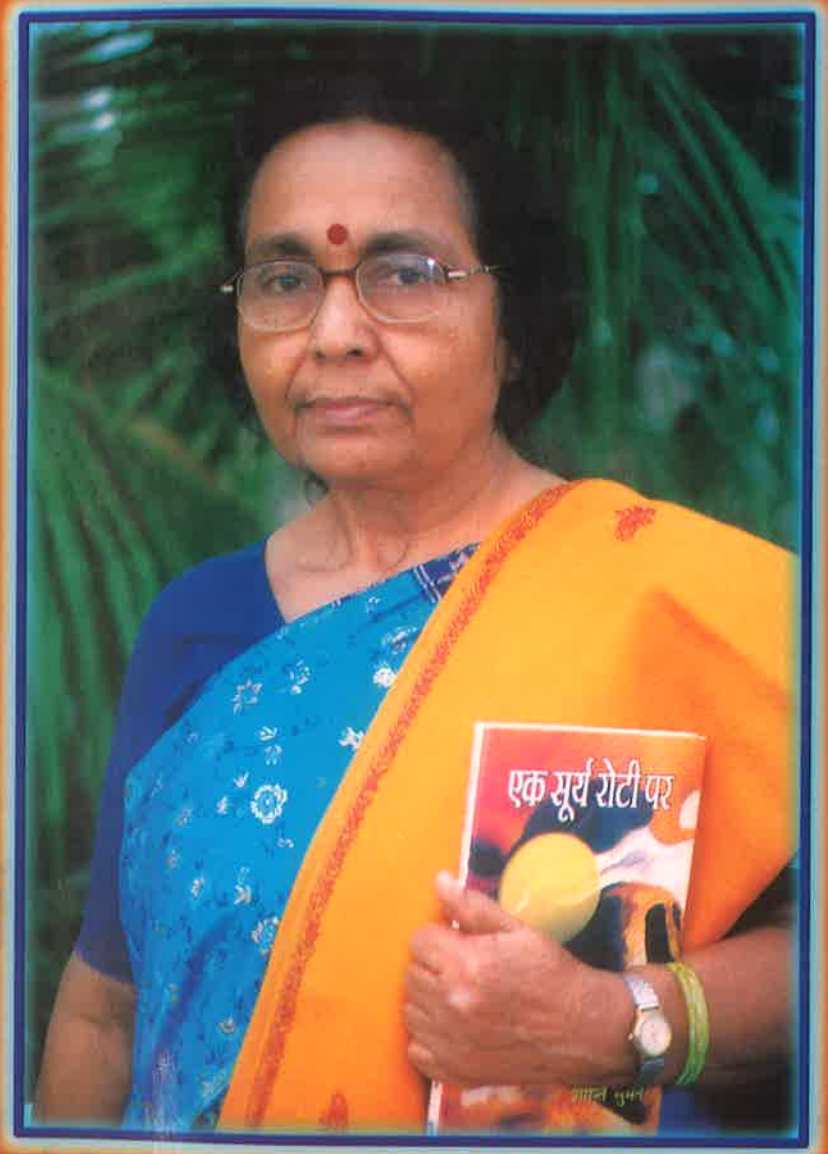

शान्ति सुमन की
गीत-रचना और दृष्टि

संपादक
दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश'

शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि

संपादक

दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश'

प्रकाशक

सुमन भारती प्रकाशन

1/26, काशीडीह,

जमशेदपुर - 831001

शान्ति सुमन की
गीत-रचना और दृष्टि

संपादक — दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश'
प्रकाशक — सुमन भारती प्रकाशन
1/26, काशीडीह,
जमशेदपुर - 831001
प्रथम संस्करण — 2009
मुद्रक — शिक्षा भारती मुद्रणालय
1/27, काशीडीह
जमशेदपुर - 831001
मूल्य — 500 रुपये

SHANTI SUMAN KI
GEET RACHNA AUR DRISHTI
(Edited by Dineshwar Prasad Singh 'Dinesh')
Rs. 500/-

सम्पादकीय

स्वतंत्र भारत के आरंभिक वर्षों में हिन्दी साहित्य की कई विधाओं में नयी आग्रहशीलता के साथ जो आन्दोलन चले, उनमें नवगीत का आन्दोलन भी है। छायावादी कवियों की गीत-रचना के पश्चात् हिन्दी गीत का स्वर और रंग भी बदलता गया है। ठाकुर प्रसाद सिंह के 'वंशी और मादल' ने आरम्भ में ही सबका ध्यान खींचा था। राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने 'गीतांगिनी' (1958) में सर्वप्रथम 'नवगीत' का प्रयोग किया। साठ और सत्तर के दशक में नवगीत की धूम रही।

हिन्दी के नवगीत में शान्ति सुमन का आगमन एक घटना की तरह हुआ। साठ और सत्तर के दशक में इनके नवगीत बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध हुए। सत्यनारायण के अनुसार 'शान्ति सुमन की सृजनधर्मिता ने पैंतीस-चालीस वर्षों की यात्रा में गीत के धरातल पर अपना होना प्रमाणित किया है। ...कवयित्री ने पत्र-पत्रिकाओं में छपकर अपनी स्पष्ट पहचान बनाई तो साथ ही काव्य-मंचों से कविता की वाचिक परम्परा को समृद्ध करती रहीं।'

शान्ति सुमन की गीत-रचना इस बात के प्रमाण हैं कि वे अपने समय की चुनौतियों से टकराती रही हैं, लगातार अमानवीय और अभद्र होते जा रहे जीवन-यथार्थ से जूझती भी रही हैं। नवगीत के उन्मेष के काल में जब कई वरिष्ठ रचनाकार नवगीत की प्रतिष्ठा के उन्नयन में जुड़े थे, उन्हीं दिनों वाराणसी (शंभुनाथ सिंह), मुम्बई (वीरेन्द्र मिश्र), कलकत्ता (चन्द्रदेव सिंह), मुजफ्फरपुर (राजेन्द्र प्रसाद सिंह) की गीतात्मक धार को तेज करती हुई उमाकांत मालवीय, ओम प्रभाकर, नईम, देवेन्द्र कुमार, सत्यनारायण, रामचन्द्र चन्द्रभूषण आदि के साथ मुजफ्फरपुर की एक युवा गीतकर्त्री अपने नवगीत-संग्रह के साथ गीत के मंच पर उपस्थित हुई। वह गीतकर्त्री शान्ति सुमन ही थीं और प्रमाण का दस्तावेज लेकर उनका नवगीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' प्रकाशित हुआ था।

नयी कविता वालों ने जब गीत पर प्रहार करना शुरू किया और गीत की समर्थ परम्परा की उपेक्षा करते हुए उसकी जड़ों को कमजोर करना चाहा, उसकी अस्मिता की अनदेखी की तब नवगीत उसकी सशक्त परिणति बनकर आया।

उन दिनों नवगीत के पक्ष में खड़ा होना एक जोखिम भरा उपक्रम था,

किन्तु वह नये रचना-कर्म का साक्ष्य भी था। प्रथित रचना-धर्म के विरुद्ध होना अपने रचनात्मक भविष्य की असुरक्षा का कारण भी होना था। पर यह सच है कि नयी कविता के उस बीहड़ में जो गीत की अस्मिता तलाश रहे थे, वे सभी अपना रचनात्मक भविष्य भी रच रहे थे। 'ऐसे में बिहार के एक छोटे शहर मुजफ्फरपुर से नयी उम्र की एक कवयित्री ने अपने को बेहिचक दाँव पर लगाया और नवगीत के पक्ष में उठ खड़ी हुई।' वह शान्ति सुमन थीं जिन्होंने समय के अनुसार अपनी गीत-रचना की जमीन बदलकर जनवादी गीतों की रचना भी की और जनवादी गीत के बड़े हस्ताक्षरों में एक हुईं। जनवादी गीत की बदली हुई जमीन पर भी उनका होना एक घटना हुआ और यहाँ भी उन्होंने अपना होना प्रमाणित किया।

'ओ प्रतीक्षित' (1970), 'परछाईं टूटती' (1978), 'तप रहे कँचनार' (1997), भीतर-भीतर आग (2002) जहाँ शान्ति सुमन के नवगीत-संग्रह हैं तो 'सुलगते पसीने' (1979), 'पसीने के रिश्ते' (1980), 'मौसम हुआ कबीर' (1985), 'एक सूर्य रोटी पर' (2006) और 'धूप रंगे दिन' (2007) उनके जनवादी गीत-संग्रह हैं। 'मेघ इन्द्रनील' (1991) उनका मैथिली गीतों का संग्रह है। शान्ति सुमन के एक सौ एक चुने हुए गीतों का संग्रह 'पंख-पंख आसमान' (2004) है। 'समय चेतावनी नहीं देता' शीर्षक नयी कविताओं का एक सह संकलन भी प्रकाशित है। उनकी एक आलोचना की पुस्तक 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' का प्रकाशन भी हो चुका है। इनके साथ ही शान्ति सुमन एक उपन्यास 'जल झुका हिरन' की लेखिका भी हैं। वे कई पत्रिकाओं की सम्पादिका भी रही हैं। पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी और दूरदर्शन के केन्द्रों से गीतों के प्रकाशन-प्रसारण से भी इन्होंने पर्याप्त यश अर्जित किया है।

शान्ति सुमन प्रायः दस सम्मानों से सम्मानित हैं और उन्होंने कई पुरस्कार भी प्राप्त किये हैं। उनके जीवन-वृत्त (व्यक्ति और कृति) में कहा गया है कि वे बाबा साहब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर में हिन्दी की प्रोफेसर (अध्यक्ष) थीं। अब सेवा-मुक्त हैं और अपने परिवार में रहकर स्वतंत्र लेखन करती हैं।

'शान्ति सुमन एक शिक्षित और सम्भ्रान्त व्यक्तित्व की धनी महिला साहित्यकार हैं।' डॉ० सुरेश गौतम ने इतना कहकर यह भी कहा है कि 'इन्होंने मात्र गीतों की रचना ही नहीं की, अपितु समीक्षा-क्षेत्र में भी अपने अध्ययन को चिन्तन-मानक पर कसा है। इनके संग्रहों की भूमिकाओं में नवगीत एवं उनसे आगे जनवादी गीत के व्यक्तित्व पर इनके वैचारिक

बोध ने अनेक सवाल खड़े किये हैं।'

कुमार रवीन्द्र ने तो माना है कि 'डॉ० शान्ति सुमन एक ऐसी गीतकवि हैं, जिनका अधिकांश सृजन 'जनगीत' और 'जनवादी गीत' संज्ञाओं से परिभाषित किया जाता रहा है। उनकी गीत-क्षमताओं का विस्तार उससे कहीं अधिक है। निश्चित ही जनबोध उनकी रचनाओं का मूलभाव है।' वे तो यह भी कहते हैं - 'इस्वी सन् 1970 में 'ओ प्रतीक्षित' का आना नवगीत के एक नये युवा हस्ताक्षर का सर्वश्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, उमाकान्त मालवीय, रमेश रंजक जैसे सशक्त नवगीतकारों की जमात में शामिल होना था। यह एक अनूठी उपलब्धि थी अट्ठाइस वर्षीय शान्ति सुमन के लिए।'

युवा नवगीतकार यश मालवीय का मानना है कि 'कंकड़ीली-पथरीली-रपटीली राहों और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से होता हुआ हिन्दी गीत आज जहाँ पहुँचा है, उस यात्रा में डॉ० शान्ति सुमन की अनथक रचनात्मक जिजीविषा भी शामिल है, जिसने आलोचकों, समीक्षकों की किंचित भी परवाह किये बिना गीत की लौ जगाये रखी, छंदधर्मी चेतना से आत्मा के अंधकार में भी उजाला किया।'

राम निहाल गुंजन ने स्पष्ट किया कि 'सच पूछिये तो शान्ति सुमन के ऐसे ही आस्थावादी गीतों के जरिये उनके जनवादी चिन्तन और जनपक्षधरतापूर्ण लेखकीय दायित्व की सूचना मिलती है। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो उनके समग्र गीत-साहित्य का उचित मूल्यांकन जरूरी प्रतीत होता है। इस दिशा में सजग लेखकों-आलोचकों के रचनात्मक प्रयत्न की आवश्यकता बनी रहेगी।'

सम्प्रति शान्ति सुमन के गीतात्मक व्यक्तित्व को विविध कोणों से देखने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है। विभिन्न लेखकों ने विभिन्न दृष्टियों से उनके गीतों की समीक्षा और पड़ताल की है। उनके हिन्दी गीतों के अतिरिक्त उनके मैथिली गीतों पर भी विचार किया गया है। शान्ति सुमन ने नयी कवितायें (मुक्त छन्द) भी लिखी हैं। इसलिये इस विचार के केन्द्र में उनकी ये कविताएँ भी आई हैं। शान्ति सुमन के लेखन के विविध आयाम को समेटने के लिए उनके उपन्यास एवं समीक्षात्मक गद्य की भी चर्चा हुई है। आत्मकथ्य और जीवन-वृत्त के औचित्य का अनुभव करते हुए उनका समाहार भी इसमें हुआ है। नवगीत और जनवादी गीत के विशिष्ट एवं प्रसिद्ध आलोचकों की उन टिप्पणियों, विचारों को भी इस पुस्तक में शामिल किया गया है जिनसे शान्ति सुमन के गीतों के स्वभाव

खुलते हैं, उनके गीतों को समझने की प्रक्रिया आसान होती है।

मैं डॉ० शिवकुमार मिश्र, डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, डॉ० मैनेजर पाण्डेय, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, डॉ० रेवती रमण, मदन कश्यप, डॉ० रविभूषण, रामनिहाल गुंजन, सत्यनारायण, डॉ० वशिष्ठ अनूप, नचिकेता, डॉ० सुरेश गौतम के साथ कुमार रवीन्द्र, यशमालवीय, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, ओमप्रभाकर, डॉ० लक्ष्मण प्रसाद, नन्दकुमार, डॉ० माधुरी वर्मा, डॉ० सीता महतो, डॉ० संजय पंकज, डॉ० चेतना वर्मा, डॉ० सुप्रिया मिश्र, डॉ० अशोक प्रियदर्शी, निर्मला सिंह, कनकलता रिद्धि, चन्द्रकान्त, डॉ० पूनम सिंह, रत्नेश्वर झा, मनीष रंजन, सुजाता सिन्हा, डॉ० अरविन्द कुमार की महत्वपूर्ण टिप्पणियों और आलेखों के लिये उनको अपने अजस्र आभार सौंपता हूँ। कुछ और विशिष्ट विचार भी मिले जिनमें उमाकान्त मालवीय, रमेश रंजक, डॉ० चन्द्रभूषण तिवारी, देवेन्द्र कुमार, डॉ० ओम प्रकाश ग्रेवाल, महेश्वर, डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय आदि के नाम आते हैं। मैं उन सब के प्रति विनम्र और आभारनत हूँ। आत्मकथ्य लिखकर शान्ति सुमन ने अपने निजी जीवन के कई प्रसंगों पर प्रकाश डाला है। शान्ति सुमन के जनवादी गीत एवं नवगीतों पर आलोचकों के विचारों की प्रस्तुति के लिये मैं अमृतेश एवं सुधांशु सिंह को भी अपनी स्नेहिल आत्मीयता देता हूँ। शान्ति सुमन के गीत-संग्रहों से कुछ गीतों के चयन के लिये श्रेयसी वर्मा की पसंद की प्रशंसा करता हूँ।

इस पुस्तक के शब्द-संयोजन और पूरी प्रकाशन व्यवस्था के लिए मैं शिक्षा भारती मुद्रणालय के संचालक अशोक कुमार सिंह के श्रम को अपना स्नेह देता हूँ।

सम्प्रति मैं आलोचकों, समीक्षकों, विचारकों और पाठकों को यह पुस्तक सौंपते हुए इस लेखकीय जिम्मेदारी की अपेक्षा करता हूँ कि वे अपने अमूल्य विचारों, प्रतिक्रियाओं और सुझावों से मुझको अवगत होने दें। गीत की इस अनवरत नदी में शान्ति सुमन के गीत भी प्रवहमान हैं। उनकी रचना-प्रक्रिया और गीतधर्मिता पर आगे भी विचार करने की आवश्यकता बनी रहेगी। उन विचारों की अनेकशः अपेक्षाओं के साथ।

बसन्त पंचमी, 2009

– दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश'
अध्यक्ष
साहित्य सेवा समिति, जमशेदपुर

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
1.	संपादकीय	– दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश'	5
2.	चित्र-पृष्ठ	–	13-28

केन्द्र : आलोचकों के विचार

शान्ति सुमन के जनवादी गीत : आलोचना की दृष्टि में

3.	मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत	– डॉ० शिवकुमार मिश्र	31
4.	हिन्दी के जनवादी गीतों के बड़े हस्ताक्षरों में एक	– डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह	32
5.	जनवाद की ठोस जमीन पर	– कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह	33
6.	गीत आइने की तरह	– डॉ० मैनेजर पाण्डेय	35
7.	शान्ति सुमन हमारे समय के दुर्लभ गीतकारों में	– मदन कश्यप	39
8.	समकालीन हिन्दी कविता के पड़ोस के गीत	– डॉ० रविभूषण	40
9.	जनवादी चिन्तन और जनपक्षधरतापूर्ण लेखकीय दायित्व	– रामनिहाल गुंजन	40
10.	गीत-रचना का एक नया सौन्दर्य-शास्त्र	– नचिकेता	41
11.	गीतों में सहज बिम्बधर्मिता	– डॉ० चन्द्रभूषण तिवारी	42
12.	विचारों के कवच में संवेदनायें	– रमेश रंजक	42
13.	मेहनतकश अवाम की मुक्तिकामी जद्दोजहद से एकरूप गीत	– महेश्वर	43
14.	मोहभंग की मनःस्थिति के विभिन्न पक्ष	– ओम प्रकाश ग्रेवाल	43
15.	गीतों में धार	– 'मौसम हुआ कबीर' के फ्लैप से	43

प्रस्तुति : अमृतेश

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
	केन्द्र : आलोचकों के विचार		
	शान्ति सुमन के नवगीत : आलोचना की दृष्टि में		
16.	नवगीत की अनन्या कवयित्री एवं समकालीन लेखन की प्रणेत्री	– राजेन्द्र प्रसाद सिंह	47
17.	...एकमात्र कवयित्री	– उमाकान्त मालवीय	47
18.	नागार्जुन की कविता को अमरता देनेवाले मैथिल संस्कृति के उपकरण शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय	– डॉ० रेवतीरमण	47
19.	शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा...	– डॉ० सुरेश गौतम	48
20.	गीत के फलक पर शान्ति सुमन का आविर्भाव एक घटना	– सत्यनारायण	49
21.	समकालीन जिन्दगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज	– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	50
22.	महाश्वेता देवी के कथा-साहित्य के केन्द्र में आदिवासी समाज की तरह शान्ति सुमन के गीतों के केन्द्र में बिहार के किसान-मजदूर	-- डॉ० वशिष्ठ अनूप	51
23.	अछूता प्रस्तुत करने की तड़प	– ओम प्रभाकर	52
24.	शब्दों को गढ़ने का प्रयत्न	– देवेन्द्र कुमार	52
25.	गीत पुरअसर हैं	– विश्वम्भर नाथ उपाध्याय	52
26.	नई क्रांति-दृष्टि	– कुमार रवीन्द्र	53
27.	नागार्जुन के तालाब में कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती मुड़े नाखूनों और गाँठदार ऊँगलीवाली शकुन्तला नहीं	– डॉ० अरविन्द कुमार	53

प्रस्तुति : सुधांशु सिंह

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
	वृत्त :		
28.	शांति सुमन : व्यक्ति एवं कृति	– दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश'	57
29.	आत्मकथ्य	– शान्ति सुमन	84
	परिधि :		
30.	शान्ति सुमन का 'ओ प्रतीक्षित' : आत्मदान के अभिषेक में नवगीत	– राजेन्द्र प्रसाद सिंह	93
31.	'ओ प्रतीक्षित' : एहसास की सच्चाई	– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	98
32.	'ओ प्रतीक्षित' : बिम्ब की पहचान	– ओम प्रभाकर	110
33.	नई व्यवस्था के लिये संघर्षशील एक युवा कवयित्री	– मधुकर सिंह	113
34.	शान्ति सुमन के नवगीत संकलन 'ओ प्रतीक्षित' पर एक समीक्षा दृष्टि	– पंकज सिंह	116
35.	डॉ० शान्ति सुमन की गीति-प्रतिभा	– डॉ० रेवतीरमण	119
36.	डॉ० शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि	– रामनिहाल गुंजन	123
37.	टूटें न तार...!	– सत्यनारायण	129
38.	नया समाज गढ़ने की कोशिश हैं शान्ति सुमन के गीत	– डॉ० वशिष्ठ अनूप	138
39.	शांति सुमन के गीतों में जनवाद की पृष्ठभूमि	– डॉ० सीता महतो	146
40.	यह गीत की कला है, शोर नहीं	– नचिकेता	157
41.	नवगीतीय जनवादी स्वर : शान्ति सुमन	– डॉ० सुरेश गौतम	171
42.	शान्ति सुमन की गीतधर्मिता	– कुमार रवीन्द्र	185
43.	शान्ति सुमन की गीत-यात्रा	– डॉ० माधुरी वर्मा	192
44.	डॉ० शान्ति सुमन : हिन्दी गीत की उत्सव भंगिमा	– यश मालवीय	198

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक			पृष्ठ
45.	शान्ति सुमन का रचना-संसार	–	डॉ० चेतना वर्मा	202
46.	कविता को समझने की एक अलग कोशिश	–	नन्द कुमार	215
47.	शान्ति सुमन का गीत-सौन्दर्य	–	डॉ० सुप्रिया मिश्र	227
48.	'इच्छाओं से भरी ताम्बई कोंपल'	–	डॉ० अरविन्द कुमार	240
49.	शान्ति सुमन के गीत : संवेदना की सिराओं में आग	–	डॉ० लक्ष्मण प्रसाद	251
50.	शान्ति सुमन के जनवादी गीत	–	निर्मला सिंह	256
51.	सु-मन सुमन	–	डॉ० अशोक प्रियदर्शी	262
52.	शांति सुमन के गीतों में ग्राम्य संवेदना	–	कनक लता रिद्धि	267
53.	कोई गीत एक गाने का मन	–	डॉ० संजय पंकज	271
54.	सृजन की शिखर प्रतिभा : शांति सुमन	–	डॉ० पूनम सिंह	276
55.	सामाजिक मानवीयता एवं मानवीय सामाजिकता की संवेदनशील रचनाधर्मिता की फलश्रुति : शान्ति सुमन के मैथिली गीत	–	रत्नेश्वर झा	278
56.	श्रम-संघर्षों के सौन्दर्य से रंगी कविताएँ	–	चन्द्रकान्त	289
57.	शान्ति सुमन का गद्य : वस्तु और शिल्प	–	मनीष रंजन	297
58.	शांति सुमन : एक गीति प्रतिमा	–	सुजाता सिन्हा	308
59.	नवगीत कोकिला : डॉ० शान्ति सुमन	–	डॉ० पुष्पा गुप्ता	313
60.	शान्ति सुमन के गीत-संग्रहों से कुछ चुने हुए गीत	–	चयन : **श्रेयसी वर्मा**	315

◆ ◆ ◆

काव्य-मंचों पर शान्ति सुमन की गीत-प्रस्तुति के कुछ चित्र-पृष्ठ

1967 में कलाभारती, मुजफ्फरपुर की कवि-गोष्ठी में गीत-पाठ करती हुई।

इलाहाबाद के एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में महादेवी जी के सान्निध्य में गीत प्रस्तुत करती हुई। मंच पर उपस्थित हैं रामदरश मिश्र, श्रीकांत जोशी, उमाकान्त मालवीय, ओम प्रभाकर एवं अन्य।

आकाशवाणी इलाहाबाद के स्वर्णजयन्ती-समारोह में मंच पर महादेवी जी के साथ मंचस्थ हैं उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और श्रीकांत जोशी।

आकाशवाणी लखनऊ के 'सरस्वती' कार्यक्रम में महीयसी महादेवी जी के सान्निध्य में डॉ. कमला रत्नम्, डॉ. रमा सिंह और शशिप्रभा शास्त्री के साथ 'नारी-विमर्श' में भाग लेने के बाद अखिल भारतीय कवयित्रियों के बीच।

फरक्का के कवि-सम्मेलन में गीत-पाठ करती हुई।

छपरा में आकाशवाणी पटना के संयुक्त आयोजन में मैथिली मंच से गीत प्रस्तुत करती हुई।

हिन्दी दिवस पर हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड टुण्डु (धनबाद) के एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में महाकवि आचार्य श्री जानकी वल्लभ शास्त्री, मदन कश्यप, श्री नारायण 'समीर', बुद्धिनाथ मिश्र, वृजबिहारी शर्मा एवं कोयलांचल के अन्य कवियों के साथ ।

चण्डीगढ़ के एक काव्य-मंच से गीत की प्रस्तुति ।
मंचस्थ हैं-डॉ. रामकुमार वर्मा, उमाकांत मालवीय एवं अन्य ।

वाराणसी के एक काव्य-मंच से गीत प्रस्तुत करती हुई । मंचस्थ हैं – चन्द्रशेखर मिश्र, श्रीकृष्ण तिवारी, वैभव वर्मा, भूषण त्यागी और हरिहर प्रसाद चौधरी 'नूतन' आदि ।

लुधियाना के एक अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन के मंच पर
डॉ. रामकुमार वर्मा, उमाकांत मालवीय के साथ जाती हुई ।

चेन्नई (तब मद्रास) के एक अखिल भारतीय काव्य-मंच पर तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश को अपना पहला गीत संग्रह - 'ओ प्रतीक्षित' की प्रति देती हुई ।

7-11-78 को लखनऊ के एक कार्यक्रम में शिवानी के साथ ।

लखनऊ में एक अखिल भारतीय लेखिका-सम्मेलन में वरिष्ठ कवयित्रियाँ तारा पाण्डे और चन्द्रकिरण सोनरिक्सा की उपस्थिति में गीत प्रस्तुत करती हुई ।

गोरखपुर में खण्डकाव्य 'स्वर पाषाण शिला के' का लोकार्पण करती हुई । मंचस्थ हैं इस खण्डकाव्य के रचनाकार आयुक्त रमेशचन्द्र एवं अन्य ।

एक संगोष्ठी में डॉ. शिवदास पांडेय, डॉ. नन्दकिशोर नन्दन, डॉ. संजय पंकज,
डॉ. सरोज कुमार वर्मा एवं अन्य रचनाकारों के साथ ।

गोरखपुर के एक कवि-सम्मेलन में गीत पढ़ती हुई ।
साथ हैं – माधव मधुकर, रमेशचंद्र एवं अन्य रचनाकार ।

एक अखिल भारतीय कार्यक्रम में मंच पर
महाकवि आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के साथ ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह से
'कविरत्न' सम्मान प्राप्त करती हुई ।

हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड, सर्गीपल्ली (उड़ीसा) के एक अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन में हिन्दी और उड़िया रचनाकारों के साथ ।

एक अखिल भारतीय मुशायरा एवं कवि-सम्मेलन, मुजफ्फरपुर के मंच पर रचना-पाठ करती हुई । मंचस्थ हैं - राजेन्द्र प्रसाद सिंह एवं रवीन्द्र उपाध्याय ।

दिनकर सम्मान-समारोह 2001 में बेगूसराय के अखिल भारतीय कवि-मंच से गीत-पाठ करती हुई । मंचस्थ हैं-सुनील श्रीवास्तव (तंग इनायतपुरी), शान्ति जैन, सत्यनारायण एवं अन्य कवि ।

सुरंगमा-सम्मान के अवसर पर (संस्कृति और पर्यटन विभाग के अंतर्गत) मृदुला सिन्हा द्वारा सम्मानित होती हुई । मंचस्थ हैं राजेन्द्र प्रसाद सिंह एवं पुष्पा प्रसाद ।

हल्दिया (प0 बंगाल) के एक कवि–मंच पर
गीत पाठ के क्रम में।

कानपुर के एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के मंच पर गीत पाठ।

एक गीत–गोष्ठी में गीत प्रस्तुत करती हुई।
मंचस्थ हैं महाकवि आचार्य श्री जानकी वल्लभ शास्त्री एवं अन्य कवि–गीतकार।

षष्ठिपूर्ति समारोह में 'पंख–पंख आसमान' (प्रतिनिधि 101 गीतों का संग्रह) का लोकार्पण करते हुए डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव। मंचस्थ हैं राजेन्द्र प्रसाद सिंह, नचिकेता, डॉ. रेवती रमण और डॉ. सुनीति पाण्डेय।

षष्ठिपूर्ति समारोह में गीत पाठ करती हुई ।

निराला निकेतन (आचार्य श्री का आवास–मुजफ्फरपुर) में निराला जयन्ती के अवसर पर गीत–विमर्श में महाकवि त्रिलोचन, आनन्द भैरव शाही, डॉ. पूनम सिंह, डॉ. रश्मिरेखा के साथ ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 2005 में 'साहित्य भारती' सम्मान प्राप्त करती हुई ।

हिन्दी संस्थान, लखनऊ से हिन्दी दिवस 2006 में मुलायम सिंह यादव और सोम ठाकुर द्वारा सौहार्द सम्मान और पुरस्कार प्राप्त करती हुई ।

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग– बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर में सम्मान के अवसर पर । साथ हैं – डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, विभागाध्यक्ष डॉ. नन्दकिशोर नन्दन, नचिकेता, डॉ. पूनम सिंह एवं अन्य ।

गीत के एक आयोजन में गीत पढ़ती हुई ।

केन्द्र : आलोचकों के विचार

शान्ति सुमन के जनवादी गीत आलोचना की दृष्टि में

प्रस्तुति – अमृतेश

मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत

– डॉ० शिवकुमार मिश्र

निरंतर क्षरित और क्षत-विक्षत होती मनुष्यता और उसकी संभावनाओं को निहायत क्रूर और हिंस्र आज के समय के बरक्स, गीत के रचना-विधान में अक्षत बनाए और बचाए रखने के जीवंत उपक्रम का साक्ष्य हैं, शान्ति सुमन की रचनाधर्मिता की फलश्रुति उनके वे गीत, जो उनके 'धूप रंगे दिन' शीर्षक इस अद्यतन संकलन में, उनकी रचनाधर्मिता की सारी ऊष्मा और ऊर्जा को लिए हुए हमारे सामने हैं। **गीत, शांति सुमन की रचनाधर्मिता का स्व-भाव है, जिसे उन्होंने काव्याभिव्यक्ति की दीगर तमाम भंगिमाओं के बीच-शिद्दत से जिया और बचाए रखा है। यहीनहीं, समय के बदले और बदलते संदर्भों में अनुभव-संवेदनों की नई ऊष्मा और नया ताप भी उन्हें दिया है।** इसी नाते उनका नाम प्रगतिशील आन्दोलन **के साथ** आरंभ हुई जनगीतों की **परंपरा को, नई सदी की दहलीज तक लाने वाले जन गीतकारों में पहली और अगली कतार का नाम है।** जनधर्मिता और कविता-धर्मिता का एकात्म हैं शान्ति सुमन के गीत, जो कविता को उसके वास्तविक आशय में जन-चरित्री बनाते हैं, उसे जन की आशाओं-आकांक्षाओं से बेहतर जिन्दगी के उसके स्वप्नों तथा संघर्षों से, जोड़ते हैं। शान्ति सुमन के गीतों में उद्‌बोधन, आवेग और एक उमंग-तरंगित मन का उत्साह भर नहीं, समय की विद्रूपताओं से उनकी सीधी मुठभेड़ और युगीन यथार्थ का वह खरा बोध भी है, जिसे जन और उसके जीवन-संदर्भों के बीच से उन्होंने पाया और अर्जित किया है। गहरे और व्यापक जन-संघर्षों की धार से गुजरे ये गीत आज के विपर्यस्त समय की चपेट में आए साधारण जन के दुख-दाह, ताप-त्रास, उसकी बेबसी और लाचारी को ही शब्द और रूप नहीं देते, स्थितियों से संघर्ष करती उसकी जिजीविषा तथा जुझारू तेवरों को भी जनधर्मी पक्षधरता की पूरी ऊर्जा के साथ रूपायित करते हैं, जिन्हें जन और जन-संघर्षों की सहभागिता में शान्ति सुमन ने देखा और जिया है। उनके गीतों में नर-जीवन ही नहीं, नरेतर वाह्य प्रकृति भी नर जीवन की सहभागिता में अपनी जनधर्मी भंगिमाओं की समूची सुषमा के साथ चित्रित हुई है। उनके ये गीत हमारे समय का आईना भी हैं, और उसमें एक सार्थक हस्तक्षेप भी। **इन गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है, साधारण में असाधारणता के, हाशिए की जिन्दगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन-संदर्भों में महाकाव्यों के वृत्तान्त पढ़ना है।**

स्वानुभूति, सर्जनात्मक कल्पना तथा गहरी मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे ये गीत अपने कथ्य में जितने पारदर्शी हैं, उसके निहितार्थों में उतने ही सारगर्भित भी। मुक्तिबोध ने कविता को जन-चरित्री के रूप में परिभाषित किया है। शांति सुमन के ये गीत मुक्तिबोध की इस उक्ति का रचनात्मक भाष्य हैं।

●

हिन्दी के जनवादी गीतों के बड़े हस्ताक्षरों में एक

– डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह

विकसनशील संवेदनशीलता की गीतकर्त्री हैं शान्ति सुमन। नवगीत के नगरबोध और आधुनिक बोध की यात्रा से गुजतरे हुए वे बीसवीं सदी के सातवें दशक के उत्तरार्ध में किसान और मजदूरों के श्रम और संघर्ष को अपने गीतों में ढालने लगीं और जनवादी गीत की संवेदना से एकाकार हो गईं। पूँजीवादी व्यवस्था की प्रत्येक अमानुषिकता को वे छन्द और लय में ढालकर क्रांतिकारी चेतना की वाहिका बन सकी हैं। आरंभिक जनवादी गीतों की नारेबाजी से शीघ्र ही निकलकर 'एक सूर्य रोटी पर', जैसे श्रेष्ठ कालजयी गीत की रचना वे कर जाती हैं। प्रतिभा की एक पहचान यह है कि वह विकसनशील होती है। युवावस्था के बीतते ही उनका गीतकार फूस की तरह धधक कर जल नहीं गया, वरन् जन की संवेदनशीलता से संपृक्त होकर वह और प्रौढ़ तथा पुष्ट होता गया। उनकी गीति-प्रतिभा न छीजने का यही रहस्य है। इन गीतों में घुटन और संत्रास, नगरबोध या आधुनिकता बोध न होकर विपन्नता की पीड़ा तथा व्यवस्था की अमानुषिकता का प्रतिरोध मिलता है। छन्दों में प्रवाह संघर्ष से आया है। इन गीतों में शब्द-विन्यास लय और जनजीवन-लोकजीवन से संपृक्त होकर समृद्ध हुए हैं।

गरीबी और अभाव की आग में जलते भारतीय जीवन का दाह है शान्ति सुमन के गीतों में। गरीबी के ताप में झुलसी युवती का सौन्दर्य जैसे बलुआही मिट्टी पहन कर केसर का बाग जल गया हो। समय से संघर्ष करने के क्रम में शान्ति सुमन ने ईश्वर की चोरी न कर, उसके समानांतर, उसके सामने खम ठोक कर खड़े इंसान की जीवंत प्रतिमा गढ़ी है। किसान और मजदूर का श्रम और संघर्ष लिख कर भी वे प्रगतिवादी नहीं बल्कि जनवादी गीतकर्त्री हैं। यानी वे इतिहास दुहराने को नहीं वरन् इतिहास रचने के लिए गीत के क्षेत्र में आईं। इन गीतों में श्रम और पसीने का बहुत ही मर्मस्पर्शी भावन मिलता है। मुड़े हुए नाखून, लहठी-सना

पसीना, सड़कों पर दिन की स्याही, आँख में सूखे कुएँ, अलमुनियम के तसलों में उबलते भात, तड़कती हुई पसलियाँ, पाँव भर सीढ़ियाँ चढ़ती थकानें – ये जीवन के यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं। श्रम और जन के घात-प्रतिघात से ये गीत बने हैं। ये गीत भारतीय जीवन की विपत्तियों के एंशट्रे हैं। हर प्रकार के दुख, हर प्रकार के दर्द, हर तरह के अभाव इन गीतों की भाषा और लय में ढलकर मधुरतम बन गए हैं। यही गीतकर्त्री की रचनात्मकता है। हिन्दी के जनवादी गीतों के बड़े हस्ताक्षरों में एक हैं शान्ति सुमन।

●

जनवाद की ठोस जमीन पर

– कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह

भाव, विचार और भाषा की रवानगी इन तीनों को लेकर यह गीत भी अपने हलके में काफी सराहा गया है। शुरू से लेकर अंत तक एक विशेष लय यहाँ भी बँधी चलती है। दिशा ठीक है, अर्थ-संधान भी ठीक है। मगर फिर भी एक बहुत बड़ा फर्क है। भाषा का चरित्र वही नहीं है – यहाँ भाषा उर्दू का एक विशेष आग्रह लेकर चलने के कारण कुछ कृत्रिम हो गयी है। दूसरे, इस रचना की लम्बाई काफी बढ़ गयी है, जो गीत की प्रकृति के अनुरूप नहीं है। गीत की एक कसौटी उसमें अर्थ-केन्द्रित सघन संक्षिप्तता भी होती है – विस्तार में जाने पर उस केन्द्रीयता के विघटित हो जाने का खतरा बना रहता है।

कला शोर नहीं है, न ही केवल उबाल और उद्‌गार है; वह बल्कि उसे एक विशिष्ट अर्थ और पहचान देकर मनुष्य को हमबद्ध सहभागिता की ओर अग्रसर करने की सबसे विश्वसनीय प्रक्रिया है। शांति सुमन के एक गीत की पंक्तियाँ लें –

थाली उतनी की उतनी ही,
छोटी हो गयी रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
सबसे बूढ़ी दादी अपने गाँव की।

यहाँ अनायास ही कुछ ऐसे तत्त्व आ गये हैं जिनके योग से गीत का विन्यास अपने-आप पूरा हो जाता है। अंतर्वस्तु-भूख और उनसे जुड़े संघर्ष-का आंतरिक संघटन और विकास अपनी सहज परिणति-आबरू, हक और हैसियत की लड़ाई में दादी-काकी से लेकर भौजी-बहना अर्थात् एक परिवार को शरीक कर अंतिम जीत तक पहुँचने के संकल्प और विश्वास को सहज ही प्राप्त कर लेता है। बीच में वैसे भूख हुई

अजगर-सी, अपना तो घर गिरा/दरोगा के घर नये उठे, लापरवाह व्यवस्था के खूँटे से बँधकर रहना, कि हम मुठभेड़ हुए आदि कुछ ऐसे स्थिति-चित्र आते हैं जिनसे यदि केन्द्रीय भाव को आवश्यक विस्तार की पुष्टि मिलती है तो इनकी अनगढ़ता से भावों के कलात्मक प्रवाह में निश्चित रूप से एक बाधा भी आती है। किन्तु फिर संबोधनों में बड़की काकी के साथ सुन्दर काकी, नवकी भौजी के साथ गोरी भौजी, रानी बहना के साथ प्यारी बहना की आवृत्ति से एक गहरा रागात्मक बोध पैदा होता है, वह उक्त बाधा को निरस्त कर देने के लिए पर्याप्त है। ऊपर से, शुरू का बिम्ब-थाली उतनी की उतनी ही छोटी हो गयी रोटी अपनी मौलिकता और सांकेतिकता से शुरू में ही जो एक प्रभाव पैदा करता है वह अंत-अंत तक बना रहकर रचना को अपनी जगह पर उद्दीप्त किये रहता है। **यानी गीत-रचना की – जनवाद की ठोस जमीन पर-यह भी एक कला है, जिसके पीछे कोई सचेत प्रयास नहीं है और अर्थ-संघटन से लेकर रूप-विन्यास तक – सब कुछ सहज ही सम्पन्न हो जाता है। यह सब समय से गहरे सरोकार और विधागत दायित्व के सहज बोध के कारण संभव हो सका है और यही सुमन के अंदर पल रही वह शक्ति है जो उन्हें अपनी जमीन से हटने नहीं देती। लोकगीत और उसका विविध प्रकारों से आत्मीय परिचय होने पर भी आम रवैया में बहते हुए कभी उन्होंने किसी तर्ज और/या धुन पर कोई रचना खड़ी करने की कोशिश नहीं की – अपने गीतों में उनका पुट यहाँ-वहाँ अवश्य देती गयी हैं। बल्कि उन्हें अपनी सीमा का ज्ञान हमेशा रहा है और इसी में उनकी खूबसूरती है।** उनका रचनाकार सहज है और सुन्दर भी और उसके स्वर पर भरोसा किया जा सकता है। लोकगीतों और उनके आधार-भाव-संसार में रमे सहृदय संवेद्य जन के लिए जितना आगे की पंक्तियों की गहराई में उतरना संभव होगा – उतना रचना के हर लफ्ज में क्रांति की आग छूने की क्रांतिकारी तमन्ना लिए चलने वालों के लिए शायद नहीं हो –

थमो, सुरूज महराज/नयन काजर भर लें
बोये पिया पसीना/फसल सगुन कर लें।

(मौसम हुआ कबीर, पृ० 13)

ये पंक्तियाँ इन्तहाई संगीतात्मकता लिए तो हैं ही, साथ ही अपनी मौलिकता और व्यंजनात्मकता को लेकर भी अनूठी हैं। 'कला की मूलभूत चरित्र-संगति में ही', सुमन का अपना मत है, 'राजनीतिक विचारधारा ग्रहण किया जाय ताकि कला के साथ विचारों का संतुलन बना रहे, क्योंकि जनवादी कला जीवन को ही अपना स्रोत मानती है और इसी जीवन से प्राप्त अनुभवों और प्रेरणाओं को महत्व देती है।' 'इसके लिए' वे आगे कहती हैं, 'जीवन की भूमिकाओं में गहरी

पैठ की जरूरत पड़ती है, न कि अमूर्त सामान्यीकरण की' (मौसम हुआ कबीर, पृ० 1-10)। यह सोच-समझ उसी रचनाकार की हो सकती है जिसके सामने सरलीकरण और बेवजह सपाटबयानी और उसकी वजह से रचना और/या रचनाकार को राजनीतिक आग्रहों के 'संवेदनाशून्य दस्तावेज' हो जाने का खतरा भली-भाँति स्पष्ट हो।

●

गीत आइने की तरह

– डॉ० मैनेजर पाण्डेय

शांति सुमन के अब तक कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'ओ प्रतीक्षित' और 'परछाँई टूटती' के बाद 'मौसम हुआ कबीर' उनका तीसरा स्वतंत्र संग्रह है। नचिकेता की तरह शांति सुमन भी नवगीत से जनवादी गीत की ओर आयी हैं। शांति सुमन की रचनाशीलता का सामाजिक, राजनीतिक परिवेश वही है जो नचिकेता का है, दोनों की पक्षधरता एक-सी है। नचिकेता के प्रसंग में उस परिवेश और पक्षधरता की बात हो चुकी है, इसलिए अब शांति सुमन की रचना-दृष्टि और गीतों की विशिष्टता की ही चर्चा उचित है। मेरे सामने उनका संग्रह 'मौसम हुआ कबीर' ही है, इसलिए चर्चा उसी के गीतों तक सीमित होगी।

'मौसम हुआ कबीर' के गीतों को पढ़कर लगता है कि शांति सुमन गीत की सीमा और शक्ति जानती हैं। जो रचनाकार अपनी विधा की सीमा नहीं जानता वह उसकी शक्ति को भी नहीं पहचान पाता। शांति सुमन हर विषय का चुनाव करती हैं। जो लोग हर विषय पर कविता या गीत लिखते हैं वे प्रायः निबंध या कहानी की विषय-वस्तु को सायास पद्यबद्ध करते हैं। 'मौसम हुआ कबीर' के अधिकांश गीत इस बात के प्रमाण हैं कि शांति सुमन को काव्यात्मक भावना की पहचान है।

'मौसम हुआ कबीर' के गीतों में सूदखोरों के कर्ज से दबे कराहते किसानों की पीड़ा है, जमींदारों के दमन की चक्की में पिसते खेतिहर मजदूरों की यातना है और सत्ता का आतंककारी रूप भी है। साथ ही इन गीतों में सामाजिक बदलाव की आकांक्षा है, जन जागरण की चेतना है, जन संघर्षों का वर्णन है और नये समाज के सपने भी हैं। इन सबमें अपने सामाजिक-राजनीतिक परिवेश के प्रति शांति सुमन की सजगता और जनपक्षधरता प्रकट है। उनकी दृष्टि जनता के मुक्ति-संघर्ष पर ही नहीं, उसके व्यापक जीवन-संघर्ष पर भी है। इसलिए उनके गीतों में ललकार और आह्वान से अधिक जन-जीवन के दुःख-सुख, हर्ष-विषाद, विजय-पराजय के अनुभव हैं। उसमें जन-जीवन के यथार्थ और सपनों के चित्र उभरकर सामने आते हैं।

खुशी की बात है कि कई दूसरे गीतकारों की तरह शांति सुमन की संवेदनशीलता विचारधारा की आँच से सूख नहीं गई है, इसलिए उनके गीतों में विभिन्न मानवीय जन कठिन जीवन जीते हुए भी अपनी मानवीयता की रक्षा करता है। विचारधारा की सारी लड़ाई समाज को सचमुच मानवीय बनाने की ही लड़ाई है। इसलिए जन-जीवन में जीवित मानवीयता की रक्षा और उसके महत्व की पहचान कविता का दायित्व है। इस संग्रह में एक गीत है 'आँखों का सपना।' उसमें न कहीं ललकार है, न क्रांति का आख्यान, कठिन जिंदगी का एक चित्र है, प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ते हुए जीने की इच्छा और कोशिश का चित्र –

टूटा ही है घर वह
पर कितना अपना है
हाथों रोक लिया करते
छानों से चूते पानी
कभी नहीं सर्दी गर्मी से
हुई हमें हैरानी
दो जोड़ी आँखों में
एक हरा सपना है

यह ठोस जिंदगी की सच्ची दुनिया का चित्र है जो दूसरों में भी जीने की इच्छा पैदा कर सकता है। वास्तविक जिंदगी के यथार्थपरक संवेदनशील ऐसे चित्र इस संग्रह के गीतों में बहुत हैं। **'तने हुए कच्चे घर से', 'भरे पेट वाले दिन', 'कटाई का गीत', 'धूप-छाँह का गीत'** और **'घर में पूरनमासी है' जैसे गीतों में पारिवारिक और मानवीय सम्बन्धों के ऐसे भावमय चित्र हैं जो पाठकों-श्रोताओं को संवेदनशील बना सकते हैं। ये गीत आईने की तरह हैं जिनमें वास्तविक जिंदगी के विभिन्न पक्षों की सच्ची तस्वीरें दिखाई देती हैं, अपने मूल रूपों और रंगों के साथ।** ऐसे ही गीत पाठकों-श्रोताओं को जीवन की वास्तविकताओं का साक्षात्कार कराते हैं और उनको बदलने की प्रेरणा देते हैं।

शांति सुमन एक सजग और सचेत नारी की दृष्टि से समाज, जन-जीवन और उसके यथार्थ को देखती हैं। इस समाज में नारी स्वयं तरह-तरह के शोषण और उत्पीड़न का शिकार है, इसलिए शोषित और उत्पीड़ित जन से उसकी सहज एकता स्वाभाविक है। अगर वह जागरूक और पक्षधर दृष्टि की हुई तो शोषित-पीड़ित जन से उसकी एकता अधिक गहरी होगी और सहानुभूति सच्ची। शांति सुमन के गीतों में ऐसी एकता और सहानुभूति है। जिन गीतों में इस एकता और सहानुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति है उन्हीं गीतों में शांति

सुमन की प्रगति-प्रतिभा की शक्ति प्रकट हुई है। इन गीतों में क्रांतिकारी करुणा है, ऐसी करुणा जो शोषित-पीड़ित जन के लिए ममता बनती है और शोषक सत्ता के विरूद्ध आक्रामक प्रतिहिंसा। कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि 'मौसम हुआ कबीर' के अधिकांश गीतों में जन-जीवन की यातना और पीड़ा की अभिव्यक्ति के माध्यम बच्चे हैं। बच्चों के माध्यम से कही गई जन-मन की व्यथा-कथा में वर्तमान की वास्तविकता ही नहीं भविष्य के संकेत भी हैं। बच्चे किसी समाज की सभ्यता और मानवीयता के मापदण्ड हैं। जो व्यवस्था बच्चों की हँसी छीन ले, उनको बचपन में बूढ़ा बना दे, उस अमानवीय व्यवस्था को बने रहने का क्या अधिकार है। शांति सुमन के अनेक गीतों मे यह पुकार है कि बच्चों को बचाने के लिए इस व्यवस्था को बदलना जरूरी है। यह पुकार हमारी मनुष्यता को जगाने और मनुष्य-विरोधी व्यवस्था के खिलाफ खड़े होने के लिए ललकार भी है।

शांति सुमन के गीतों का महत्व उनके विशिष्ट रचाव में है। लगता है कि लोकगीत की आत्मा नई देह पा गई है या कि नई चेतना लोकगीत की काया में समा गई है। 'मौसम हुआ कबीर' में दोनों तरह के गीत हैं। पहले प्रकार के गीतों में **'आँखों का सपना', 'धूप-छाँह का गीत', 'हल-सी जिंदगी', 'फूल की लाल पंखुड़ियाँ'** आदि हैं तो दूसरे प्रकार के गीत हैं **'थमो सुरुज महाराज', 'हम मुठभेड़ हुए', 'बेटा माँगे चन्द्रमा'** और **'राजकुमार का गीत'**। इन गीतों के भाव-दशाओं और वस्तुस्थितियों की जैसी विविधता है, अभिव्यक्ति के ढंग की वैसी ही अनेकरूपता भी है। इसलिए इन गीतों को पढ़ते-सुनते हुए दोहराव से उपजी ऊब का सामना नहीं करना पड़ता। शांति सुमन के गीतों से साबित होता है कि जिंदगी के हजार पक्ष हैं तो उनको कहने के ढंग भी हजार हो सकते हैं, बशर्ते कि रचनाकार में जिंदगी को जानने की इच्छा हो और रचने की क्षमता।

शांति सुमन प्रायः समाज की वास्तविकताओं और जीवन के अनुभवों के बारे में बयान या व्याख्यान नहीं देतीं, वे चित्रों और संकेतों में अपनी बात कहती हैं। उनकी इस कला में बिम्बों, प्रतीकों और संकेतों के सहारे अर्थ का विस्तार होता है लेकिन गीत सहजता की जमीन पर रहते हैं, क्योंकि बिम्ब, प्रतीक और संकेत जन-जीवन से आते हैं और उसी जीवन की भाषा तथा मुहावरों में रचे-बसे होते हैं। **गीतों के इस विशिष्ट रचाव का अच्छा उदाहरण हैं 'हल-सी जिंदगी' शीर्षक गीत।** इसमें जीवन की बदलती परिस्थितियों के साथ जिंदगी की बदलती दशाओं और उनकी अनुभूतियों का चित्रण है। गीत में चार स्थितियों में जिंदगी की चार दशाएँ और उनकी अनुभूतियाँ हैं। हर चित्र में जिंदगी की पहले और बाद की स्थितियों को आमने-

सामने रखकर उनकी विषमता और बदली हुई स्थिति में जिंदगी की यातना की अनुभूति को तीव्र बनाया गया है। इनमें से एक गीत **'खेत में जलती फसल-सी जिंदगी'** का चित्र देखिए –

फसल जैसे आईना हो
निरखते ये रूप
बाँह में हरियालियाँ पहने
पकड़ते धूप
फूल की खुशबू कहाँ कुम्हला गयी
रेत में धँसते कमल–सी जिंदगी।

गीत के प्रतीकात्मक बिम्ब काल्पनिक और विलक्षण नहीं हैं, परिचित और सहज हैं। खास तौर से **'खेत में जलती फसल-सी जिंदगी' और 'बैल बिन बेकार हल-सी जिंदगी' तो ठेठ किसान-जीवन से लाये गए बिम्ब हैं। ये बाहर से जितने सहज हैं, भीतर से उतने ही अर्थपूर्ण हैं। ऐसे प्रामाणिक प्रयोग कई गीतों में हैं।**

शांति सुमन के जिन गीतों में नयी चेतना लोक गीत के ढाँचे में समायी हुई है, उनका रचाव दूसरे तरह का है। उनमें बोलचाल के शब्द अधिक हैं, शब्दों का प्रयोग भी बोलचाल के अनुरूप है। पूरी व्यंजना-पद्धति में चलती हुई भाषा का अंदाज मौजूद है। भाषा की बनावट उस मानसिकता को प्रतिबिम्बत करती है जिसकी गीत में अभिव्यक्ति है। लेकिन इन गीतों के कथ्य में शांति सुमन की सामाजिक, राजनीतिक चेतना और पक्षधरता प्रकट है। उदाहरण के रूप में **'थमो सुरुज महराज'** और **'राजकुँअर का गीत'** को याद किया जा सकता है।

शांति सुमन गीत के रचाव के बारे में काफी सावधान हैं। फिर भी 'मौसम हुआ कबीर' में कुछ ऐसे प्रयोग हैं जो उनकी रचनाशीलता की प्रकृति के अनुकूल नहीं हैं। एक गीत की दो पंक्तियाँ इस प्रकार है –

भूख फेंकती खून और तू आग न बरसा रे
बेइमान मौसम क्यों मारे बरछी–फरसा रे।

इस गीत की एक और पंक्ति यह है :

हर मुँह मुहर लगे दाने की

या फिर *'खुशबू का आखर'* की यह पंक्ति :

फसलों पर मिहनत का हस्ताक्षर होता

नवगीत से आये ये प्रयोग बोलचाल की भाषा से जितने दूर हैं उतने ही हिन्दी की प्रकृति के प्रतिकूल भी हैं।

आज के जनवादी गीतों को एक ओर जन आंदोलनों मे अपनी भूमिका

निभानी है तो दूसरी ओर गद्य के युग में कविता की रक्षा भी करनी है। ऐसी स्थिति में गीत को नितांत भावुकतापूर्ण आलापों और सपाट विचारधारात्मक संलापों से बचाकर जन-जीवन के यथार्थ और अनुभवों की संवेदनशील अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना जरूरी है। भावुकता पूर्ण गीत अंततः मनोरंजक साबित होते हैं और विचारधारात्मक बयानों वाले गीत रचनाकारों की आस्था की घोषणा मात्र। जरूरत ऐसे गीतों की है जो श्रोताओं-पाठकों को संवेदना और सोच दोनों स्तरों पर सक्रिय बनायें। जाहिर है आज संतुष्ट करने वाली कला अनावश्यक हो रही है और बेचैन करने वाली कला आवश्यक होती जा रही है। लेकिन गीत लिखते समय रचनाकारों को बेचैन करने और उलझन में डालने का फर्क ध्यान में रखना होगा।

●

शान्ति सुमन हमारे समय के दुर्लभ गीतकारों में

– मदन कश्यप

शांति सुमन हमारे समय के उन कुछ दुर्लभ गीतकारों में हैं, जो शिल्पगत अथवा शैलीगत अलगाव के बावजूद, सोच और संवेदना के स्तर पर समकालीन कविता से गहरे जुड़े हुए हैं।

उनके पास आज के यथार्थ की आन्तरिक गतिशीलता को परखने की दृष्टि भी है और उसे उद्घाटित करने की कला भी। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समय और समाज की विडम्बनाओं तथा विरूपताओं को बौद्धिक स्तर पर पहचानने की बजाय संवेदना के स्तर पर ग्रहण करने का प्रयत्न करती हैं। यही कारण है कि वे कई बार कठोर और खुरदरे यथार्थ को भी कोमल शब्दों में बाँधने में सफल होती हैं।

उनके इस नये संग्रह **'धूप रंगे दिन'** में **अनेक ऐसे गीत हैं, जिन्हें अन्तर्वस्तु के स्तर पर समकालीन कविता से अभिन्न माना जा सकता है। 'पहचान बनो', 'मुनिया के घर का सूरज', 'तारों के झूमर', 'आटे-सी पिसती माँ', 'फटेहाल हम', 'मेधा पाटकर के लिए', आदि ऐसी कविताएँ हैं जिन्हें गीत के कोमल शिल्प में ढाल पाना दुर्लभ कुशलता की माँग करती है।**

उनके गीतों से होकर 'मौसमी फूलों की सुगन्ध से भरी हवाएँ' भी गुजरती हैं और 'छिड़ी हुई दुनिया में भूख की लड़ाई' की अनुगूँज भी मिलती है।

गीतों के बारे में प्रायः यह माना जाता है कि उसके शिल्प और छंद संवेदना के 'ऑर्गन' को नष्ट कर डालते हैं। शान्ति सुमन के गीत इस मान्यता का सृजनात्मक प्रतिकार करते हैं।

●

समकालीन हिन्दी कविता के पड़ोस के गीत

– डॉ० रविभूषण

हिन्दी के नवगीतकारों में डॉ० शान्ति सुमन का नाम बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध है। इनके पहले गीत-संकलन 'ओ प्रतीक्षित' (1970) के पूर्व बहुत कम गीत-संकलन प्रकाशित हुए थे, जिनका संबंध नवगीत से जुड़ा। शान्ति सुमन पिछले चार दशक से गीत-रचना में निरन्तर सक्रिय हैं। वे नवगीतकारों की पहली पंक्ति में हैं और उन्हें छोड़कर नवगीत पर किया गया कोई भी विचार उचित और प्रामाणिक नहीं होगा।

हिन्दी के जिन नये गीतकारों ने समय के अनुसार अपनी गीत-रचना की जमीन बदली, उनमें शान्ति सुमन प्रमुख हैं। उन्होंने जनवादी गीतों की रचना की। वे एक साथ नवगीतकार और जनवादी गीतकार के रूप में लोकप्रिय हैं। उनके गीत समकालीन हिन्दी कविता के पड़ोस के भी हैं।

शान्ति सुमन ने गीत के सर्वथा भिन्न रचना-विधान में समकालीन यथार्थ की विविध छवियाँ प्रस्तुत की हैं। उनके गीतों में संवेदना और विचार की सह उपस्थिति है। उनके कई नये और अछूते बिम्ब हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन के अनेक केन्द्रों से तथा अनेक स्थानों के कवि-मंचों से उन्होंने गीत-पाठ किया है।

●

जनवादी चिन्तन और जनपक्षधरतापूर्ण लेखकीय दायित्व

– रामनिहाल गुंजन

गौरतलब तथ्य यह है कि शान्ति सुमन ने गीत-रचनाओं के विकास-क्रम में शोषित-उत्पीड़ित जनता, नारी-वर्ग तथा बच्चों के वर्तमान एवं भविष्य के प्रति अपनी सहज और स्वाभाविक चिन्ता जाहिर करते हुए इस बात की ओर संकेत किया है कि आनेवाले समयों में इनके दुखों और समस्याओं का निश्चय ही अन्त

होगा और सच पूछिये तो शान्ति सुमन के ऐसे ही आस्थावादी गीतों के जरिये उनके जनवादी चिन्तन और जनपक्षधरतापूर्ण लेखकीय दायित्व की सूचना मिलती है।

●

गीत-रचना का एक नया सौन्दर्यशास्त्र

– नचिकेता

शान्ति सुमन हिन्दी के स्त्री-गीतकारों, खासकर नवगीत और जनगीत के क्षेत्र में सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं, जिन्होंने अपनी रचनात्मक पहलकदमी की बदौलत गीत-रचना का एक नया सौन्दर्यशास्त्र गढ़ा है। शान्ति सुमन ने, दरअसल, नवगीत के गहरे निराशाबोध, मध्यवर्गीय ढुलमुलपन और भावगत अमूर्त्तन से हिंस्र संघर्ष करके जनपक्षधर जनगीत के अपूर्व रचना-संसार के निर्माण में भरपूर योगदान किया है। **हिन्दी जनगीत-रचना के क्षेत्र में शान्ति सुमन, शायद, पहला स्त्री-गीतकार हैं, जिनकी रचनाएँ (गीत) संघर्षशील जन-संघर्षों में जुझारू मेहनतकश अवाम के द्वारा गाये गये हैं।** हालांकि हिन्दी आलोचना की, इसके बावजूद, ठण्डी उपेक्षा, हैरतअंगेज उदासीनता और अमानवीय अवमानना का तीखा दंश उन्हें झेलना पड़ा है। शान्ति सुमन के गीतों की रचना-दृष्टि, वर्गदृष्टि, विश्वदृष्टि और कलादृष्टि की सूक्ष्मता और विविधता की पड़ताल में ठोस और सार्थक प्रयास की आवश्यकता है।

अपने समय, समाज और इतिहास के अंतर्विरोधों, राजनीतिक विसंगतियों और सांस्कृतिक विडम्बनाओं को परखने और पहचानने के अलहदा तर्क के कारण शान्ति सुमन के गीत अपने समकालीन नवगीतकारों और जनगीतकारों से सर्वथा भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी अनुभूति की सघन संरचना, बेहद आत्मीय, पारिवारिक और ऐन्द्रिक बिम्ब-संयोजन भावकों की संवेदना से सहज तादात्म्य हासिल कर लेने में अत्यन्त ही सक्षम हैं। उनके गीतों की बहुरंगी दुनिया में प्रवेश करना एक नये अनुभव से होकर गुजरना है, जिसके रग-रग में लोक-जीवन की खुशबू और मिठास, लोक-लय की सहज तरलता और माधुरी एवं वैचारिक अंर्तवस्तु में आज संश्लिष्ट जीवन की संपूर्ण जटिलता और संघर्षधर्मिता का आदिम राग अंतर्ग्रथित है। शान्ति सुमन के गीतों में भारतीय सामंतवाद के पतनशील जीवन-मूल्यों, साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण की नृशंसताओं और उपभोक्तावाद की संवेदनहीनताओं के विरूद्ध तीव्र प्रतिरोध और इन अमानवीयताओं

के विरूद्ध हिंस्र संघर्ष का आह्वान है। इसके बावजूद इनके गीतों की प्रभावी अंतर्वस्तु-लय, छंद, बिम्ब, प्रतीक, भाषा-शिल्प-पारदर्शी और कलात्मक है।

जगजाहिर है कि संस्कृतियाँ भाषा के, खासकर लोकभाषा के कंठों से ही चहकती हैं और आज की साम्राज्यवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति अपना प्रभुत्व कायम करने के निमित्त हमारी देशज संस्कृतियों को विकृत, प्रदूषित, तनावग्रस्त और संकटग्रस्त करने के लिए सभी प्रकार के प्रचार माध्यमों के जरिये चौतरफा हमले कर रही है। ऐसी खतरनाक स्थिति में विदेशी प्रभुत्व का सांस्कृतिक प्रतिरोध देशज संस्कृति के माध्यम से ही संभव है और देशज संस्कृति लोकभाषा के कंठों से ही मुखर होगी। इन्हीं वजहों से शान्ति सुमन लोकभाषा, लोक जीवन की लय, छंद, धुन, मुहावरे और लोकभाषा के अन्य अव्ययों एवं लोक शब्दावलियों का अपनी गीत-रचना में कलात्मक इस्तेमाल ही नहीं करतीं, बल्कि अपनी मातृभाषा 'मैथिली' में भी गीत की रचना करती हैं। उनकी कृतियों में उनके इस अवदान का भी साक्ष्य मिलता है।

बहुमुखी प्रतिभा की शान्ति सुमन ने गीत के अलावा मुक्त छंद की कविताएँ, उपन्यास और गंभीर आलोचनाएँ/समीक्षाएँ भी लिखी हैं। उन्हें कवि-सम्मेलन के मंचों पर भी अकूत सफलताएँ मिली हैं। इसलिए उनके व्यापक रचना संसार को समग्रता में परखने, पहचानने और समझने का प्रयास अत्यन्त ही सराहनीय और प्रेरक होगा।

●

गीतों में सहज बिम्बधर्मिता

– डॉ० चन्द्रभूषण तिवारी

शान्ति सुमन के गीतों में सहज बिम्बधर्मिता है। जगत के बहुत सारे दृश्य, लोग, स्थितियां सब कुछ हैं। **इनके गीत व्यक्तिगत स्तर से शुरू होकर सामूहिक रूप धारण कर लेते हैं।**

●

विचारों के कवच में संवेदनायें

– रमेश रंजक

आपके विषय में मेरी अपनी धारणा है – गीत को आपसे बड़ी अपेक्षाएं हैं। **आप अपने विचारों के कवच में अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करती हैं।**

●

मेहनतकश अवाम की मुक्तिकामी जद्दोजहद से एकरूप गीत

– महेश्वर

शान्ति सुमन के पास मध्यवर्गीय लोगों की दैनिक तकलीफों के बोध को मानवीय संवेदना का अंग बना देनेवाला गीत-तत्त्व है। जगह-जगह इस मजबूत सम्भावना के सबूत हैं कि यह गीत-तत्त्व मिट्टी और मशीन और उन पर काम करनेवाले मेहनतकश अवाम की शक्ति और मुक्तिकामी जद्दोजहद से एकरूप हो सकता है।

●

मोहभंग की मनःस्थिति के विभिन्न पक्ष

– ओमप्रकाश ग्रेवाल

शान्ति सुमन के गीतों में **मोहभंग की मनःस्थिति के विभिन्न पक्षों को व्यक्त किया गया है।**

●

गीतों में धार

– 'मौसम हुआ कबीर' के फ्लैप से

शान्ति सुमन हिन्दी साहित्य की एकमात्र कवयित्री हैं जिन्होंने **शोषित-पीड़ित जनता के दुख.दर्द को अपने गीतों में चित्रांकित किया है। वे शोषकों के खिलाफ दलितों-पीड़ितों को आगाह करती हैं और एकजुट होकर उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं।** ''मौसम हुआ कबीर'' **उनके जनवादी गीतों की अगली कड़ी है। ज्ञातव्य है कि** ''सुलगते पसीने'' **से ही वे एक सशक्त जनवादी गीतकार के रूप में अपनी पहचान कायम कर चुकी हैं।**

''मौसम हुआ कबीर'' में समकालीन भयावह यथार्थ को उजागर किया गया है। वास्तव में ये जनवादी गीत शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ खड़ा होने का साहस और संकल्प हैं। चूँकि शान्ति सुमन मेहनतकश जनता के जीवन-संघर्ष के प्रति जागरूक हैं – पक्षधर हैं – पैनी दृष्टि से लैस हैं इसीलिए इन गीतों से गुजरते हुए संघर्ष की राह अख्तियार करने को हम मजबूर हो जाते हैं।

''मौसम हुआ कबीर'' के गीत जन साधारण (विशेषकर उ० प्र० और

बिहार के लोकगायकों) में पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। इसमें दो राय नहीं कि जनवादी गीतों को जनता के बीच जाना है, उन्हीं के बीच प्रचारित हो जीवित रहना है। इस संकलन के गीतों की सार्थकता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि जनता इन्हें स्वीकार कर रही है।

लोक-भाषा, संस्कृति, मुहावरों की निकटता से ये गीत जनता के निकट हैं। फिर इन गीतों में जनसाधारण के प्रति सहज लगाव है। **भाषा की सहजता, लोकगीतों-लोकधुनों के अति निकट होने के कारण "मौसम हुआ कबीर" के जनगीत जनसामान्य तक पहुँचने में कारगर हुए हैं।** इन गीतों में जन-जीवन के नये उभार हैं, नये तेवर हैं।

"मौसम हुआ कबीर" के गीतों में धार है – धार इसीलिए कि गीतकार जनवादी गीत-रचना से रूबरू वाकिफ हैं। ये गीत वस्तुपरक तरीके से सामाजिक विषमताओं को उकेरते हैं और आम जनता को शिक्षित करने की जिम्मेदारी को निभाते हैं। **यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि कवयित्री मध्यवर्गीय संवेदना की भावगत कमजोरियों से बराबर उबरती आयी हैं। "ओ प्रतीक्षित" से "मौसम हुआ कबीर" तक की गीत-यात्रा इस बात को स्वतः उजागर कर देती है। जनवादी गीतकारों की राह जोखिमों से भरी है, जिसे शान्ति सुमन ने चुनौती की तरह स्वीकार किया है।**

"मौसम हुआ कबीर" में कहीं बारूद की तरह फूटकर, कहीं बन्दूकों से लैस होकर जनक्रांति के लिए एकजुट होकर अपना खून बहाते रहने की रवानी है। **इन गीतों के शब्द लहू के कतरे हैं – संघर्ष से मिले हुए जनसाधारण के आँख-हाथ-पाँव-पेट हैं।** इन गीतों के जरिये शान्ति सुमन आदमखोर इरादों के प्रति सतर्क हैं और सदियों से छीन लिए गये हकों को वापस दिलाने के लिए कृतसंकल्प हैं।

प्रस्तुति – अमृतेश

●

केन्द्र : आलोचकों के विचार

शान्ति सुमन के नवगीत आलोचना की दृष्टि में

प्रस्तुति – सुधांशु सिंह

नवगीत की अनन्या कवयित्री एवं समकालीन लेखन की प्रणेत्री

– राजेन्द्र प्रसाद सिंह

डॉ० शान्ति सुमन नवगीत की अनन्या कवयित्री एवं समकालीन लेखन की प्रणेत्री हैं। वे नवगीत और जनवादी गीत की मुख्य धारा में दूर तक स्वीकृत, समादृत उच्च स्तरीय रचनाकार हैं। पूर्व प्रकाशित कृतियों ने जहाँ उन्हें व्यापक प्रशस्ति और प्रतिष्ठा दी है, वहीं प्रस्तुत कृति नवगीत के विकास में उनके योगदान का प्रमाण देती है। प्रायः चार दशक के लम्बे दौर में गीत-विधा की नयी रचनाशीलता का मार्का बनाती, दृष्टि और दिशा का निरूपण करती शान्ति सुमन ने निजी पहचान को सशक्त किया है। गीत-विधा की नयी पथ-रेखा इन रचनाओं में स्पष्ट होती है।

डॉ० शान्ति सुमन की गीत-संरचना स्पष्ट ही उन्मुक्त रचना-प्रक्रिया से फलीभूत है, जिसमें पूर्वागत और प्रथित गीत-रचना की रूढ़ नियमावली से निरपेक्ष निर्मिति प्रशस्त हुई है। जाहिर है कि लय-सन्धि, तालाश्रय, स्वर के विवर्त से अनेक छन्दों का मिश्रण गठित है। नयी गेयता डॉ शान्ति सुमन के गीतों के रचाव में ही सन्निहित है।

●

...एकमात्र कवयित्री

– उमाकान्त मालवीय

नवगीत की एकमात्र कवयित्री.....

●

नागार्जुन की कविता को अमरता देनेवाले मैथिल संस्कृति के उपकरण शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय

– डॉ० रेवतीरमण

शान्ति सुमन राग और रूप ही लिखती रहीं, विराग और अरूप ने कभी उन्हें आकर्षित नहीं किया तो उसके पीछे उनकी गतिशील यथार्थ की समझ और विकासशील वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि है। मिथिला की जनपदीय लोक चेतना और गेय संस्कार उनके गीतों में 'स्व-भाव' की तरह शुरू से ही विन्यस्त रहे हैं। उनमें

माँ की लोरी और पहरुए की प्रभाती गेय रूप में सहज और प्रभाव के स्तर पर अक्सर अचूक रही है। कहीं-कहीं उत्सवधर्मी आयोजनों की स्नेहिल सामाजिकता भी। उनकी तीर की तरह नुकीली, अचूक गीति-प्रतिभा शुरू में अत्यंत चमकदार थी, आज भी है जिसका रचनात्मक विन्यास 'नवगीत' से लगाकर 'जनगीत' और 'जनवादी' गीत का परचम लहराने के लिए किया गया।

बहरहाल मैं मानता हूँ कि शान्ति सुमन के भीतर गीत की संवेदना निश्छल है, अमिश्रित है। उनके भावावेश अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं। वे गीत रचने और उनकी सम्यक प्रस्तुति के लिये ही बनी हैं। संभव है, जन-आन्दोलनों का पीछा करने की प्रेरणा उन्हें उद्दाम युग चेतना से मिली हो।

शान्ति सुमन छायावाद की महीयसी महादेवी से न मुठभेड़ करती हैं और न उनके चरण-चिन्हों का अनुसरण ही, पर कोई चाहे तो सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में उनकी जन-सम्बद्धता परख सकता है। खास बात यह है कि उनके गीतकार की जड़ें मिथिला में हैं। उनके गीतों में जयदेव भी हैं, विद्यापति और शुरूआती दौड़ के नागार्जुन भी। महादेवी के प्रगीत कल्पना-समृद्ध हैं, वे कलागीत के शिखर हैं, परन्तु उनका कोई जनपदीय आधार नहीं है। उनमें जैसे कोई मनोरम स्त्री शरीर नहीं, वैसे ही उनका कोई व्यवस्थित भूगोल भी नहीं, हर साँस का इतिहास लिखने के दावे के बावजूद। जबकि शान्ति सुमन के गीतों में मिथिला को गंभीर रचनात्मक प्रतिनिधित्व मिला है। मैथिल संस्कृति के वे सारे उपकरण जो नागार्जुन की कविता को अमरता देनेवाले हैं, बड़े शालीन तरीके से शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय हैं।

●

शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा...

– डॉ० सुरेश गौतम

शान्ति सुमन के गीतों में वैसे तत्त्व मौजूद हैं जिनके कारण उनके गीतों से नवगीत की अगली संभावना संकेतित होती है।

.....नवगीत की परम्परा में जनवादी स्वर की सुगबुगाहट लेकर शान्ति सुमन का सौमनस व्यक्तित्व उभरकर सामने आया है। **नवगीत जिस अंगड़ाई की नजाकत लेकर आया था उस समय शान्ति सुमन ने सुमन-सरीखे सुरभित गीत लिखे। कवयित्री का रचना-संसार प्रदर्शनप्रिय ओढ़ी हुई**

भावुकता के प्रति साग्रह नहीं है। इनकी रचनाशीलता में एक परिमार्जित और सुपठित प्रतिभा के दर्शन होते हैं। जो रचनाकार अध्ययन और साधना में लगा रहता है उसके लेखन में सर्वकालीन चेतना के अंकुर देर-सवेर जरूर जन्मते हैं। अध्ययन और साधना की रचना-पीठिका पर शान्ति सुमन ने अपने व्यक्तित्व को निखारा है। इसमें दूर तक कोई शक नहीं कि शान्ति सुमन एक शिक्षित और सम्भ्रान्त व्यक्तित्व की धनी महिला साहित्यकार हैं।.....

नवगीत के प्रारम्भिक स्वरों में कवयित्री का स्वर अपना एक अलग आभा–मंडल तैयार करता रहा है।.....

.....अपने विरूद्ध जीने का विवशता-बोध और रचनाहीन स्थितियों के टकराव का द्वन्द्वात्मक संघर्ष जनबोध से सीधे जुड़ जाता है, जब घुटनशील चुनौतियाँ दैनदिन तनावों को बारूदी शक्ल देने लगती है। कवयित्री के रचना-मानस में 'परछाई टूटती' 'मौसम हुआ कबीर' की भूमि को खेत की तरह जोतती है। 'सुलगते पसीने' की गंध 'प्रतीक्षित' बीजों के इन्तजार में विद्रोही मुद्रा अपना लेती है। कवयित्री के तेवर बिल्कुल अलग रूप में सामने आते हैं। भाषा जीवन की तल्खियां और मरोड़ को तरख़ान का रंदा बनाकर घिसने लगती है, कामगार की फौलादी छेनी की भाँति काटने लगती है। रचयित्री की चाह श्रम को नमन करती है और सामाजिक वैषम्य के प्रतिकार के लिये कुशल दर्जी की नुकीली सुई-नोंक से समाज की बुनावट उधेड़कर बारीक सिलाई की आड़ में उस सुन्दरता का विरोध करती है जो जीवन को शोषित और असुन्दर बनाने के लिए घिनौने षड्यंत्र हैं।..... अतः **शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा और अपंग होगा। तमाम वैचारिक मतभेदों एवं प्रस्थान बिन्दुओं के बाद भी आलोचक ऐसा महसूस करता है कि नवगीत की पृष्ठभूमि एवं उसके विकास में शान्ति सुमनका भी महत्वपूर्ण योगदान है।**

●

गीत के फलक पर शान्ति सुमन का आविर्भाव एक घटना

– सत्यनारायण

गीत के फलक पर शान्ति सुमन का आविर्भाव एक घटना है। जी हाँ, एक घटना। ऐसा कहकर मैं उन्हें महिमामंडित नहीं कर रहा। मेरे पास इसके ठोस और वाजिब आधार हैं।...

मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है **कि शान्ति सुमन की सृजनधर्मिता ने पैंतीस-चालीस वर्षों की यात्रा में गीत के धरातल पर अपना होना प्रमाणित किया है।...**

...शान्ति सुमन ने नवगीत से जनगीत तक का लम्बा सफर तय किया है। ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ और क्या हुआ, इसे मैंने चुप रहकर ही सही, ध्यान से देखा-परखा है। वह दौर नवगीत के उन्मेष का दौर था। तब उमाकान्त मालवीय, ओम प्रभाकर, नईम, देवेन्द्र कुमार, रामचन्द्र चन्द्रभूषण जैसे कई गीत-कवि नवगीत की अस्मिता प्रतिष्ठित कर रहे थे। वाराणसी से शंभुनाथ सिंह, मुम्बई से वीरेन्द्र मिश्र और मुजफ्फरपुर से राजेन्द्र प्रसाद सिंह नवगीत के पक्ष में युद्ध स्तर पर जूझ रहे थे। कलकत्ता से चन्द्रदेव सिंह और महेन्द्र शंकर के सम्पादन में गीतों का प्रतिनिधि संकलन 'पाँच जोड़ बाँसुरी' फलक पर आ चुका था। **तभी मुजफ्फरपुर की एक युवा कवयित्री ने अपने नवगीत-संग्रह के साथ अपना होना प्रमाणित किया। कवयित्री थीं, शान्ति सुमन और संग्रह था – 'ओ प्रतीक्षित'।**

●

समकालीन जिन्दगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज

– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

शान्ति सुमन के ये गीत केवल नवइयत की तलाश के लिये नहीं लिखे गये हैं, बल्कि ये मध्यवर्ग की समकालीन जिन्दगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज हैं।....

शान्ति सुमन के 'ओ प्रतीक्षित' को पढ़ने के बाद नवगीत का वह पक्ष उभरता है जो नयी संवेदनाओं को बतौर हिस्सेदारी के इस तरह लयबद्ध करता है कि वह व्यापक मानव-बोध का साफ-सुथरा आईना बन सके।... शान्ति सुमन ने आज की जिन्दगी के बाहरी दबाव और अन्दरूनी उलझनों की घेरेबन्दी से जब-तब अपने को मुक्त पाया है। जीवन के प्रति उनका जितना भी है, बहुत साफ और सुलझा हुआ विचार है।

शान्ति सुमन के गीतों में भावात्मकता बराबर अनाहत रूप से विद्यमान मिलती है, किन्तु उनकी भावुकता में एक ओर निर्बाध मुक्तावस्था है तो दूसरी ओर पीड़ा और घुटन। वे प्रतिदिन के दबावों से मिले हुए दर्द को यथार्थ की सतह पर झेलती हैं, किन्तु लय-संधान में भावात्मकता सघन हो जाती है। पुराना गीतकार किसी भावुक क्षण को पकड़कर अपनी पूरी भावात्मकता के साथ गीत

की रचना किया करता था। गीत-विद्ध क्षण में यथार्थ से वह कोसों दूर रहता था। असीम भावुकता और तदनुकूल अबाध कल्पना गीत की शर्त्त हुआ करती थी, किन्तु नवगीतकार अपने गीतों को जीवन की कड़ुवी और मीठी सच्चाइयों का हिस्सेदार साबित करता है। इस तरह सही माने में 'ओ प्रतीक्षित' के गीत जिन्दगी से हिस्सेदारी के गीत हैं। वस्तुतः जिन्दगी की सही माने में हिस्सेदारी रचनात्मक धरातल पर करते समय कभी बड़बोलेपन का खतरा रहता है और कभी सिद्धान्तीकरण का। नयी कविता में ये दोनों खतरे अपनी कारगुजारी दिखाते हुए आईने से साफ नजर आते हैं। शान्ति सुमन के इन गीतों में या तो यथार्थ के फलक पर संवेदना का चटकीला रंग उभरता है अथवा संवेदनशील क्षणों में यथार्थ चुभ गया है। इसलिए बड़बोलेपन की गुंजाइश नहीं है। इसी तरह संवेदनीयता सिद्धान्त-सृजन के लिए अवकाश नहीं देती।

.....बिम्बों के मामले में शान्ति सुमन जी ज्यादा संवेदनशील हैं। नवइयत की तलाश की अपेक्षा अनुभूत्यात्मक कोमलता पर उनकी दृष्टि अधिक रहती है। किसी रूप की समग्रता अथवा अनुभूति की गहराई को प्रकट करने में उनके बिम्ब खरे उतरते हैं।

.....शान्ति सुमन ने भावाकुल मनोदशा को लोक-संदर्भ से बिम्बों का चयन, रंगों के संयोजन और प्रतीकों की सृष्टि करके नियंत्रित किया है। उनकी यह संचेतना मुक्त क्षण के निजी प्रसंगों को लोक-संवेदना और सौन्दर्य के चौखटे में मढ़ देती है। शान्ति सुमन के लोक-संदर्भों में मैथिल परिवेश और सौन्दर्य-चेतना में रंगों की परख सर्वाधिक उल्लेखनीय है।

●

महाश्वेता देवी के कथा-साहित्य के केन्द्र में आदिवासी समाज की तरह शान्ति सुमन के गीतों के केन्द्र में बिहार के किसान-मजदूर

– डॉ० वशिष्ठ अनूप

डॉ० शान्ति सुमन एक ऐसी कवयित्री हैं जिन्होंने स्वतःस्फूर्त भावुकता को काव्य का विषय न बनाकर जीवन की मूलभूत समस्याओं और शोषक-शोषित वर्ग के बीच के टकरावों एवं संघर्षों को अपने गीतों में अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने नवगीत से लेकर जनगीत और जनवादी गीत तक की सार्थक और महत्त्वपूर्ण काव्य-यात्रा की है। आरंभिक दौर में लिखे गये उनके नवगीत भी सीमाओं का अतिक्रमण करते रहे।

शान्ति सुमन ने समाज, साहित्य, गीत, लय, छन्द, भाषा, बिम्ब, प्रतीक, विचार और कला आदि पर गम्भीरता से चिन्तन किया है। वह ढुलमुल रचनाकारों की भाँति साहित्य में राजनीति का विरोध नहीं करतीं, किन्तु राजनीतिक विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति को जरूर मानती हैं।

जिस प्रकार महाश्वेता देवी के कथा-साहित्य का केन्द्रीय विषय आदिवासी समाज है, उसी प्रकार शान्ति सुमन के गीतों के केन्द्र में बिहार के किसान-मजदूर और विशेषकर खेतिहर-मजदूर हैं। ये वे मजदूर हैं जो दिन-रात अपना खून-पसीना बहाकर धरती को उर्वर बनाते है और अन्न उगाते हैं, किन्तु स्वयं अन्न के एक-एक दाने के लिये तरसते-तड़पते हैं, जिनके रोटी, कपड़ा और झोपड़ी के सपने भी **सपने ही रह जाते हैं।**

●

अछूता प्रस्तुत करने की तड़प

– ओम प्रभाकर

कवयित्री में – एक बेहद वेगवती – अप्रतिहत तड़प है अनुभूति को व्यक्त करने की : अनुभूति-विशेष के व्यक्तीकरण के साथ कुछ अछूता प्रस्तुत करने की और किसी अभुक्त को उद्घाटित करने की।

●

शब्दों को गढ़ने का प्रयत्न

– देवेन्द्र कुमार

आपने गीतों में बहुत सारे शब्दों को गढ़ने का प्रयत्न किया है। कुछ शब्द अपने खुरदुरेपन में ही अच्छे लगते हैं। आपके गीतों में उनकी अनुभूति का कच्चापन ही उनकी उपलब्धि है।

●

गीत पुरअसर हैं

– विश्वम्भर नाथ उपाध्याय

शान्ति सुमन के गीतों में नारी-उचित मार्दव अधिक है, घरेलूपन भी है। **गीत पुरअसर हैं।**

●

नई क्रांति-दृष्टि

– कुमार रवीन्द्र

शब्द की सामर्थ्य में यकीन – हाँ, 'गोबर-माटी सने हाथ में भाषा जीने की' का होना – यही है कवयित्री की नई क्रांति-दृष्टि। उसे विश्वास है कि 'हँसी बच्चों की हँसेंगे शब्द/नहीं जालों में फँसेंगे शब्द' और क्यों न हो यह, क्योंकि अब 'चाक पर श्रम के मढेंगे शब्द।'

यही है शान्ति सुमन का रचना-संसार, जिसमें **'दुख से मँजी हुई धरती'** और उसकी विविध छवियाँ हैं, **'यह सदी रोने न देगी' का** त्रासक एहसास है, **'अग्निपंख लेकर उड़े थे हम' की स्मृतियाँ हैं,** 'ईख-ईख मन/हवा मछलियों जैसी', 'धो देती मन हँसी तुम्हारी/करूणा-नेह पगी' की सुखानुभूतियाँ हैं। 2007 में आये उनके अधुनातन संकलन 'धूप रंगे दिन' के गीत साक्षी हैं उस रागात्मक संचेतना के **विविधवर्णी रूपाकारों के जिनका पर्याय हैं सुश्री शान्ति सुमन।**

●

नागार्जुन के तालाब में कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती मुड़े नाखूनों और गाँठदार ऊँगलीवाली शकुन्तला नहीं

– डॉ० अरविन्द कुमार

गीतों के बारे में यह माना जाता रहा है कि गीत सिर्फ अपनी गेयता के कारण लोकप्रिय होते हैं, पर शान्ति सुमन ने गेयता के बीच गीतों की एक नयी भूमिका निर्धारित की है। इसे उनके संकलन 'मौसम हुआ कबीर' में बखूबी देखा जा सकता है। हालांकि बाद के संकलनों में गीतों का क्षेत्र-विस्तार भी होता है जहाँ प्रेम और संबंध जैसे शब्दों को एक नयी व्याख्या मिली है। **इस प्रेम तथा संबंध की व्याख्या में शान्ति सुमन इतनी सहज हैं जैसे वे घर में बैठकर बतिया रही हों। पर सबसे बड़ी बात है कि वे भावुक नहीं होतीं बल्कि उसे जीवन के वास्तविक संदर्भों से जोड़कर देखती हैं।** अपना बचपन, गाँव में बिताये गये बचपन के दिन, रिश्तों की अकुलाहट, माँ तथा पिता के साथ बिताये गये समय के दृश्य, खपरैलों पर लौकी की लतरें खोजती कोशी के कछेर की लड़की की आँखें या धार नहाती लड़की का साथ सब कुछ याद है उन्हें।.....

शान्ति सुमन के यहाँ गाँव का मतलब सिर्फ प्रकृति या मौसम तक ही सीमित

नहीं है, वह उनके भीतर रक्तबीज की तरह मौजूद है और यही रक्तबीज उन्हें निरन्तर उस गाँव की सरहद पर ले जाता है। इसलिए गाँव से निकलकर भी गाँव का यादों में बसे रहना या फिर गाँव को दिन-रात जीना गीतकार की एक प्रमुख विशेषता है।.....

शान्ति सुमन के यहाँ शब्द बोलते हैं चाहे वे बिम्बों के रूप में हों या रूपक के रूप में। साथ ही इनमें एक प्रकृति बोलती होती है और होती है उसकी हरियाली, उसका सौन्दर्य। यहाँ तक की रिश्तों की अकुलाहट में भी यह प्रकृति मौजूद है।.....

अब तक शकुन्तला का मतलब रहा है कि रूप और शृंगार का एक युग्म, जहाँ कोमलवदना शकुन्तला दुष्यन्त की प्रेयसी बनती है, पर यहाँ की शकुन्तला का रूप बिल्कुल अलग है – **'मुड़े हुए नाखून/ईख सी गाँठदार ऊँगली/टूटी बेंट जंग से लथपथ/खुरपी सी पसली'..... नागार्जुन के यहाँ भी तालमखाने के तालाब हैं, पर तालाब के पानी में धँसकर कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती मुड़े नाखूनों और गाँठदार ऊँगलीवाली शकुन्तला नहीं है। आप सोच सकते हैं कि गीतकार के लिए इस रूपक को गढ़ना कितना कठिन रहा होगा।** आप यह भी सोच सकते हैं कि शान्ति सुमन की संवेदना का स्तर क्या है ?

प्रस्तुति – सुधांशु सिंह

●

वृत्त :

- शान्ति सुमन : व्यक्ति एवं कृति
- शान्ति सुमन : आत्मकथ्य

शांति सुमन : व्यक्ति एवं कृति

❑ दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश'

नवगीत और जनवादी गीत के बड़े रचनाकारों में एक डॉ० शान्ति सुमन का स्थान अपनी समकालीन गीत कवयित्रियों में सर्वोच्च है। नवगीत और जनवादी गीत लिखने में जैसी सफलता शान्ति सुमन को प्राप्त हुई वैसी और किसी गीत कवयित्री को नहीं। कवि सम्मेलनों के माध्यम से लगातार तीस वर्षों तक काव्य-मंचों पर धूम मचाने वाली सुकंठ गीतकार शांति सुमन पूरे देश में अपनी पहचान बना चुकी हैं। समकालीन हिन्दी गीत-काव्य को धार और ऊर्जा प्रदान करने वाले कवियों में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

गीत-काव्य की अनन्य साधिका शांति सुमन की सरलता, सहजता और शालीनता उनके व्यक्तित्व के आभूषण हैं। इनका सीधा प्रभाव उनकी रचनाओं पर भी पड़ा है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं की भाषा सीधी, सरल और आडम्बरहीन है। डॉ० शांति सुमन की रचनाओं में मिथिलांचल के गांवों की मिट्टी की सुगन्ध और उसकी पहचान देखते ही बनती है। इनके गीतों में ग्रामीण जीवन के दुःख-सुख, जीवन-शैली और जीवन-संघर्ष की स्पष्ट झलक मिलती है। आम आदमी की पीड़ा, व्यथा और संवेदना को कोमल शब्दों में गूंथने और उसे अपने गीतों में सजाने की अदभुत कला शांति सुमन में है।

शांति सुमन की रचनाओं में एक ओर जहाँ नये-नये अनछुये बिम्ब, भावनाओं की ताजगी और कल्पनाओं की कोमलता दिखलाई देती है, वहीं दूसरी ओर समसामयिक समस्याओं पर गहरे चिंतन का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सचमुच शांति सुमन लोक संवेदनाओं की शिखर कवयित्री हैं। शायद इसीलिए समीक्षकों ने इन्हें बिहार की महादेवी के रूप में महिमामंडित किया है। शांति सुमन जैसी धीर, गंभीर और मानवतावादी श्रेष्ठ कवयित्री का संक्षिप्त जीवन परिचय प्रस्तुत करते हुए मैं अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर रहा हूँ।

जन्म :–

शान्ति सुमन के पहले गीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' के आधार पर उनकी जन्मतिथि 15 सितम्बर 1942 है। उसके बाद उनके जितने भी संग्रह आये सबमें उसी तिथि को छापने की विवशता रही। एक तो दूसरे संग्रह में उसको सुधारा नहीं गया और दूसरे गीतकार की ओर से उसका कोई संशोधन भी नहीं हुआ। पता नहीं 'ओ प्रतीक्षित' में कैसे 1944 को 1942 पढ़ लिया गया अथवा प्रूफ को सावधानी से देखा नहीं गया।

शान्ति सुमन आजीविका से हिन्दी-विभाग की प्रोफेसर रही हैं। उनके विद्यालय और महाविद्यालय दोनों के प्रमाणपत्रों में उनकी जन्मतिथि 15 सितम्बर 1944 है। सेवानिवृत्ति भी उनकी इसी तिथि से हुई है। यह एक असुविधा तो इस्वी सन् के साथ है। दूसरी असुविधा इनके जन्मदिन के साथ भी है। इनके काका मदन मोहन लाल जो बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सजग थे, ने शान्ति सुमन का जन्मदिन शरत पूर्णिमा लिखा दिया था। इनकी सभी कृतियों पर जन्म के साथ शरत पूर्णिमा को ही लिखा गया। बाद में इनकी फुआ इस तिथि से असहमत हो गईं। उन्होंने बताया कि 'मदन का अपना जन्म शरत पूर्णिमा को हुआ, इसलिये उसने तुम्हारा जन्मदिन भी उसको ही लिखा गया। उसको तुम्हारे जन्म का सही अनुमान नहीं रहा। असल तो यह है कि तुम्हारा जन्म अनन्त चतुर्दशी को हुआ था। सब ने घर में अनंत के डोरे बांधे थे। मेरे सिवा तुम्हारे जन्म का साक्षी कौन होगा कि तुम्हारे जन्मते ही मैंने तुमको गोद में उठा लिया था। मुझको अनन्त का डोरा खूब याद है।'

शान्ति सुमन को थोड़ा कैसा अनुभव होता है कि फुआ ने पहले बता दिया होता तो यह अन्तर नहीं होता। वस्तुतः फुआ को कहने का अवसर नहीं मिला। उनको पता नहीं था कि इनके आवेदन पर काका ने जन्मतिथि में क्या भरा है। और यह पता तो एकदम नहीं चला कि उनकी भतीजी कविता लिखने लगी है। उसके संग्रह भी छपकर आने लगे हैं। कभी इस संबंध में बात होती तो सबकुछ स्पष्ट हो जाता।

इस घटना के पीछे एक बहुत बड़ा कारण है जिसको इससे विलग नहीं किया जा सकता। गांव में स्कूल नहीं होने के कारण समीप के गांव के स्कूल से इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा दी थी। शान्ति जी ने बताया कि फार्म उनके काका ने भरा था। इन्होंने सिर्फ हस्ताक्षर किया था। तब यह बोध कहाँ था कि हस्ताक्षर करते हुए पूरा फार्म पढ़ लिया जाए। पढ़ भी लेतीं तो शरत पूर्णिमा अनन्त चतुर्दशी नहीं हो सकती थी, क्योंकि काका ने जो लिखा था, वही तय था। जैसा कि शान्ति जी ने बताया कि काका तो केवल सूचना देते थे, असल काम तो श्याम काका (संबंध के काका) करते थे जिनका नाम सिद्धेश्वर मल्लिक था, जो गणपतगंज हाई स्कूल, सहर्षा के हेडमास्टर थे। इस पूरी आवाजाही में शान्ति सुमन का जन्मदिन आसपास की तिथियों में भटक गया। लिखने को अब भी ये शरत पूर्णिमा ही लिखती हैं, पर आत्मा में अनन्त चतुर्दशी कौंध जाती है। श्रेय जिसको मिलना था, नहीं मिला। शान्ति सुमन कहती हैं – 'यदि मैंने जीवन में कुछ अच्छा किया है तो उसका श्रेय अनन्त चतुर्दशी को ही जाता है क्योंकि शरत पूर्णिमा जैसा कोमल-मसृण जीवन मुझको मिला ही नहीं, अनन्त चतुर्दशी का श्रम-सौन्दर्य ही हाथ लगा है।'

शिक्षा :–

शान्ति सुमन की प्रारंभिक शिक्षा गाँव में अपने घर पर ही प्रारंभ हुई। गाँव में घोर गरीबी और अशिक्षा का अंधकार था। इनके पिता ही गाँव के सर्वाधिक सम्पन्न व्यक्ति माने जाते थे। इनके दालान पर ही बाँस के फट्टों से बनी बेंच वाला स्कूल था। वह स्कूल घर के बच्चों के साथ टोले के अन्य बच्चों के पढ़ने-लिखने के लिए ही बना था। पहले उसमें कुछ दिन लाला बाबा भी पढ़ाते थे जिनके डर से घर और टोले के बच्चे थर-थर काँपते रहते थे। थोड़ी सी गलती होने पर वे बच्चों को कान पकड़कर उठा लेते थे। शान्ति सुमन पढ़ने में तेज थीं। वे पढ़नेवाले बच्चों के लिए आदर्श थीं। अपने साथियों की वे खूब सहायता करती थीं। उस पर ये अपनी दादी की आँखों का तारा थीं। दादी के कारण इनसे कोई गलती हो भी जाये तो कोई इनको डाँट नहीं सकता था। इस दबदबा का एक बहुत बड़ा कारण था। यह कारण इनके जन्म से संबंध रखता है।

शान्ति सुमन के पहले इनकी माँ ने एक पुत्र को जन्म दिया था। उन दिनों धन-धान्य से भरा हुआ घर और उस पर इनके पिता की डिफेन्स में नौकरी। पैसे और ग्राम्योचित सुविधाओं की कमी नहीं थी। गरीबों और अशिक्षितों से भरे हुए उस गाँव में इनका घर ही 'मालिक' का घर था क्योंकि गाँव में सबसे अधिक जमीन इनके घर को ही थी। शान्ति सुमन के पहले माँ ने जिस पुत्र को जन्म दिया था, छठी के उस हर्षातिरेक भरे वातावरण के बाद उसका देहान्त हो गया। दो-तीन वर्षों तक फिर इनकी माँ को कोई संतान नहीं हुई। तीन वर्षों के बाद जब इनका जन्म हुआ तो घर में जैसे खुशियों की बाढ़ आ गई। एक तो बेटी होने के कारण माँ का कोख बदल गया था। गाँव में मान्यता थी कि पहले बेटा हुआ और नहीं रहा तो कोख बदल जाने यानी बेटी होने से शुभ होता है। इनकी दादी को लगता था कि ये भी नहीं बचेंगी, सो वे छोटी बच्ची शांति सुमन को लेकर कहाँ-कहाँ मन्नतें मांगने के लिए नहीं गईं। कई तीर्थों पर गईं। अनेक मंदिरों-मजारों पर माथा झुकाया। गंगा जी में धान की 'जुट्टी' (टोकरी भर धान से बनी पिटारी) बहायी। शान्ति सुमन को लेकर गंगा की लहरों में डुबकियाँ लगाईं। कहीं छागल तो कहीं कोहरे का बलिदान किया। जहाँ-जहाँ जो कबूल किया, सबको पूरा किया। अन्ततः उनका एक स्वस्थ-प्रसन्न बच्ची के रूप में विकास होना शुरू हुआ। कहना अप्रासंगिक नहीं है कि इन घटनाओं के पीछे गाँव में जड़ीभूत अन्धविश्वास और रूढ़ियाँ ही हैं जिनमें तत्कालीन ग्राम्य जीवन डूबा हुआ था।

क्योंकि शान्ति सुमन बड़े यतन से पाली-पोसी गईं और इनके बाद माँ को एक-एक कर तीन बेटे हुए, इसलिये घर में इनका कुछ अधिक ही स्नेह-सम्मान

था। स्कूल में पढ़ते हुए इसलिये मास्टर भी इनको कुछ नहीं कहते थे। कभी-कभी तो गलतियाँ ये करती थीं, डाँट दूसरे बच्चे सुनते थे, मार भी दूसरे को ही पड़ती थी। दादी की छत्रछाया में इनको अभय प्राप्त था।

एक बार उसी बाँस की बेंच वाले स्कूल में श्याम सुन्दर मिश्र मास्टर बनकर आये। वे बहुत दिन रहे भी। वे शान्ति सुमन के पारिवारिक पुरोहित के बेटे थे। वे एक शर्ट पहनकर आते थे जिसके लिए सौ बार बोल चुके थे कि वह जलपाईगुड़ी में सिला है। इसमें दो ही जोड़ हैं। वह अपने बड़े भाई से मिलने वहाँ गये थे। इधर ऐसा शर्ट नहीं सिल सकता। शान्ति सुमन ने एक दिन अपने साथियों से कहा कि देखना आज भी श्याम सुन्दर मास्टर वही बात बोलेंगे और सारे बच्चे हँसने लगे थे। जब मास्टर क्लास में आये तो इन्होंने बच्चों की ओर देखा और सब हँसने लगे। हँसीं ये भी, पर मास्टर साहब ने इनको कुछ नहीं कहा और सभी बच्चों को डाँटा ही नहीं, सजा भी दी।

और इस तरह चौथे से छठे वर्ग तक की पढ़ाई इन्होंने चेतमणि मिड्ल स्कूल सुखपुर से की। सातवें वर्ग की पढ़ाई इन्होंने गांधी विद्यालय राजपुर से की जो अब मधेपुरा जिला में है। अपनी फुआ के पास रहकर इन्होंने इस वर्ग की पढ़ाई पूरी की। फिर अपने गाँव आ गईं और मैट्रिक तक की पढ़ाई हाई स्कूल सुखपुर से पूरी की। स्कूल 'कन्फर्म' नहीं था, इसलिए इन्होंने विलियम मल्टीपरपस हाईस्कूल सुपौल से मैट्रिक की परीक्षा प्राइवेट केन्डीडेट के रूप में दी और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं।

आगे की पढ़ाई करने के लिए गाँव में कोई प्रावधान नहीं था। साधारण किसान परिवार में जन्म लेने के कारण असुविधायें तो थीं ही, रूढ़ियों के बंधन भी बहुत कड़े थे। गाँव में एक तो लड़कियों की शिक्षा का ही चलन नहीं था, दूसरे गाँव से शहर भेजकर लड़कियों को पढ़ाना तो असंभव कल्पना के सिवा कुछ नहीं था। सो पारिवारिक सहमति से इनकी उच्च शिक्षा के लिए इनका विवाह 25 फरवरी 1959 को संपन्न हुआ। उस परिवार में भी इनकी उच्च शिक्षा के प्रति सद्भाव था। इसलिए उसी वर्ष मुजफ्फरपुर के लंगट सिंह कॉलेज में इनका नामांकन हुआ। इनके एक जेठ श्री यशोधर लाल दास उन दिनों स्थानान्तरित होकर मुजफ्फरपुर में रह रहे थे। उनका परिवार भी साथ रहता था। इसलिए उनलोगों के साथ रहकर ही इन्होंने प्री यूनिवर्सिटी (उन दिनों शिक्षा में नये प्रयोग के कारण प्रथम वर्ष को प्री यूनिवर्सिटी कहा जाता था) की पढ़ाई शुरू की। कुछ महीनों के बाद इनके जेठ पुनः स्थानान्तरित होकर कटिहार चले गये। अब घर की जिम्मेदारी और पढ़ाई दोनों का निर्वाह इनको स्वयं करना पड़ा। यह निर्वाह उस स्थिति में करना पड़ा जब अपने पिता के घर में इन्होंने चूल्हा/स्टोव जलाना भी नहीं जाना था। तब गैस चूल्हा नहीं होता

था। होता भी होगा तो इनके पास नहीं था। ये यह भी नहीं जानती थीं कि रोटी कैसे बेली जाती है, भात कितना उबलने पर पूरा पक जाता है। अस्तु, वे बड़े कठिन दिन थे। उस कठिन दिन को, उस अंधकार को पार करने के लिए मजबूत संकल्प और कड़े संघर्ष की अपेक्षा थी। शान्ति सुमन ने इनको अपने अंदर जुटाया। एक बार बच्चा काका (श्री मदन मोहन लाल) आये तो इन्होंने इनका संघर्ष देखा। उनके कहने पर ही एक विशेष वरदान जैसी बात हुई कि पिता ने इनकी दादी को यहाँ इनके पास पहुँचा दिया। दादी क्या आई, इनको जिन्दगी मिल गई। अब न घर के काम और न कॉलेज जाने की चिन्ता। अब दूसरी तरह का संघर्ष था। प्री यूनिवसिटी परीक्षा देने तक ये अपने पुत्र अरविन्द की माँ बनीं। प्री यूनिवसिटी में इनको प्रथम श्रेणी मिली तो इनका और पूरे घर का हौसला बढ़ गया। फिर पार्ट वन और हिन्दी ऑनर्स की परीक्षा पास की। एम० ए० की परीक्षा भी इन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। संघर्ष यहाँ भी था। एक छात्र जिसका विवाह उसी वर्ष तत्कालीन पूर्व विभागाध्यक्ष (हिन्दी) की भगिनी से हुआ था, उसको उसका मूल्य मिलना था। दो या तीन पत्रों में 'बोर्डकेस' के द्वारा 2 अंक उसको शान्ति सुमन से अधिक दिया गया। वैसे हल्ला होता रहा था कि यही टॉप कर रही हैं। दृश्य कुछ दूसरा हो गया। अर्थात् दो ही छात्रों को उस वर्ष हिन्दी में प्रथम श्रेणी मिली थी। सो शान्ति सुमन प्रथम श्रेणी में दूसरे स्थान पर रहीं।

इसके बाद इन्होंने पीएच०-डी० की। यहाँ भी एक कथानक बना। उन दिनों विभाग में अध्यक्ष पद को लेकर जबर्दस्त तनातनी चल रही थी। जो अध्यक्ष थे, उनके जूनियर एक प्राध्यापक ने अपने अध्यक्ष होने का दावा किया था और कमीशन में जाने के पहले दोनों युद्धस्तर पर तैयार हो रहे थे। शान्ति सुमन उन दिनों शहर की कवि-गोष्ठियों में जाने लगी थीं। वहीं एक दिन भावी विभागाध्यक्ष ने उनको अपने अधीन पीएच०-डी० करने का दबाव दिया। उन्होंने पीएच०-डी० का आवेदन-पत्र भी इनको पहुँचा दिया। उसी समय सभासीन अध्यक्ष को इस बात की भनक लगी। उन्होंने यह दिलासा देना शुरू किया कि वे अध्यक्ष हैं। वे प्राध्यापक की नियुक्ति में उनकी मदद कर सकते हैं जिसकी रिक्ति अब निकलने ही वाली है। मगर उन्होंने इनको अपने अधीन नहीं, एम० डी० डी० एम० कॉलेज में नियुक्त एक प्राध्यापिका के अधीन रजिस्ट्रेशन कराने का जोर दिया था। प्राध्यापक बनने की पुरजोर लालसा ने इनको उनकी ही बात मान लेने पर विवश किया। इस प्रकार 1971 में इनको पीएच०-डी० की उपाधि से अलंकृत किया गया। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के अध्यक्ष (हिन्दी) डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय और कलकत्ता यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० कल्याणमल लोढा इनके शोध-ग्रंथ के परीक्षक थे और डॉ० वार्ष्णेय अंतर्वीक्षा में आये थे।

आजीविका :–

यहाँ भी एक अन्तर्कथा चलती है। यह कुछ अधिक ही थकाने वाली है। 1965 ई० में शान्ति सुमन ने एम० ए० पास किया। 1966 में महन्त दर्शनदास महिला कॉलेज के हिन्दी-विभाग में एक प्राध्यापिका के अध्ययनावकाश में जाने से एक पद रिक्त हुआ। उसका विज्ञापन आया और इन्होंने अपने को प्रत्याशी के रूप में प्रस्तुत किया। फिर तो वह नाटक हुआ जिसकी थोड़ी चर्चा ऊपर में आई है। तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष ने कहा – नियुक्त होना है तो पहले अमुक प्राध्यापिका के अधीन पीएच०-डी० के लिए रजिस्टर्ड हो जाइये। विषय आपके ऊपर है, जो भी लेना चाहें। बहुत अंतर्वाह्य संघर्ष के बाद इन्होंने उस प्राध्यापिका को निदेशिका के रूप में स्वीकार कर लिया। इनको अनुभव हो गया था कि सारी डिग्रियाँ, प्रतिभा और कुशलता के बाद भी आजीविका आसान नहीं होगी यदि उस शर्त्त को नहीं माना। इन्टरव्यू में ही शांति सुमन ने देख लिया था कि डिग्री और मेधा में ये सबसे आगे थीं। इनका होना तय था, किन्तु उस शर्त्त की तलवार माथे पर लटक रही थी। परिजनों ने सुझाव दिया कि निदेशक से क्या होता है, काम तो स्वयं करना होता है। वास्तविकता यह सामने आई कि निदेशक की इच्छित विधा कविता थी ही नहीं और इनके शोध का विषय था – 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य।'

30 सितम्बर 1966 को महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय में नियुक्त होकर शान्ति सुमन स्थिर नहीं हुईं। जिस 'स्त्रीपन' से हमेशा इनको विरोध रहा, उसी जंजाल में फँस गईं। विभाग क्या, कॉलेज में कहीं भी तेजस्विता नहीं थी और उसी निष्प्रभ वातावरण में रहना था। कॉलेज गेट से अन्दर जाते हुए एक बेचैनी उनके पीछे चल देती थी जिसको कॉलेज से घर लौटते हुए वे वहीं छोड़कर चली आती थीं। इनके पास न पैरवी थी, न पैसे। सो आजीविका ने इनको बड़े-बड़े दुख दिये। दो या तीन बार इनकी सेवा अस्थायी होने के कारण समाप्त हो गई। दो बार कमीशन से भी निष्फल वापस आईं। तीसरी बार जब लोकसेवा आयोग में साक्षात्कार के लिए गईं तो प्रायः चमत्कार ही हुआ। यदि कोई ईश्वर है/था तो उस समय तक वह मनुष्य में रूपान्तरित हो गया था। उस साक्षात्कार में जो हिन्दी के विशेषज्ञ आये थे, वे इटावा कॉलेज के प्रोफेसर थे। यह बात शान्ति सुमन ने साक्षात्कार के समय ही संकेत से जाना था। ये अपने सारे प्रमाणपत्रों, अनुशंसाओं, प्रकाशित कविताओं की कतरनें और कुछ रचनायें पत्रिकाओं के साथ ही लेकर साक्षात्कार में उपस्थित हुईं। साक्षात्कार का वह समय भी बेहद थका देने वाला था। लगभग सोलह-सत्रह प्रत्याशियों के बाद इनको बुलाया गया था। तत्कालीन विभागाध्यक्ष की मंशा को विशेषज्ञ ने भाँप लिया था। वे शीघ्रता में प्रश्न पूछने की फिराक में शान्ति सुमन के

प्रमाणपत्रों, अनुशंसाओं और रचनाओं को अनदेखा करनेवाले थे। किन्तु विशेषज्ञ ने मेधा और अनुभव का कोई तेज इनके चेहरे पर देखा और देखा उस धैर्य और आत्मविश्वास को भी जो इनके उत्तर में लगातार ध्वनित हो रहे थे। उन्होंने शान्ति सुमन के सारे प्रमाण पत्र आदि को इनका फाइल स्वयं खोलकर देखा और पहले तो तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष की ओर मुखातिब हुए और कहा – आपके यहाँ ऐसे प्रतिभाशाली और निपुण अभ्यर्थियों को नियुक्ति नहीं मिलती है। और फिर शान्ति सुमन की ओर देखकर कहा – आपने तो बहुत कुछ लिखा है, लिख रही हैं। मैं आपके लेखन से परिचित हूँ। फिर उन्होंने कहा – आप कभी इटावा गईं हैं ? इन्होंने तपाक से उत्तर दिया कि वे तीन बार इटावा कवि-सम्मेलन में गई हैं। उन मंचों के नाम भी बताये जहाँ गई थीं। विशेषज्ञ ने दुख व्यक्त किया कि इनके जैसे प्रत्याशियों की आजीविका सुनिश्चित नहीं होती है। संयोग ही था कि शान्ति सुमन ने अपने हौसले में आकर कह दिया था कि वे तीसरी बार कमीशन आई हैं। फिर किसी बात पर उनका जवाब था कि 'आप जैसों का नहीं होगा तो किसका होगा ?'

साक्षात्कार समाप्त कर वे अपने पति के साथ होटल लौट आई थीं। बहुत देर तक उनको अपने वे प्रमाण-पत्र, अनुशंसाएँ और रचनाएँ दिख ही नहीं रही थीं। दिख रहा था तो अपने हिन्दी विभागाध्यक्ष का चेहरा, उनकी आँखें। शान्ति सुमन को लगता रहा कि उनके विभागाध्यक्ष कुछ अधिक ही कुपित हो गये होंगे। अगली सुबह वे हनुमान मंदिर गईं। पटना स्टेशन का हनुमान मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। मन इतना संशयों, द्वन्द्वों और अनिर्णयों से भरा हुआ था कि किसी पवित्र स्थल पर जाकर ही उन तनावों से मुक्त हुआ जा सकता था। लोगों की भीड़ जिनमें इनके जैसे ही कितने ही होंगे जिनको देखकर शान्ति सुमन का मन हल्का हो आया था।

कई महीनों के बाद विश्वविद्यालय में नियुक्ति की सूचना आई। नियुक्ति पत्र पर पहला ही नाम शान्ति सुमन का था। इनसे बीस वर्षों से भी अधिक सीनियर एक प्राध्यापक का नाम दूसरा था। इनके अतिरिक्त तीन और व्याख्याताओं की नियुक्ति हुई थी। शान्ति सुमन ने महन्त दर्शनदास महिला कॉलेज में ही रहना उचित समझा क्योंकि उसी के बगलवाले मुहल्ले में वे रहती थीं। कॉलेज के कारण ही आमगोला छोड़कर मिठनपुरा आ गई थीं। अब तो वहीं इनका घर है। जुलाई '72 से सितम्बर 2004 तक इनकी सेवा निरन्तर बनी रही। सितम्बर 2004 में ये सेवामुक्त हुईं। ये चाहतीं तो किसी अन्य कॉलेज भी जा सकती थीं, जैसे लंगट सिंह कॉलेज, जहाँ उन्होंने पढ़ाई की थी, पर आवास की सुविधा के कारण वे महन्त दर्शन दास महिला कॉलेज में ही रहीं।

एक बात कहने से छूट रही है। उसको लिखे बिना आजीविका-कांड

समाप्त भी नहीं होगा। ऊपर यह चर्चा आई है कि अस्थायी होने की वजह से तीन बार अन्य सहकर्मियों के साथ इनकी सेवा समाप्त हो गई थी। सहकर्मियों में जो लोग चतुर थे, जिनकी पैरवियाँ थीं, विशेषकर राजनीतिज्ञों से जिनका मेल-जोल था, उनमें से कई की सेवा का अन्तराल (गैप) समंजित हो गया था। एक का पति एम० एल० ए० हुआ तो वैसा हुआ, एक स्वयं नेता था। शान्ति सुमन ने अन्य सहकर्मियों की तरह कई बार विश्वविद्यालय को लिखा, पर उन पर कोई सुनवाई नहीं हुई। एक और जो दुखद है कि शान्ति सुमन को विश्वविद्यालय ने पीएच०-डी० भत्ता नहीं दिया। उनका जवाब था कि आपने नियुक्ति के बाद पीएच०-डी० की होतीं तो एलावेन्स मिलता। विश्वविद्यालय के इस नियम पर सिर्फ चकित हुआ जा सकता था। आजीविका की अवधि में कॉलेज ने जितने फायदे इनसे लिये, उनकी तुलना में इनको बहुत ही कम दिया। शान्ति सुमन ने बताया कि जब वे कॉलेज में अस्थायी थीं, उन्हीं दिनों बेहद चतुर और जूनियर से अधिक से अधिक काम लेने वाली व्यवस्था ने इनसे बहुत काम लिये। कॉलेज में हिन्दी-विभाग तो पुराने समय से था, पर अब तक सारे काम-काज अंग्रेजी में हो रहे थे। नामांकन के लिए आवेदन पत्र, बस-प्रपत्र, विवरणिका आदि सभी अंग्रेजी में थे। शान्ति सुमन ने सबके हिन्दी अनुवाद किये। वे कठिन कार्य थे और कई-कई दिनों तक चार-चार पीरियड वर्ग लेने के बाद भी रुक कर उन कामों को करना पड़ा था। शान्ति सुमन ने इसको अपनी कार्यकुशलता तथा मेधा का प्रतिफलन ही माना था। दूसरों से व्यवस्था ने यह कार्य इसलिए नहीं कराया होगा कि वे इस कार्य को कर ही नहीं सकती थीं।

घर-परिवार :–

शान्ति सुमन के पिता का नाम श्री भवनन्दन लाल दास है जिनको लोग कुँवर जी कहकर पुकारते थे। अब वे संत का जीवन जीते हैं और 'कुँवर बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये अनंतश्री विभूषित श्री महर्षि मेंही परमहंस के शिष्य हैं। इनका अपना शिष्य समुदाय है जो उत्तर बिहार के सहर्षा, मधेपुरा, पूर्णिया, अररिया, किशनगंज आदि, उधर नेपाल की तराई के क्षेत्रों, उत्तर प्रदेश के हरिद्वार, ऋषिकेश, लखनऊ आदि क्षेत्रों के अतिरिक्त दिल्ली और कलकत्ता में भी फैला हुआ है।

इनके पिता हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी के बहुत निपुण ज्ञाता हैं। उन्होंने महर्षि मेंही के प्रवचनों और पदावलियों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। सत्संग-शिविरों में उनकी वक्तृता, प्रवचन-प्रियता एवं धर्म-अध्यात्म के प्रति उनकी प्रतिबद्धता विशेष रूप से स्मरणीय है। वे पहले डिफेन्स में थे, बाद में अंग्रेजों की उस नौकरी को छोड़कर कृषि-कार्य में लगे और फिर उन्होंने

विद्यालयों में अंग्रेजी का अध्यापन किया। अब वे पूर्णरूपेण संत हैं।

शान्ति सुमन की माँ का नाम जीवनलता देवी था। 1986 के 30 नवम्बर को उनका देहान्त हुआ। वे रूप-गुण और स्वभाव से बड़ी पवित्र स्त्री थीं। अभावों में रहकर भी उन्होंने कभी किसी की शिकायत नहीं की। संत बनने के पूर्व पिता ने अपने मालिकाना पुरुष-स्वभाव में कभी उनको अनदेखा भी किया तो माँ ने सदैव अपने शील-संयम और पारिवारिक निष्ठा को आगे रखा।

शान्ति सुमन को छः भाई और दो बहनें हैं। भाई-बहनों में शान्ति सुमन सबसे बड़ी हैं। सभी भाई-बहनों में सबसे अधिक प्यार इनको ही मिला। विशेषकर दादी तो इनको अपनी आँखों की रोशनी समझती थीं। बचपन से लेकर कुछ अन्तरालों को छोड़कर इनकी पूरी पढ़ाई में दादी इनके साथ रहीं। ये कहती हैं कि दादी के बिना मैं कुछ नहीं कर सकती थी – न पढ़ाई, न गृहस्थी, न बच्चों का पालन-पोषण। दादी का अभयदान और आशीर्वाद ने ही मूलतः इनको रचा है। माँ से अधिक दादी का संग-साथ इनके जीवन की अमूल्य निधि है।

विवाह के बाद जैसा होता है अपना गाँव कासीमपुर छूटता गया जिसको बड़े प्यार से किसी को पत्र लिखते अपने पते में देती थीं – ग्राम-कासीमपुर, पत्रालय-डुमरा, जिला-सहर्षा (उत्तर बिहार)।

तब जिला पूर्णिया ही था जिसके एक गाँव भद्रेश्वर के एक परिवार से इनका संबंध जुड़ा। इनके श्वसुर का नाम जयकृष्ण लाल दास और सास का नाम फाल्गुनी देवी था। इनके चार पुत्र और दो पुत्रियों में शान्ति सुमन के पति सबसे छोटे हैं। उन दिनों विवाह एक सामाजिक समस्या बना हुआ था। एक निम्न मध्यवर्गीय किसान परिवार के लिए दहेज की राशि जुटाना बहुत कष्टकर था, विशेषकर सूखा और बाढ़ में फसल के नष्ट हो जाने के बाद और कमरतोड़ महँगाई के कारण। गाँव में ऐसे भी पैसे बहुत कम होते थे। शादी-ब्याह के लिए बड़ी पूँजी जुटाने में खेत ही काम आता था। उन दिनों खेत भी बिकना आसान नहीं था। एक तो लोगों के पास पैसे बहुत कम होते थे और दूसरा कि खेत बहुत सस्ता में बिकता था, उसकी बहुत कम कीमत मिलती थी।

शान्ति सुमन का जब विवाह हुआ तब इनके परिवार का बंटवारा नहीं हुआ था। सबने मिलकर यह तय किया था कि इस पीढ़ी का यह पहला विवाह है। इस विवाह के सम्पन्न होने पर ही बंटवारा होगा। शान्ति सुमन को याद आता है कि घर से बहुत कुछ मिला था, फिर भी कुछ जमीन बिकी थी।

शान्ति सुमन के पति का नाम श्री जागेश्वर लाल दास है। इनकी पढ़ाई खत्म हुई थी और ये रेल-डाक-सेवा में नियुक्त हुए थे। नियुक्ति के एक-डेढ़

वर्षों के बाद इनका विवाह हुआ। यह परिवार भी निम्न मध्यवर्गीय परिवार ही था/है, किन्तु इनके पिता के घर में जहाँ सब कुछ खेती पर ही निर्भर था, यहाँ सभी नौकरीपेशा थे। भद्रेश्वर से बहुत समीप है फारबीसगंज जहाँ बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए एक 'वासा' ले लिया गया था। वहाँ पति के मंझले भाई का परिवार रहता था और घर के कुछ बच्चे भी वहीं रहकर पढ़ते थे। गाँव में खेती-बारी थी और भगवती का 'गहबर' भी था। यह सब अब भी है।

शान्ति सुमन ने उच्च शिक्षा मुजफ्फरपुर के लंगट सिंह कॉलेज से ग्रहण की। शिक्षा समाप्त कर इनको आजीविका भी यहीं के कॉलेज में मिली। अतएव 1959-60 में मुजफ्फरपुर आकर ये यहीं की होकर रह गईं। 33 वर्षों तक प्राध्यापन किया और यहाँ इनका सामाजिक सरोकार बेहद घना हुआ।

शान्ति सुमन का एक पुत्र है – अरविन्द जिसका घर का नाम मुकुल है। अरविन्द बचपन से ही बहुत मेधावी रहा। उसने प्रभात तारा विद्यालय, मुजफ्फरपुर से अंग्रेजी माध्यम से सेवेन्थ स्टैण्डर्ड तक की परीक्षायें पास कीं। उसका रैंक हमेशा प्रथम रहा। फिर वह गोथल्स मेमोरियल स्कूल कर्सियांग (प० बंगाल) से 'सीनियर कैम्ब्रिज' तक की परीक्षा पासकर आई० आई० टी० की प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और आई० आई० टी०, कानपुर से उसने सिविल इंजीनियरिंग की डिग्री ली। उसका कैरियर बहुत अधिक शानदार रहा। शान्ति सुमन उसको आगे भी पढ़ने देना चाहती थीं, पर कदाचित् माता-पिता के संघर्ष को देखकर उसने आजीविका में ही आने का मन बनाया। कैम्पस सेलेक्शन में वह सात स्थानों पर सेलेक्ट हुआ था, पर माँ के मना करने पर वह मानता रहा, ज्वाइनिंग छोड़ता रहा। अंततः जहाँ सबसे बाद में ज्वाइन करना था, टिस्को, जमशेदपुर में उसने ज्वाइन कर लिया। 25 फरवरी 1987 को उसका विवाह हुआ। उसकी पत्नी टाटा मेन हॉस्पिटल में स्त्री रोग विशेषज्ञ है। उनका नाम डॉ० विशाखा वर्मा है। रूप-गुणों में अद्वितीय वधू पाकर शान्ति सुमन की खुशियों को पंख लग गये थे। विशेषकर इनकी कलात्मक अभिरुचियाँ शान्ति सुमन को बेहद भायी थीं। इनको इन्होंने अपने घर की नयी सम्पदा के रूप में पाया। इनको अनुभव हुआ कि इनके बहुत वर्षों से जुगाये गये स्वप्न सार्थक हो उठे हैं। शान्ति सुमन बताती हैं कि बहू के आगमन पर उन्होंने एक गीत की रचना की थी जो इस प्रकार है –

सपनों ने साँसें लीं
घर यह घर की तरह हुआ
हीरे-मानिक से क्या कम हैं
तेरे लिये दुआ

पीले गुंथे कनेर संग
लहरे हों केश तुम्हारे
माथे की बिन्दी में जगमग
दिपते कई सितारे
तेरे आते ही तो घर यह
परब-तिहार हुआ

नहीं जान पाओगी अपने
होने के तुम माने
कितने-कितने सपनों में तुम
रची रही सिरहाने
केवल दीवारें थीं घर में
अब संसार हुआ

आँखें ही दीखी थीं केवल
और नहीं कुछ भी
कोमलता का वह अभिलेख
कहाँ था कैसा भी
तुम्हारे आने से यह घर
पूरा परिवार हुआ।

शान्ति सुमन को एक पौत्री – शालीना और एक पौत्र – ईशान है। शालीना अभी बी० आई० टी०, मेसरा में कम्प्यूटर साइंस के द्वितीय वर्ष में है और ईशान प्लस टू का छात्र है।

शान्ति सुमन की एक पुत्री है – चेतना वर्मा। वह भी बचपन से ही मेधावी है। प्रभात तारा विद्यालय से उसने भी प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। फिर वह एम० डी० डी० एम० कॉलेज, मुजफ्फरपुर से इन्टरमीडिएट की परीक्षा में प्रथम आई। उसने इन्द्रप्रस्थ कॉलेज फॉर वूमन (दिल्ली विश्वविद्यालय) से इतिहास प्रतिष्ठा की परीक्षा पास की। एक वर्ष किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली में पढ़ने के बाद वह मुजफ्फरपुर चली आई और आधुनिक इतिहास (मॉडर्न हिस्ट्री) में एम० ए० की परीक्षा बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर से प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण हुई। उसने NET की परीक्षा पास कर पीएच०-डी की है और अंशकालीन रिसर्च एसोसिएट के रूप में यू० जी० सी० के वित्त सहाय्य पर 'हिन्दी पोएट्री एण्ड इंडियन फ्रीडम स्ट्रगल : रिसोर्स मैटेरियल' विषय पर पोस्ट डॉक्टरल शोध-प्रबंध लिखा है।

शान्ति सुमन के जामाता का नाम सुशान्त वर्मा था। वे यांत्रिक अभियंता थे।

वैज्ञानिक रूचियों के साथ-साथ वे अत्यंत सृजनशील थे। उन्होंने 'किलमेन्स टेक्नोलॉजी' का निर्माण किया था। पुरुषोचित दर्प से भरा उनका व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक था। चेतना के जीवन में उनके आने के बाद शान्ति सुमन को लगा कि अब उनका परिवार का आत्मीय सुखद स्वप्न पूरा हुआ है, पर 2003 के 13 सितम्बर को सुशांत ने अंतिम सांसें लीं। इस जन्म में ही कितने जन्मों के दुख शान्ति सुमन ने जी लिये। बेटी की अधूरी जिन्दगी इनको पल-पल बेचैन करती है। इस यातना को चेतना रचनात्मक बना रही है, ऐसा ये मानती हैं। वह यातना का रचनात्मक मूल्य जान गयी है।

चेतना वर्मा समकालीन हिन्दी कविता की एक समर्थ युवा कवयित्री है। उसका एक साझा कविता-संकलन 'सप्त स्वर' के अतिरिक्त एकल कविता-संग्रह 'उस दिन का इन्तजार' भी प्रकाशित है और वह लगातार पत्र-पत्रिकाओं में लिख रही है। अभी वह के० एम० पी० एम0 कॉलेज, जमशेदपुर में इतिहास-विभाग में कार्यरत है। इसके दो बच्चे हैं – पुत्र – अपूर्व और पुत्री – श्रेयसी। इन बच्चों के पिता सुशान्त वर्मा अब नहीं रहे। तब अपूर्व वर्ग – 5 और श्रेयसी जिसको यशी कहकर बुलाते हैं वर्ग-2 में थी। शान्ति सुमन की आँखें बरसने लगती हैं जब वे कहती हैं कि जीवन में आज तक जो खुशियाँ मिली हैं सब पर यह दुख भारी है। बेटी की सूनी माँग को देखना किसी माँ के दुर्भाग्य का चरम है। फिर भी बेटी के दुखों और संघर्षों की रचनात्मक परिणति देखना शान्ति सुमन को आश्वस्ति देता है।

महाविद्यालय से सेवामुक्ति के बाद शान्ति सुमन अब मुजफ्फरपुर की अपेक्षा 36 ऑफिसर्स फ्लैट, जमशेदपुर में अपने परिवार के साथ अधिक रहती हैं, किन्तु मुजफ्फरपुर का अपना घर इनको कभी नहीं भूलता। अपना कर्मक्षेत्र-रचनाक्षेत्र तो ये मुजफ्फरपुर को ही मानती हैं। मीठनपुरा के इस घर 'ईशान' को इनके सुख-दुख, हर्ष-विषाद सबका साक्षी होने का श्रेय प्राप्त है। जीवन के जो अनुभव इन्होंने जिये हैं, उनमें बेटी, बहन, पत्नी, माँ, सास, दादी-नानी होना इनके लिए केवल संबंधों का अनुष्ठान नहीं, केवल समय का निशान नहीं, उनकी आयु के अनुभवों के जीवन-वर्ष हैं।

कृतियाँ :–

आठवें वर्ग से ही शान्ति सुमन ने कवितायें लिखना शुरू कर दिया था। उनके गाँव कासीमपुर की बगल का गाँव बाराही में मिडिल स्कूल और पुस्तकालय भी था। घर के लोग वहीं के पुस्तकालय से किताबें लाकर पढ़ते थे। शान्ति सुमन ने उसी दौर से किताबों को पढ़ने में रूचि ली। दसवें वर्ग तक आते-आते इन्होंने जयशंकर प्रसाद के 'आंसू', 'पंत का पल्लव' और महादेवी

के कितने ही गीत-संग्रहों को पढ़ लिया था। जैसा कि ये बताती हैं – महादेवी के गीतों का प्रभाव इनपर अधिक पड़ा। उन गीतों का पूरा का पूरा अर्थ इनकी समझ से परे था, फिर भी गीत इनको इतने भाते थे कि वे एक-एक गीत को कई-कई बार पढ़ती थीं। निराला के गीत 'भारति जय-विजय करे' और 'भिक्षुक' कविता ने इनके बाल मन को बहुत आलोड़ित किया था। 'आंसू' के दुखान्त भावों ने इनके हृदय को अधिक छुआ और महादेवी के गीतों में व्यक्त रहस्य और विरह भाव को इन्होंने आत्मसात् कर लिया। फल यह हुआ कि बिना प्रेम के ये बिरह गीत लिखने लगीं। जो जी में आया वह इतना लिखा कि दो-तीन गीतों के संग्रह पुस्तकों के रूप में तैयार कर लिये थे। उसमें भूमिका और समर्पण का पृष्ठ भी रखा था। जैसा इन्होंने उन कवियों के गीत-संग्रहों को देखा, उनकी तरह का सब कुछ कर लिया। मैट्रिक में जब पढ़ रही थीं तो पढ़ी गयी पुस्तकों के आधार पर जाने कितने वीर स्त्रीपात्रों पर केन्द्रित नाटिका भी लिखी थी। कई एकांकी भी। इन्होंने इनको इतना संभालकर रखा था कि '60 में जब कविता-गीत समझने लगी थीं, तब उनको देखा तो वे उतने ही ताजा रूप में निकलीं। शान्ति सुमन बताती हैं कि उनको देखकर पहले तो हँसी आई, फिर अपनी समझ का कच्चापन भी समझ में आया। अपनी बाल-बुद्धि पर इनको कोई पश्चाताप या दुख का भाव नहीं था, वरन् अपनी मिहनत और रख-रखाव पर तरस आया। किसी को दिखाने में अब संकोच होता था। बहुत वर्षों तक वे वैसे रखे रहे। बाद में धीरे–धीरे एक-एक को नष्ट कर दिया।

शान्ति सुमन बताती हैं कि अब जिस बात का बहुत अफसोस है वह है उसी तरह लिखे गये एक उपन्यास को फाड़ देना। अब ये सोचती हैं कि उसको फाड़ना नहीं चाहिये था। अब उसको पढ़ना सुखद हो सकता था। अपनी बाल अनुभूतियों को जानना, उससे गुजरना सचमुच एक अनुभव होता। पर समझदार मन को वह सब ग्राह्य नहीं हुआ। इनको याद आता है कि संभवतः उसका शीर्षक 'प्यार की झलक' था। अपने शीर्षक की वह शुरूआत अबके इनके अनुभवों से अलग थी। इनको वह भावुकता पसंद नहीं आई थी क्योंकि वर्तमान जीवन-क्रम, संदेवनाओं और रचना-दृष्टि से वह बेहद अलग और अस्वाभाविक लगी थी।

त्रिवेणीगंज (सहर्षा अब जिला – सुपौल) से श्री तारानन्दन तरूण से सम्पादित पत्रिका 'रश्मि' में शान्ति सुमन की पहली गीत-रचना छपी अर्थात् जिन रचनाओं को इन्होंने प्रकाशित और सार्वजनिक करना चाहा, उसकी शुरूआत यहीं से हुई। उसके बाद लंगट सिंह कॉलेज पत्रिका 'वैशाली' में इनका गीत छपा और इसके द्वारा ये कॉलेज के छात्रों और प्राध्यापकों की दृष्टि में आईं। उसके बाद कई पत्रिकायें थीं – समाज-कल्याण, नारी चेतना आदि

दसों पत्रिकाओं में इनके गीत छपे। अब तो सबके नाम भी याद नहीं हैं। हुआ यह कि एक बार ये कॉलेज में पढ़ते हुए कुछ छात्राओं के साथ तत्कालीन प्राचार्य श्री महेन्द्र प्रताप जी से मिलने उनके घर गईं। प्राचार्य यह बात जानते थे कि ये कविता लिखती हैं। ये अपनी कुछ कवितायें – जो उस समय तक छपी थीं, पत्रिका सहित ही ले गई थीं। प्राचार्य ने उनको यह कहकर रख लिया कि वे इनको पढ़कर बाद में अपना विचार देंगे। इनको उनकी यह सहानुभूति अच्छी लगी, पर विडम्बना यह हुई कि प्राचार्य ने उन रचनाओं को नहीं लौटाया। वे कौन-सी रचनायें थीं, अब तो एकदम स्मरण में नहीं हैं।

शान्ति सुमन इस घटना को रचना-प्रसंग ही मानती हैं जब महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर आयोजित कवि-सम्मेलन में उन्होंने एक गीत की सस्वर प्रस्तुति की थी। उस समारोह में पटना आकाशवाणी केन्द्र के तत्कालीन निदेशक श्री सुमन वात्स्यायन भी पधारे थे। शान्ति सुमन की गीत-प्रस्तुति से वे इतने प्रभावित हुए कि कार्यक्रम की समाप्ति पर उन्होंने इनको बुलाया और बड़ी ममता दिखाई। वे इनके स्वर और रचना के भावों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने इनकी साधारणता देखी और कहा कि आप बहुत अच्छा लिखती हैं, गाती हैं, आपकी प्रस्तुति में प्रभाविता भी है। मैं चाहता हूँ कि आप आकाशवाणी पटना आकर ऑडीशन दें। आपको वहाँ से प्रोग्राम के लिए अनुबंधित किया जाएगा। इससे आपकी कला भी निखरेगी, प्रसारित होगी तथा आपको आर्थिक आय भी होगी।

शान्ति सुमन अपने पति के साथ पटना गईं। तब मुजफ्फरपुर से पटना जाना इतना आसान नहीं था कि बस में बैठे और पटना पहुंच गये। उस समय रेलगाड़ी से मुजफ्फरपुर से सोनपुर होते पहलेजा घाट जाना पड़ता था, वहाँ से स्टीमर से महेन्द्रू अथवा प्राइवेट स्टीमर रहा तो बाँसघाट उतरना पड़ता था। फिर वहाँ से रिक्शा से गन्तव्य तक जाना पड़ता था। इनके पति का भी उन दिनों बहुत पटना आना-जाना नहीं था। सो, कैसे वहाँ पहुंचकर क्या-क्या हुआ इसका ये बहुत रोचक संस्मरण-अनुभव सुनाती हैं।

शान्ति सुमन उस दिन आकाशवाणी ठीक समय से पहुँचीं। उन्हें रिकार्डिंग रूम ले जाया गया। इसके पहले उन्होंने शीत-ताप नियंत्रित कक्ष नहीं देखा था। सो विस्मय के साथ खुशी भी थी, पर इनको विस्मय तब हुआ जब वहाँ माइक्रोफोन के पास एक-एक कर तीन व्यक्तियों को देखा – एक के आगे हारमोनियम, एक के हाथ में बाँसुरी और एक सारंगी जैसा कोई वादय रखे हुए था। मगर इन्होंने किसी से कुछ पूछा नहीं और आश्चर्य तो यह है कि उन तीनों ने इनको पहले से संगीत का अनुभव प्राप्त ऑडीशन देनेवाली मान लिया। सो उनलोगों ने तीन बार अपने वादय को समवेत रूप से बजाकर इनकी ओर

देखा। ये तो विस्मय से भरी बैठी थीं कि यह क्या हो रहा है। गीत (कविता) की प्रस्तुति में ये वादय क्यों बजाये जा रहे हैं। जब उनलोगों को यह भान हुआ कि ये कुछ नहीं समझ रही हैं तो उन लोगों ने शीशे के पारवाले रिकार्डिंग रूम को देखा। तीन जोड़ी आँखें शीशे के पार से झाँक रही थीं। इनको कुछ संकेत भी देना चाहती थीं, पर ये तो उठकर खड़ी हो गईं। लगभग बाहर हो जाना चाह रही थीं कि तभी माइक्रोफोन के कनेक्शन को काट दिया गया। सब लोग इस रूम में चले आये और इनको समझाना शुरू किया कि हम तो सुगम संगीत के लिए आपका ऑडीशन लेने आये थे, आप क्यों तैयार नहीं हुईं ? तभी एक आदेशपाल आकर कह गया कि आपको डायरेक्टर साहब बुला रहे हैं। अपने को सुस्थिर कर वे वहाँ गईं। उन्होंने इनको बहुत समझाया – एकदम पिता की तरह कि वे चाहते हैं कि वे सुगम संगीत का ऑडीशन दें। कविता-पाठ में पारिश्रमिक बहुत नहीं है। सुगम संगीत में कविता-पाठ की अपेक्षा तीन गुना अधिक राशि मिलती है। वस्तुतः वे इनका आर्थिक आधार मजबूत करना चाहते थे। इनकी रचना के लिए उनके मन में बहुत स्नेह था – आदर की हद तक। पर वे उसके साथ उनकी पारिश्रमिक की राशि भी अधिक चाहते थे। उन्होंने अपनी समझ से बहुत कहा कि आप अकेली नहीं आ पातीं यहाँ। सो, दो व्यक्तियों का आना-जाना, आपका समय, पढ़ाई छोड़कर आना, फिर आपके पति का भी अवकाश लेकर आना – इनकी तुलना में कविता-पाठ का पारिश्रमिक बहुत कम है। पर इन्होंने उनकी बातों को स्वीकार नहीं किया और कहा कि वे स र ग म नहीं जानतीं, फिर संगीत में कैसे स्वर मिला सकती हैं। इस पर उन्होंने यह भी कहा कि संगीतकार स्वयं आपकी संगत करेगा। आपको कुछ नहीं करना है। पर इनके विचार के आगे वे झुक गये। कविता के प्रति इनका रूझान देखकर कहा – 'बेटी आपके विचार से अब मैं सहमत हूँ।' इस प्रकार विन्ध्यवासिनी देवी, कुमुद अखौरी आदि का नाम लेकर इनको समझाने वाले वात्स्यायन जी इनके मुँह से निराला, महादेवी, नागार्जुन, बच्चन, भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, उमाकांत मालवीय, नीरज आदि की काव्य प्रस्तुति के यश और जनता से उनके जुड़ाव की बात सुनकर धीरे-धीरे हंसने लगे। फिर तो आकाशवाणी में '60 से जो कार्यक्रम मिलना शुरू हुआ तो '90 तक नियमित रूप से मिलता रहा। गीत-संग्रह छपने के पूर्व ही आकाशवाणी के प्रसारण से ये बहुप्रचारित और चर्चित हो गई थीं। किसलय, पल्लव आदि से लेकर भारती और चौपाल तक में इनके कार्यक्रम होते थे। मैं जानता हूँ कि 'मेघ इन्द्रनील' (मैथिली गीत-संग्रह) जो पहले सामा-चकेवा प्रकाशन, बम्बई से छपा और बाद में अभिधा प्रकाशन से, के पाँच प्रतिशत को छोड़कर सभी गीत भारती और चौपाल कार्यक्रम में प्रसारित हो चुके थे।

आकाशवाणी केन्द्रों में वे पटना, लखनऊ, राँची, गोरखपुर, इलाहाबाद, जम्मू-कश्मीर, रींवा, उदयपुर, कलकत्ता, दिल्ली आदि देश के अनेक केन्द्रों से कवितायें पढ़ चुकी हैं। दूरदर्शन से भी मुजफ्फरपुर, पटना, राँची, गोरखपुर, लखनऊ, जम्मू-कश्मीर, कलकत्ता, दिल्ली, जालंधर आदि अनेक प्रतिष्ठानों से इनकी कवितायें प्रसारित हुई हैं। श्रीनगर (कश्मीर) के दूरदर्शन केन्द्र में तत्कालीन केन्द्र निदेशक ल्हासाकौल (जिनकी बाद में उग्रवादियों ने हत्या कर दी) के चेम्बर में केसर की चाय का स्वाद आज तक नहीं भूला है।

प्रकाशन :–

शान्ति सुमन चाहती थीं कि इनका पहला गीत-संग्रह दिल्ली से प्रकाशित हो। किन्तु इसके लिए कोई सूत्र नहीं मिल सका। ये दिल्ली जा नहीं सकती थीं और कोई दिल्ली में प्रकाशन की व्यवस्था करनेवाला नहीं मिला। इसलिए कवि-सम्मेलन के मंचों पर जाने के कारण इलाहाबाद के कुछ प्रकाशकों का पता चला। उनमें से एक ओंकार शरद ने जो मुजफ्फरपुर के बेनीपुरी परिवार से घनिष्ठ संबंध रखते थे और जो शान्ति सुमन के गीतों से पूर्व परिचित थे, क्योंकि इलाहाबाद के कवि-सम्मेलनों में ये कई बार कविता पढ़ चुकी थीं और इन्होंने वहीं उनके गीतों को सुना था और उनके प्रशंसक भी थे, ने शान्ति सुमन का पहला गीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' 1970 में अपने लहर प्रकाशन, 2 मिन्टो रोड, इलाहाबाद से प्रकाशित किया। इनका यह गीत-संग्रह तब प्रकाशित हुआ जब दो-चार नवगीतकारों के संग्रह ही प्रकाशित हुए थे। इसलिए भी उसका एक ऐतिहासिक महत्व है और यह भी सच है कि उस समय दूसरी स्त्री नवगीतकार भी उभरकर सामने नहीं आई थी। इसलिए उमाकांत मालवीय ने शान्ति सुमन को 'नवगीत की एकमात्र कवयित्री' कहा। इस संग्रह के गीतों में प्रेम-सौन्दर्य तो है ही, जीवन, समय और समाज के भी यथार्थ खुलकर आये हैं। एक चित्र देखें –

औंधे कजरौटे सा आसमान
फटे आँचल सी नदी
पथराये बरगद के नैन
ठहरी सी कोई सदी
मौसम ने फेंके पाँसे
मछली छपी-छपी
कबूतर के पंखों पर ठहरी भोर

यह एक चित्र भी संवेदनाओं से भरा है –

क्रोशिया काढे दिन बीते अब तो चूल्हे-चौके की बात

शान्ति सुमन का दूसरा नवगीत-संग्रह 'परछाईं टूटती' का प्रकाशन बीज प्रकाशन, पटना से 1978 ई० में हुआ। इस संग्रह में इनके नवगीतों का श्रेष्ठ व्यक्त हुआ है। इसमें मध्यवर्गीय आदमी की तकलीफों – उसका ज़ीवन-यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। नवगीत की अगली संभावनाओं को व्यक्त करने वाले सारे संकेत और तत्त्व इन गीतों में भरे हुए हैं। सौन्दर्यपूर्ण सान्द्र बिम्बों के कारण ये गीत अधिक चर्चित हुए और सराहे गये। नवगीतों के पूरे इतिहास में ऐसे बिम्ब नहीं आये जैसे शान्ति सुमन के इस संग्रह में रचे गये हैं। कुछ आलोचकों ने तो बिम्बों की रचना के लिए ही इस संग्रह को अप्रतिम माना है और कहा है कि ये बिम्ब शान्ति सुमन ही रच सकती हैं। इनके बिम्बों को देखकर ही उनके गीतों की पहचान हो जाती है। एक दो चित्र द्रष्टव्य हैं –

जब कभी कोई बच्ची वर्षा में नहाती है,
घर की याद आती है

और

काठ के सपने शहर आये।
देखते जैसे कि डर आये।

यह एक चित्र भी –

कहीं–कहीं दुखती है
घर की छोटी आमदनी
धुआँ पहनते चौके
बुनते केवल नागफनी
मिट्टी के प्याले सी दरकी
उमर हुई गुमनाम

इसके बाद **'सुलगते पसीने'** – 1979 और **'पसीने के रिश्ते'** 1980 का प्रकाशन बीज प्रकाशन पटना से ही हुआ। दोनों ही संग्रहों में श्रमजीवी-संघर्षरत जन के श्रम-सौन्दर्य के शिल्प में ढले हुए जनवादी गीत हैं। इन गीतों में शोषित-पीड़ित जन के संघर्ष का आह्वान किया गया है। इन गीतों में फूल है, चिड़िया है तो किसानों-मजदूरों की भूख से ऐंठती अंतरियाँ और कमजोर पसलियाँ भी हैं। ये गीत शान्ति सुमन के आगामी जनवादी गीतों के पूर्व ज्वलित संकेत तो हैं ही, आम आदमी के जीवन-यथार्थ की मजबूत पकड़ भी इन गीतों में है।

'मौसम हुआ कबीर' 1985 में प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। बाद में उसका दूसरा संस्करण 1999 में ईशान प्रकाशन मुजफ्फरपुर से छपा। यह गीत-संग्रह शान्ति सुमन का प्रतिनिधि जनवादी गीतों का संग्रह है। शोषित-पीड़ित जन की तकलीफें ही इन गीतों में नहीं हैं, इनमें शोषकों के विरूद्ध आवाज भी उठाई गई है। 'सुलगते पसीने' में एक सशक्त जनवादी

गीतकार के रूप में जो इनकी पहचान बनी, इस संग्रह के गीतों के द्वारा उस पर समर्थ मुहर लगी है। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है कि ये गीत शोषण-दमन के विरूद्ध साहस और संकल्प देते हैं। जनता के बीच जाकर इन गीतों ने उनकी स्वीकृति प्राप्त की है। ये गीत जनता के श्रम-संघर्ष से इतने जुड़े हैं, फिर भी इनमें मानवीय संवेदना के स्रोत प्रवाहित हैं और ये सामाजिक सरोकार से गहरे जुड़े हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

सूर्य को लपेटे हुए अपने बदन से
हौसले तैयार, बाँधे सर कफन से
मुक्ति की शुभकामना ले
जागता है एक जोड़ा हाथ

कुछ पंक्तियाँ ये भी –

सूखी रोटी के दुख/हमने बरस जिये
तन का फटा अंगोछा/शीत न घाम सहे
बहो हवा हे झिर–झिर/तनिक अरज कर लें
अबके उपज सोनमाटी/परब सब दुख हर लें

पत्रिका में छपकर मंचों पर जनता के समूह को आन्दोलित और संवेदनात्मक धार देने वाला यह गीत द्रष्टव्य है –

थाली उतनी की उतनी ही/छोटी हो गई रोटी
कहती बूढ़ी दादी मेरे गाँव की
फेन-फूल से उठे मगर राखों के ढेर हुए
कसी हुई मुट्ठी के किस्से हम मुठभेड़ हुए
भूख हुई अजगर सी सूखी तन की बोटी-बोटी
कहती बड़की काकी मेरे गाँव की

इनका यह गीत 'बेटा मांगे चन्द्रमा' की लोकप्रियता का ग्राफ अभी भी उतरा नहीं, ज्यों का त्यों है –

फटी हुई गंजी ना पहने, खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, मांगे एक पूरा चन्द्रमा
घट्ठे पड़े हुए हाथों का/प्यार बड़ा ही सच्चा
खोज रहा अपनी बस्ती में/दूध नहाया बच्चा
बाप सरीखा उसको आता/नहीं भूख को टालना

'तप रहे कँचनार' 1997 में प्रकाशित हुआ। यद्यपि यह साझा गीत संकलन है, पर इसमें संकलित गीत नवगीत की जीवनधर्मी संवेदनाओं के अधिक निकट हैं। कोमल-सुन्दर-ताजे बिम्बों वाले ये गीत शान्ति सुमन की

विलक्षण गीतधर्मिता को व्यंजित करते हैं। ये नएपन के लिए ही केवल नहीं लिखे गये हैं, अपितु इनमें गीत की नयी रचना-दृष्टि भी समाहित है।

2002 ई० में शान्ति सुमन का अलग गीत-संग्रह **'भीतर-भीतर आग'** का प्रकाशन हुआ। यह गीत-संग्रह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इन गीतों को पढ़कर ही राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने कहा कि – ''डॉ० शान्ति सुमन नवगीत की अनन्या कवयित्री एवं समकालीन लेखन की प्रणेत्री हैं। वे नवगीत और जनवादी गीत की मुख्यधारा में दूर तक स्वीकृत, समादृत उच्च स्तरीय रचनाकार हैं।'' 'ओ प्रतीक्षित', 'परछाईं टूटती', 'मौसम हुआ कबीर' के गीतों की तरह इस संग्रह के गीतों ने पत्रिकाओं में तो अपनी जगह बनाई ही, कवि-सम्मेलन के मंचों पर भी बहुत ख्याति और लोकप्रियता अर्जित की। पाठकों और श्रोताओं को जाने इनके कितने ही गीत कंठस्थ हैं। इनके कितने ही गीतों ने प्रथित पूर्वागत समकालीन गीतों का आस्वाद तक बदल डाला है –

दरवाजे का आम-आँवला घर का तुलसी-चौरा
इसीलिये अम्मा ने अपना गाँव नहीं छोड़ा

एक दो पंक्तियाँ और देखिये –

एक प्यार सबकुछ होता है/जिससे डरते हैं सारे डर

और

पीली लहठियों वाले हाथ/रात-दिन सपने बुनते हैं

एक यह और भी –

अब उड़ान ने भाषा पहनी है चिड़िया की पाँखों में

और यह भी –

अपनी बेटी सी कोमल हरियाली/सामने किलकती खड़ी

'2004 में पंख-पंख आसमान' नाम से शान्ति सुमन के एक सौ एक गीतों का प्रतिनिधि संकलन नचिकेता द्वारा चयनित और संपादित होकर आया। इसमें नवगीत और जनवादी दोनों प्रकार के गीत हैं। इसमें अब तक के इनके सभी संकलनों से गीत लिये गये हैं। इनके गीतों के संदर्भ में डॉ० रेवतीरमण ने कहा – ''शान्ति सुमन राग और रूप ही लिखती रहीं, विराग और अरूप ने कभी उन्हें आकर्षित नहीं किया तो उसके पीछे उनकी गतिशील यथार्थ की समझ और विकासशील वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि है।'' उन्होंने आगे कहा है कि ''बहरहाल मैं मानता हूँ कि शान्ति सुमन के भीतर गीत की संवेदना निश्छल है, अमिश्रित है। उनके भावावेश अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं। वे गीत रचने और उनकी सम्यक प्रस्तुति के लिए ही बनी हैं। संभव है, जन-आंदोलनों का पीछा करने की प्रेरणा उन्हें उद्दाम युग-चेतना से मिली हो।''

समीक्षकों-आलोचकों ने शान्ति सुमन के गीतों को नागार्जुन के गीतों के समीप रखकर देखा है। डॉ० रेवती रमण इनके गीतों में उन सभी उपकरणों को देखते हैं जो नागार्जुन की कविता में समाविष्ट हैं।

'एक सूर्य रोटी पर' 2006 में प्रकाशित हुआ। 'मौसम हुआ कबीर' के बाद यह शान्ति सुमन का जनवादी गीतों का एक प्रतिनिधि संग्रह है। पाठकों और समीक्षकों के द्वारा चर्चित एवं प्रशंसित इन गीतों ने समकालीन जनवादी गीत-साहित्य में अपनी सार्थक उपस्थिति बनाई है और जनवादी गीत-साहित्य के इतिहास में अपने पृष्ठ सुरक्षित किये हैं। इसमें 'गीत में बदलाव के संकेत' शीर्षक से इन्होंने गीत पर कुछ बातें कही हैं जिन पर ध्यान जाता है। इन्होंने लिखा है – 'जनवादी गीतकार की पहचान इसलिये अपने समय, समाज और वर्ग के जरूरी सवालों से जुड़नेवाले जुझारू मित्र के रूप में है। वह अपने संवेदनशील समाज की आँख और हृदय है। वह अपने समाज के यथार्थ के ताप को अनुभव करने वाला जागरूक पहरूआ भी है। ये गीतकार दुनिया में श्रमजीवी-संघर्षरत जन के लिए लड़ने की आग जलाये रखते हैं। यहीं से उनके गीतों में प्रामाणिक ऊर्जा आई है। सहज मानवीय करुणा के अभाव को गीतकार आज सामान्य जन की पीड़ा लिखकर पाट रहे हैं। गीतों ने लेखन को निष्करुण होने से बचाया है।'

शान्ति सुमन ने इस गीत-संग्रह में जो एक महत्वपूर्ण बात लिखी है उसका जनवादी गीत-रचना में विशेष ध्यान रखना जरूरी है – ''समाज में सक्रिय परिवर्तनकामी शक्तियों के साथ गीतों के जुड़ने की बात जब होती है तो कविता के इतिहास के पिछले पन्नों को भी पलटने की बात सामने आती है। गीतों में प्रगतिवाद का पुनरागमन हो और उसकी वही परिणाम भी हो तो यही अच्छा है कि गीत अपनी बुनियादी विरासत से जुड़ा रहकर अपने सामाजिक और सामयिक सरोकारों को अधिक तेज करे और आवश्यक होने पर समय का अतिक्रमण भी कर जाये। जानलेवा व्यवस्था का मर्सिया पढ़ने से कोई फायदा नहीं। इसे बदलने की आकांक्षा रखनेवाली सक्रिय ऐतिहासिक शक्तियों का साथ देना ही उचित है।''

शान्ति सुमन के उपर्युक्त विचारों ने जनवादी गीत में सोच की एक नई रेखा खींची है। श्रमजीवी जन के जीवन के साधारण प्रेम को ये किस तरह असाधारण बना देती हैं –

लगभग संग हुई कुछ बातें/नमक और चीनी दिन-रातें
सुजनी, गाँती ढेर अंगोछे/सर्द पूस हम मिल-जुल काटें
फसलों वाले प्यार/फाड़ देते मन की काई

एक और चित्र जो बार-बार पढ़ने और गुनने योग्य है –

सात किलो राई-सरसों/और आठ किलो सुतली
चमकी कच्ची चाँदी की/बिछिया-टीका-हँसुली
ऊपर हँसे चन्द्रमा नीचे लहरी है नदिया

संघर्ष-श्रमरत जीवन में स्त्रियों की एक विशेष भूमिका होती है, उसका एक खास महत्त्व होता है। पुरुष और स्त्री साथ मिलकर श्रम करते हैं, सुख-दुख सहते हैं और कठिन से कठिन तकलीफ को भी दोनों एक दूसरे के सहारे पार करते हैं। यह देखने की बात है कि खेत में हल पुरुष चलाता है, कोड़ता, चौकियाता भी है, पर धनरोपनी अधिकांशतः स्त्रियाँ ही करती हैं। फसल से खर-पतवार निकालना या निकौनी करना हो तो स्त्रियाँ करती हैं, भले फसल की सिंचाई पुरुष करते हैं। उन कामों में भी स्त्रियाँ उनका बहुत साथ देती हैं। शान्ति सुमन ने ऐसी संघर्षजीवी श्रम करती स्त्रियों का चित्र खींचते हुए सौन्दर्य के सारे आकर्षण अपने शब्दों में रख लिये हैं –

देह साँवली चकमक पहने बूँद पसीने की
परब-तिहारों पर भी/तन पर वही पुरानी साड़ी
जंगल-झरने, पेड़-पहाड़ों पर लगती है भारी
आधी झुकती डालों वाली कली नगीने की

इस श्रम करने वाली स्त्री का चित्रण भी शान्ति सुमन ने इतना डूबकर किया है कि उसका जीवन यथार्थ आँखों के आगे खड़ा हो जाता है –

फूलों का मौसम होंठों पर/ओसों का टीका माथे पर
खेतों की माटी में खूब/नहाई लगती हो

श्रम करने से भी जब मेहनतकश की इच्छायें अधूरी रहती हैं, उनके घर-बार अधूरे रहते हैं तब उनके जीवन का यही रूप, यही दशा और यही चित्र सामने आता है –

मिहनत और मजूरी करके/दिन कट जाते थे
दूर-दूर रहने के ये घाटे पट जाते थे
अब तो आँखों में पानी के दिये जलाये हैं....
हंसी, नींद, सपने सब कुछ कितने घबड़ाये हैं

इस संग्रह के गीतों पर अपना विचार देते हुए डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह ने लिखा है कि ''विकसनशील संवेदनशीलता की गीतकर्त्री हैं शान्ति सुमन। नवगीत के नगरबोध और आधुनिक बोध की यात्रा से गुजरते हुए वे बीसवीं सदी के सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में किसान और मजदूरों के श्रम और संघर्ष को अपने गीतों में ढालने लगीं और जनवादी गीत की संवेदना से एकाकार हो गईं।

पूँजीवादी व्यवस्था की प्रत्येक अमानुषिकता को वे छन्द और लय में ढालकर क्रांतिकारी चेतना की वाहिका बन सकी हैं। आरंभिक जनवादी गीतों की नारेबाजी से शीघ्र ही निकलकर 'एक सूर्य रोटी पर' जैसे श्रेष्ठ कालजयी गीत की रचना वे कर जाती हैं।''

शान्ति सुमन के गीतों की जो मौलिक विशेषता है वह यह कि ''हर प्रकार के दुख, हर प्रकार के दर्द, हर तरह के अभाव इन गीतों की भाषा और लय में ढलकर मधुरतम बन गये हैं। यही गीतकर्त्री की रचनात्मकता है।''

इस क्रम में कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह का विचार भी अत्यंत प्रासंगिक लगता है जब वे शान्ति सुमन के इस गीत 'हम मुठभेड़ हुए' की विवेचना करते हुए लिखते हैं –

'भाव, विचार और भाषा की रवानगी इन तीनों को लेकर यह गीत भी अपने हल्कों में काफी सराहा गया है। शुरू से लेकर अंत तक एक विशेष लय यहाँ भी बंधी चलती है।... कला शोर नहीं है, न ही केवल उबाल और उद्‌गार है, वह बल्कि उसे एक विशिष्ट अर्थ और पहचान देकर मनुष्य को हमबद्ध सहभागिता की ओर अग्रसर करने की सबसे विश्वसनीय प्रक्रिया है। शान्ति सुमन के एक गीत की पंक्तियाँ लें –

थाली उतनी की उतनी ही/छोटी हो गयी रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
सबसे बूढ़ी दादी अपने गाँव की

यहाँ अनायास ही कुछ ऐसे तत्त्व आ गये हैं जिनके योग से गीत का विन्यास अपने आप पूरा हो जाता है।'

शान्ति सुमन का अबतक का नया गीत-संग्रह है – 'धूप रंगे दिन'। इसका प्रकाशन 2007 में हुआ। 'एक सूर्य रोटी पर' की अगली कड़ी के रूप में इसको देख सकते हैं। इसके गीतों में बिना किसी आक्रोश या कठोर प्रतिक्रिया के व्यवस्था के अंतर्विरोध को अपनी लयात्मक शैली में उजागर किया गया है। लहूलुहान शब्दों से क्रांति होगी, विपक्ष पर कठोर शब्दों से आक्रमण कर उनके पशुत्व को नष्ट करने के लिए अपना पशुत्व जगे – इनमें शान्ति सुमन का कोई विश्वास नहीं है। वनैले जानवरों को इकट्‌ठा कर उससे शत्रुओं की तुलना कर अपने मन की प्रतिहिंसा को आगे करने में भी शान्ति सुमन का कोई विश्वास नहीं है। ये अपनी शैली में, अपनी तरह से व्यवस्था की विसंगतियों की बातें करती हैं, उन पर प्रहार करती हैं और व्यापक श्रमजीवी वर्ग के जीवन-यथार्थ में प्रवेश करती हैं। बड़े आत्मीय और विश्वसनीय ढंग से विपन्न वर्ग की पीड़ा को चित्रित करती हैं। नर और नरेतर दोनों संसार की बातें करती हुई शान्ति

सुमन अपनी संवेदनाओं के अक्षय भण्डार खोल देती हैं। तभी आम आदमी की पीड़ायें, यातनाएँ जो इनके शब्दों में उतरती हैं, अधिक आत्मीय, विश्वसनीय और अपनी भोगी गई लगती हैं। श्रमजीवी जनों का परिवार ही नहीं, उनके दुख और संघर्ष भी अपने लगते हैं –

बिन तेरे ऐसा भी होता
हवा नहीं कुछ कहे हवा से
बाबूजी को घर की चिन्ता
माँ जुड़ जाती नई दवा से
फिर तो सब दिन महालया है।

इस तरह का एक बेहद संवेदनाओं से भरा और मन को छूता हुआ चित्र द्रष्टव्य है –

जब से देखा है माँ को/आटे सी पिसती हुई
बहन कभी तितली सी थी/अब चुभती हुई सुई
गाँव वनों-शहरों में फाँके/अपना भाई धूल

इस संग्रह के गीतों को पढ़कर सुचर्चित कवि-समीक्षक मदन कश्यप ने अपना विचार दिया है कि ''शान्ति सुमन हमारे समय के उन कुछ दुर्लभ गीतकारों में हैं, जो शिल्पगत अथवा शैलीगत अलगाव के बावजूद सोच और संवेदना के स्तर पर समकालीन कविता से गहरे जुड़े हुए हैं। उनके पास आज के यथार्थ की आन्तरिक गतिशीलता को परखने की दृष्टि भी है और उसे उद्‌घाटित करने की कला भी।''

वस्तुतः शान्ति सुमन ने उस अंतर्वस्तु को जिससे सुन्दर कविता रची जा सकती है, उसको गीत के शिल्प में ढाल दिया है। यह इनका अद्‌भुत कौशल है। इस कौशल से इन्होंने सुन्दर-संवेदनशील गीतों की रचना की है। यह भी सच है कि शान्ति सुमन ने गीतात्मक संवेदना वाले कथ्य को कविता के शिल्प में भी ढालने का काम किया है। शान्ति सुमन गीत लिखें या कविता, दोनों में गीतात्मक लय का वितान होता है।

इन गीत संग्रहों के अतिरिक्त 1991 में **'मेघ इन्द्रनील'** नाम से इनके मैथिली गीतों का संग्रह प्रकाशित हुआ। विद्यापति, जयदेव और नागार्जुन के गीतों के श्रेष्ठ उपादानों से सिक्त ये गीत मैथिली में होकर भी हिन्दी गीत की संवेदना से अलग नहीं हैं। गीत के कोमल शिल्प में ढले इनकी संवेदना, अनुभव और विचारों से भरे ये गीत भाषात्मक अंतर के बावजूद हिन्दी गीत-कविता के पड़ोस के अमूल्य स्वर हैं।

1994 में 'समय चेतावनी नहीं देता' नाम से इनका कविताओं का एक

साझा संकलन प्रकाशित हुआ। गीतात्मक लय से सिक्त ये कवितायें व्यक्ति की सीमा पार कर समष्टि में एकाकार हो जाती हैं। विद्रूप से भरे जीवन-यथार्थ इन कविताओं में कोमलता के शिल्प में ढलकर आये हैं। इन कविताओं में कवयित्री ने अपने अनुभवों के साथ अपनी कल्पना को भी अपनी रचनाशीलता को समृद्ध करने के लिए लगाया है। यह महत्वपूर्ण है कि इसमें इनकी कल्पना सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हुई है। इन कई उपर्युक्त संग्रहों के पूर्व 1976 में इनका **'जल झुका हिरन'** (उपन्यास) प्रकाशित हुआ। अपनी भाषा-शैली के लिए यह उपन्यास अधिक चर्चा में आया। इसमें प्रेम तो है ही, तत्कालीन युवा जीवन के संघर्ष, उनकी तकलीफें भी हैं। सबसे ऊपर वह असुविधाजनक यथार्थ है जिसमें जीने के लिए इस उपन्यास के पात्र विवश हैं। कालेज-जीवन से आगे बढ़ती हुई कथा जीवन के जलते मरूस्थल पर जाकर ठहर जाती है।

1993 में 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' नामक इनकी आलोचना की पुस्तक आई जो इनके शोध प्रबंध पर आधारित थी। इसमें मध्यवर्ग के पारिभाषिक निर्धारण के साथ समय-समाज के संदर्भ में उसकी पूर्वापर व्याख्या देते हुए आधुनिक हिन्दी कविता विशेषकर नयी कवितायें जिनमें नयी कविता के अतिरिक्त अकविता, भूखी पीढ़ी, श्मशानी पीढ़ी, सूर्योदयी कविता, युयुत्सु कविता आदि और उनके प्रतिफलन का विस्तृत वर्णन किया गया है।

सम्पादन :–

शान्ति सुमन ने '63-'64 ई० में **'सर्जना'** मासिक पत्रिका का संपादन तब किया जब वे हिन्दी ऑनर्स की छात्रा थीं। इसके तीन अंक निकले। कुछ यशःकामी सहयोगियों के वैमनस्य के कारण पत्रिका को बंद करना पड़ा।

'भारतीय साहित्य' और **'कंटेम्परारी इंडियन लिटरेचर'** (अंग्रेजी में) दिल्ली से प्रकाशित दोनों पत्रिकाओं का कई वर्षों तक सह संपादन किया।

ये **'अन्यथा'** नाम से अनियतकालीन पत्रिका की सम्पादिका रहीं। यह पत्रिका नवगीत से प्रतिबद्ध थी और इसका प्रकाशन वर्ष 1971 था।

इन्होंने पटना से प्रकाशित **'बीज'** का भी सह सम्पादन किया।

शान्ति सुमन के गीत, कविता, समीक्षा आदि देश की प्रमुख पत्रिकाओं में छपती रहीं। देश के अनेक आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्रों से इनके गीतों का प्रसारण होता रहा। एक गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर इन्होंने सर्वभाषा कवि-सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद-पाठ किया।

शान्ति सुमन एक गहरे सामाजिक यथार्थ की गीत-कवयित्री हैं। जिस गहरे सामाजिक यथार्थ के संघनन के कारण मुक्तिबोध जैसे बड़े कवियों की भाषा

की कलात्मकता क्षीण हो गई थी इसके विपरीत शान्ति सुमन की भाषा ने अपनी लय का विघटन नहीं होने दिया है और इनकी भाषा का सौष्ठव भी बना हुआ है। शान्ति सुमन की भाषा में यथार्थ के आवरण को भेदने की शक्ति है और वह उसकी भीतरी सतह को भी उजागर करती है। निश्चय ही इस कठिन कार्य में कल्पना की शक्ति का समाहार किया गया है। कहना चाहिये कि कल्पना का सृजनात्मक प्रयोग शान्ति सुमन की रचनाओं में देखा जा सकता है। इन्होंने अपनी विधात्मक प्राथमिकता के अनुकूल अपनी भाषा गढ़ी है। शान्ति सुमन की सबसे बड़ी विशेषता है इनके गीतों की अपनी भाषिक पहचान। जिस तरह इनके बिम्ब इनके ही बिम्ब हैं, इनके ही हो सकते हैं, पूरे नवगीत और जनवादी गीतों में इतने अलग बिम्बों की रचना दूसरे गीतकार ने नहीं की है, उसी तरह इनकी भाषा के अंतर्तत्व इनको दूसरे गीतकारों की भाषा से अलग करते हैं और इनको निजी पहचान देते हैं। समकालीन यथार्थ के लगातार पड़ते हुए दुष्प्रभावों एवं दबावों से शान्ति सुमन ने अपनी भाषा को बचाया है। यह उसी तरह बची है जिस तरह इस घोर अनिश्चय और अनिर्णय के इस संघाती समय में भी मनुष्यता बची हुई है, भाई-चारा बचा है और अपना कहने लायक कुछ संबंध भी बचे हुए हैं। गीत को गीत की तरह बचाकर रखना और उससे भी अधिक गीत के लिए समय-समाज से जुड़ा रहना शान्ति सुमन की रचनात्मकता की अद्वितीय पहचान है।

अंत में नवगीत और जनवादी गीतों के संसार में शान्ति सुमन की अकेली पहचान है कि ये जितना सुन्दर रचती हैं, उतना ही सुन्दर गीतों को सस्वर प्रस्तुत भी करती हैं। पहले की बात छोड़ भी दें तो '67 से लेकर '90 तक इन्होंने कवि-सम्मेलन के मंचों पर अपनी गीत-प्रस्तुति से अजस्र यश प्राप्त किया। कितने ही कवि-सम्मेलन एवं कवि-गोष्ठियाँ इनकी उपस्थिति से ही चलती थीं। ऐसे पचास से अधिक संस्मरण हैं जिनमें मंचों पर कई प्रतिष्ठित कवि-गीतकारों की उपस्थिति में श्रोताओं ने शांति सुमन को इतने धैर्य से सुना कि उस कोलाहल में मंच के नीचे केवल देखती हुई आँखें, सुनते हुए कान और चलती हुई साँसें थीं। सुदूर गाँवों में भी जाकर इन्होंने गीतों को सुनाया। शांति सुमन का यह विशेष अनुभव है कि शिक्षित समझदार श्रोताओं की तरह उनके गीतों को गांव की जनता ने भी अधिक मनोयोग से सुना, इनकी तारीफ की और संवेदना से भरे हुए स्थलों पर उनकी आँखें भी भींगी। वे भींगती आँखें शांति सुमन के लिए बेशकीमती पुरस्कार हुआ करती थीं। आज भी इनको बड़े काव्य-मंचों से अलग पुआल के ढेर पर बैठकर गीतों को सुनाना याद है। श्रोताओं की उस आत्मीयता से ये अपने को आज भी भरी-पूरी महसूस करती हैं। निम्न मध्यवर्गीय परिवार में जीने वाली शांति सुमन के लिए श्रोताओं-पाठकों का यह स्नेह ही अमूल्य

धन है। इस पूरे अनुष्ठान में ये अपनी दादी के अमूल्य आशीर्वाद, अपने माता-पिता की ममता और पूरे परिवार के आत्मीय संस्पर्श को भी रचा-बसा पाती हैं।

पुरस्कार :–

शान्ति सुमन को सबसे पहले मुजफ्फरपुर से प्रकाशित पत्र 'भिक्षुक' के द्वारा सम्मान-पत्र मिला। वह सम्मान यद्यपि अपने शहर से प्राप्त हुआ था और उसका आयाम छोटा था, पर ये उस सम्मान को अपने सारे सम्मानों और पुरस्कारों से ऊपर और अलग रखती हैं। उस समाचार पत्र ने इनके सम्मानों और पुरस्कारों के द्वार खोल दिये। एक साधारण पत्र और साधारण मिट्टी की ओर से दिया गया वह सम्मान असाधारण ही नहीं, अद्‌भुत भी था। इन्होंने आज तक उस सम्मान-पत्र को जुगाकर रखा है। बाद के बड़े सम्मानों और पुरस्कारों में वह कहीं खोया नहीं है।

इसके बाद इनको बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से **साहित्य सेवा सम्मान** से सम्मानित और पुरस्कृत किया गया। फिर तो एक के बाद एक कई सम्मान और पुरस्कार इनके लिए प्रतीक्षित और अपेक्षित भी हो गये। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से इन्होंने **कवि रत्न सम्मान** प्राप्त किया। बिहार सरकार के राजभाषा विभाग ने इनको **महादेवी वर्मा सम्मान** और पुरस्कार प्रदान किया। अवंतिका (दिल्ली) से इनको **विशिष्ट साहित्य-सम्मान** और मैथिली साहित्य परिषद् ने **विद्‌या-वाचस्पति** का सम्मान दिया। फिर हिन्दी प्रगति समिति ने **भारतेन्दु सम्मान** और नारी सशक्तीकरण के उपलक्ष्य में **सुरंगमा सम्मान** से इनको अलंकृत किया गया। इसी क्रम में विन्ध्य प्रदेश से **साहित्य मणि सम्मान** से विभूषित हुईं। 2005 में **साहित्य भारती सम्मान** से हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने इनको पुनः गौरव दिया। **सौहार्द सम्मान से 2006 में** उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ के द्वारा ये सम्मानित और पुरस्कृत हुईं।

शांति सुमन जी को पत्र-पत्रिकाओं में बहुत पहले से पढ़ता आ रहा था। आकाशवाणी से भी इनकी रचनाएं प्रायः सुनने को मिलती थीं। किन्तु इनसे पहली मुलाकात जमशेदपुर में ही सातवें दशक के पूर्वाद्ध में हुई, जब शांति जी एक कवि सम्मेलन के सिलसिले में जमशेदपुर पधारी थीं। उस कवि सम्मेलन में शांति जी द्वारा गाये हुए गीत आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं –

केसर रंग रंगा मन मेरा
सुआपंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में
लिखा तुम्हारा नाम है।

दूसरी रचना –

दुख रही है अब नदी की देह
बादल लौट आ।

मुझे याद है एक के बाद एक कई रचनाएं शांति जी ने सुनाई थीं और वह कवि सम्मेलन उनके नाम हो गया था। उसके बाद तो शांति जी लगातार कवि सम्मेलनों में जमशेदपुर आती रहीं। जमशेदपुर तथा जमशेदपुर से बाहर कई कवि सम्मेलनों में हमलोग साथ रहे। नवें दशक में तो शांति जी का जमशेदपुर से और गहरा संबंध हो गया जब सन् 82 में उनके सुपुत्र श्री अरविन्द जी टाटा स्टील में इंजीनियर के पद पर नियुक्त हो गये। उनका जमशेदपुर आना-जाना जारी रहा। शान्ति जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को बहुत निकट से जानने, समझने तथा उनकी अधिकांश रचनाओं को पढ़ने और उनके श्रीमुख से सुनने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। भाव, भाषा और अभिव्यक्ति की श्रेष्ठ कवयित्री डॉ० शांति सुमन की कालजयी रचनाएं गीत-काव्य की धरोहर हैं। इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता है।

शान्ति सुमन का साहित्यिक सरोकार जितना विस्तृत है, उतना ही सामाजिक और पारिवारिक संबंध भी। मृदुभाषिता, विनम्रता और शालीनता की त्रिवेणी हैं शान्ति सुमन। अपने अपमान की तरह इनको दूसरे का अपमान भी दुखी करता है। बहुत जरूरी नहीं हो तो इनको गुस्सा करना भी नहीं आता। किसी अप्रिय व्यवहार को इस तरह सहन करती हैं कि दूसरे पर उसका प्रभाव नहीं पड़े।

मेरी यही शुभकामना है कि डॉ० शान्ति सुमन का व्यक्ति और कृति अनवरत नदी की तरह प्रवहमान रहे। इनका आगामी वह श्रेष्ठ सृजन शीघ्र कागज पर उतरे – समय, समाज और जनता को जिसकी अपेक्षा है।

1 / 27, काशीडीह,
जमशेदपुर - 831001
दूरभाष : 0657-2437379
मो० : 9430735262

आत्मकथ्य

❑ शान्ति सुमन

अपनी रचना-प्रक्रिया पर कुछ कहने से पहले अपने बारे में एक-दो बातें कहना चाहती हूँ। मेरा मूल नाम शान्तिलता है। शांति मेरी फुआ का दिया हुआ नाम है। उसकी ससुराल में इस नाम की एक लड़की पढ़-लिखकर मैट्रिक पास हुई थी। फुआ ने इस विश्वास से मेरा नाम शान्ति रख दिया कि मैं भी पढ़-लिखकर बड़ी बनूँगी। सुमन परिवार का दिया हुआ नाम है। मैंने दोनों नामों को अपने लिए रख लिया। पर यह सच है कि शांति सुमन ने कभी कोई नौकरी नहीं की। शान्तिलता में मेरी माँ के नाम के साथ लगा हुआ शब्द 'लता' है। उनका नाम जीवनलता देवी था। मेरी शिक्षा इसी नाम से हुई। इसी नाम से मैं व्याख्याता, रीडर और प्रोफेसर बनी तथा इसी नाम से 2004 ई० में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से सेवामुक्त हुई।

यह बहुत अर्थ नहीं रखता कि मेरा जन्म कब हुआ। अर्थ इसमें है कि अपने रचनात्मक जीवन में मैंने क्या किया। इसी से लगी हुई एक जिज्ञासा हो सकती है कि मैं रचनात्मक कैसे हुई। जीवन की शुरूआत से लेकर किशोरावस्था तक मैंने जैसा जीवन जिया, जैसा देखा, सुना और समझा उसी से मुझको रचना की प्रेरणा मिली। मैट्रिक पास करने तक जैसी मेरी रचनायें रहीं उनको स्वतःस्फूर्त्त कहें भी तो '60 के पहले ही मेरी स्वतःस्फूर्त्तता समाप्त हो गयी थी और सामाजिक सरोकार के संवेदनशील अनुभव मुझमें घर बनाने लगे थे। जो लोग मुझको या मेरे जैसे रचनाकार को नहीं जानते हैं, वे मेरी या उन सबकी रचनाओं को और रचनाओं के माध्यम से मुझको और उन सबको जानने लगते हैं कि उन रचनाओं में हमारी साँसों के दस्तावेज लिखे होते हैं, उन साँसों के दस्तावेज जिनको हमने समकाल की सामाजिक परिस्थितियों में लिया और हम जीवित रहे। इसलिये रचनायें हमारे जीवित होने के सबूत होती हैं। हम रचनायें इसलिये लिखते हैं कि अपने जिन्दा होने का सबूत दे सकें। समाज भी कैसे जीता है, उसके जीने में कितना 'जीवन' है इसको भी रचनायें ही कहती हैं। जीवन को कहने के लिए रचना से अधिक कोई और माध्यम प्रामाणिक नहीं होता। आप यह समझिये कि कहीं लिखा हुआ पढ़ा था कि अकबर के राज्य में घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे। उन दिनों चोरियाँ नहीं होती थीं। सबको करने के लिए काम थे और कोई अभाव नहीं था, पर 'विनयपत्रिका' में तुलसीदास ने लिखा है कि उन दिनों वणिक को काम नहीं मिलता था, न सबको 'चाकरी' मिलती थी, यहाँ तक कि भिखारी

को भीख नहीं मिलती थी। तुलसीदास ने किसी के दबाव में यह सब नहीं लिखा क्योंकि उन्होंने तो स्पष्ट कह दिया था कि 'तुलसी अब का होंहिहें नर के मनसबदार।' रचनाकार की यही अस्मिता, उसका यही स्वाभिमान उसकी पहचान है जो उसको समाज में अलग और ऊपर उठाती है।

2/3/79 को गीत पर एक वक्तव्य देते हुए मैंने कहा था कि गीत को मैं अपने से अलग नहीं मानती। ये शब्द, भाव, विन्यास कैसे और कहाँ से आते हैं यह तो केवल वही बता सकते हैं जो विवश करते हैं कुछ लिखने के लिये और इसमें संदेह नहीं कि जब वे आते हैं तो उन्हें बैठने के लिए जगह, तोड़ने के लिये तिनके और करने के लिये कुछ बातें मिल ही जाती हैं। यह रचनाकार का अपना एकांत है। उसकी अपनी इकाई है। सब कुछ व्यक्तिगत पर सामाजिक होता हुआ। जिस तरह पानी का कोई स्वरूप नहीं होता, वह जिसमें रखा जाता है, उसका स्वरूप ले लेता है, मेरी समझ से यही स्थिति अनुभूतियों का क्षणों के साथ है। यह व्यक्ति से समाज की ओर उन्मुख होनेवाली प्रक्रिया है। अर्थात् व्यक्तिपरक होकर भी सामाजिक।

यह बात ठीक है कि आज की जिन्दगी बहुत कुछ गीतात्मक न होकर गद्यात्मक होती चली जा रही है। कुँवर नारायण के शब्दों में - 'वह चेहरा जो मेरे लिये चाँद हो सकता था, भीड़ हो गया है।' लेकिन भीड़ से भी तो अलग होना ही पड़ता है। लाखों के शोर में कहीं कोई महीन स्वर होता है जो सब पर तैरता रहता है, वरना आदमी ऊबकर वहाँ से भाग खड़ा होता। सभी लोग नींद की गोलियाँ खाकर सो रहते। घरेलू परेशानियों के बीच मेरे लिए गीत एक बचाव का पक्ष भी रहा है - डूबते को तिनके का सहारा।

अब जहाँ तक नवगीत का सवाल है - मैं अपनी ओर से कुछ भी दावा नहीं करती। परन्तु वैसे कुछ लोग सहज रूप से कही गई बातों को भी दावा मानकर अर्थान्तर कर देते हैं। हाँ, समय की नब्ज को मैंने समझने की भरसक कोशिश की है। यों जिस समय भी जो कुछ लिखा जाता है, वह उस समय के लिये देश, काल, परिस्थिति को देखते हुए नया होता है। अपने पिछले से अलग करने के लिये उसे एक नाम दे दिया जाता है, जैसे - छायावाद, प्रयोगवाद। आज का यह नव भी कुछ इसी प्रकार का है। आज का युवा रचनाकार पाँच के बाद छठा, सातवाँ पेबन्द लगाने में विश्वास नहीं करता, बल्कि वह यथास्थिति को खोलना चाहता है। वह देखना चाहता है कि संबंधों के प्याज में केवल छिलका ही छिलका है या उसके अंदर कोई ऐसी ठोस वस्तु है जिसके चलते वह कहीं-कहीं बजाय खुश करने, गुदगुदी के एक शॉक (shock) देता हुआ सा लगता है।

आसपास, परिवार, नौकरी, भाग-दौड़, देशकाल की बदलती हुई परिस्थिति के बीच जहाँ भी निजता को ठेस लगी है, टूटने की स्थिति पैदा हुई है। मानवीय संबंधों में लगातार छीजते जाने की जगहों को मैंने गीतात्मक अनुभूतियों से भरने की कोशिश की है और लगा है कि टूटती साँसों की उम्र कुछ और बढ़ गई है। संभवतः यही टूटती निजता आज के गीत की सार्थकता भी है। मैं नवगीत को केवल आंदोलन नहीं मानती। यह गीत कविता का क्रमिक विकास है। सन् '६० के बाद कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके कारण आज की कविता, युवा कविता, प्रतिबद्ध कविता, अकविता को नयी कविता से अलग होना पड़ा। यही स्थिति गीत के साथ भी थी जो उस समय की टूटती-बदलती मनःस्थितियों-परिस्थितियों को व्यक्त करने में सक्षम हो रहा था और नवगीत को आगे बढ़कर उसका दाय लेना पड़ा। मेरे लिये नया होने से पहले गीत होना जरूरी है और आदमी जिस आवोहवा में सांस लेता है उसके अनुरूप उसके चेहरे के भावों की तरह गीत-कविता की अंतर्वस्तु - कथ्य और शिल्प अपने आप हो जाता है।

इस बीच मेरे लेखन से सम्बद्ध कई प्रकार के प्रश्न लोगों ने पूछे। मैंने उनके उत्तर दिये। मैंने स्पष्ट किया कि मेरी साहित्य-यात्रा की शुरूआत माध्यमिक शिक्षा के दौरान बचपन में ही हो गयी थी, किन्तु इनमें स्थायित्व और स्तरीयता वर्ष 1960 के बाद आई। मेरी दृष्टि में किसी भी कला-संस्कृति का मूलाधार अर्थव्यवस्था होती है। स्पष्ट है, मूलाधार में परिलक्षित होने वाले परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब कमोवेश कला-संस्कृति में अवश्य होता है। इसलिए मेरी रचनाओं में भी समाज-व्यवस्था में आने वाली तब्दीलियों का कालानुसार प्रक्षेपण होता रहा है। वैचारिक अन्तर्वस्तु में आनेवाले परिवर्तन के समानान्तर मेरे गीतों में भी बदलाव आये हैं। यह प्रक्रिया सायास नहीं हुई है। वस्तुतः मैं वस्तु और रूप की द्वन्द्वात्मक एकता में विश्वास करती हूँ। कविता कभी भी छन्दमुक्त नहीं होती। केवल छन्द के रूप बदल जाते हैं। मैं मूलतः गीतकर्त्री हूँ। गीत मानव-जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है। इस दृष्टि से गीत की प्रासंगिकता अक्षुण्ण है। यह श्रम शक्ति को संघटित और गतिशील करने तथा श्रम शक्ति के ह्रास से उत्पन्न तनाव और थकान को कम करने का सबसे कारगर हथियार है। गीत-रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। मैं अपने भावों और विचारों को गीत के माध्यम से व्यक्त करने में सुविधा महसूस करती हूँ। हर रचनाकार अपनी सुविधा और अन्तर्निष्ठा के अनुसार ही अभिव्यक्ति का माध्यम (विधा) चुनता है। मेरा यह विश्वास भी है कि हर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। हर

समय प्रगतिशील और प्रतिगामी तथा जनवादी और जनविरोधी विचारधाराओं में तीव्र (हिंस्र) संघर्ष होता है। मैंने हमेशा अपने गीतों में विचारधारा के इसी द्वन्द्व और सामाजिक चेतना के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। विभिन्न संघर्षशील इलाकों, तबकों और जनसमुदायों में मेरे गीतों को स्वीकार किया जाना इसका सबूत है।

गीत-रचना के अपने अनुशासन होते हैं। इसमें वस्तु और रूप की द्वन्द्वात्मक एकता अगर नहीं है तो वह कम से कम गीत नहीं है। गीत-रचना को लोकप्रिय और संवेदनात्मक बनाने के लिये संगीत, लोकधुनों, लोक मुहावरों और लोक शब्दावलियों का प्रयोग करने के पक्ष में हूँ। और यह भी कि जन-जीवन से रचनाकार की दूरी वैचारिक रिक्तता का कारक होती है। समकाल के गीतों का वैचारिक आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और जनवादी विचारधारा है।

आज से दस वर्षों से पूर्व से ही यह कुप्रचार चल रहा है कि जनता और साहित्य के बीच विशेषकर गीत-कविता के बीच संवाद की स्थिति नहीं है। इसको एक बुर्जुआ प्रचार मानना चाहिये। सच तो यह है कि गीतों और कविता का जनता के साथ संपर्क पहले से अधिक प्रगाढ़ हो रहा है। इससे जनपक्षधर रचनाकार के दायित्व और बढ़ गये हैं। उनको रचना के साथ-साथ जनता का स्तरोन्नयन भी करना है। रमेश रंजक, नचिकेता, गोरख पांडेय, महेन्द्र नेह, विजेन्द्र अनिल, देवेन्द्र आर्य, सोम अधीर आदि गीतकारों के जन-समर्थन का यही कारण है।

यहाँ मुझको कल्पना के बारे में थोड़ी बात कहनी है। किसी भी रचना में ही नहीं, कलाकृति में भी कल्पना का उपयोग वस्तु सत्य के सापेक्ष होता है। कल्पनाशीलता कभी निरपेक्ष नहीं होती। यथार्थ को तराशने और उसमें सौन्दर्य भरने के लिये कल्पना एक श्रेष्ठ उपकरण है जबतक वह अमूर्त्तन से ग्रस्त नहीं होती है। यह रचनाकार की प्रतिभा और जीवन की गहरी पकड़ पर निर्भर करता है कि वह अपनी रचना में अनुभूति के साथ विचारों एवं समस्याओं को कैसे और कितना अभिव्यक्त कर पाता है।

मैं यह भी मानती हूँ कि लोकगीत और साहित्यिक गीत में कभी-कभी बहुत बड़ी विभाजक रेखा नहीं होती। कई लोकगीत शिल्प और संवेदना की दृष्टि से साहित्यिक गीत के समान लगते हैं। श्रेष्ठ गीत हमेशा पाठकों और श्रोताओं की संवेदना से एकरूप हो जाते हैं।

दुष्यंत कुमार की गजलों की लोकप्रियता और जनता से उनकी अंतरंगता को देखते हुए कई गीतकारों ने भी गजल लिखना शुरू कर दिया। वैसे थोड़े

अंतर को छोड़ दिये जायें तो वह गजल भी एक मुकम्मल गीत ही प्रतीत होती है। ऐसा कुछ बड़े गीतकारों ने भी किया है। मैंने गजल नहीं लिखी तो इसलिये नहीं कि गजल लिख नहीं सकती थी, अपितु इसलिये कि गीत लिखने के बाद गजल कहने की कोई आवश्यकता नहीं लगी। शिल्प का अन्तर यदि बहुत बड़ा अंतर है तो ठीक, अन्यथा दोनों की आत्मा का विभाजन संभव नहीं है। वैचारिक अन्तर्वस्तु दोनों की एक है। गीत और गजल दोनों में आज समसामयिकता अथवा समय और समाज जुड़ गये हैं। दोनों की सोच में यह बात है कि मानव-संघर्ष और मूल्यों से अलग होकर न तो गीत रचे जा सकते हैं, न गजल।

बदलते हुए समय के साथ गीत की रचना-विधि और स्वरूप में भी आवश्यकतानुसार बदलाव आता है। गीतों में लय छंद की एकोन्मुखता जरूरी मानी गई है। अधिकांश गीत इसी मान्यता को दृष्टि में रखकर लिखे गये हैं, पर ऐसे गीत भी लिखे गये हैं जिनमें एक ही गीत में लय छंद की एकता नहीं रखकर उनमें एकाधिक लय छंद की संहिति दीख पड़ती है। यह गीत के प्रभाव को कम नहीं करती, अपितु प्रयोगधर्मिता में अथवा रचना के दबाव में ऐसा हो जाना स्वाभाविक लगता है। परन्तु प्रयोग इस सीमा तक ही होना चाहिये कि गीत में किसी प्रकार की विषमता न आये। गीत को गद्यात्मकता की सीमा तक लाकर उसमें अनगढ़ता आने दिया जाए, उससे अच्छा है कि एकाधिक लय-छंद का व्यवहार कर उसकी स्वाभाविकता की रक्षा की जाए। गीत के प्रसंग में यदि प्रयोगशील होना असहनीय है तो बद्धमूल अनुशासन भी वांछित नहीं है।

हिन्दी में ऐसे गीत भी लिखे गये हैं या लिखे जा रहे हैं जो वस्तु और शिल्प दोनों में एकदम तात्कालिक हैं। उनका तात्कालिक प्रभाव जितना भी हो, पर वे गीत उस घटना-विशेष के साथ ही समाप्त हो जानेवाले हैं। कुछ ही घटनायें इतिहास में अपनी जगह बनाती हैं। शेष तो नदी की लहरों की तरह आती-जाती रहती हैं। ऐसे गीत कालजयी नहीं होते। कालजयी गीतों की हिन्दी में कमी नहीं है। जितने भी वे गीत हैं, उनसे ही गीत का इतिहास बनता है और गीतधर्मिता की भी रक्षा होती है। निश्चय ही तात्कालिकता सामाजिकता की सम्पूर्ण छवि नहीं होती। गीत मनुष्यता की प्रतिलिपि है। वह सर्वहारा क्रांति की जरूरत है। इस चिरन्तन गीत विधा की बुनियाद तब पड़ी जब मनुष्य ने अपने को श्रम से जोड़ा। अतएव श्रम-जीवन से उत्पन्न लय और नाद गीत विधा की अन्तःशक्ति है और विद्रोह/विरोध उसका मूल स्वर। इस अन्तःशक्ति और मूल स्वर के कारण ही गीत जन-जीवन की सांस्कृतिक मुक्ति का कामी है। गीत ने कभी अपने आंतरिक विद्रोह का ह्रास नहीं होने दिया। इस विद्रोह

ने समसामयिक प्रशासन एवं व्यवस्था तक को हिला दिया है। सामंती मानसिकता के कारण आदिकाल और भक्तिकाल में जगनिक और कबीर को भले वह स्थान नहीं मिला जो चंद और तुलसी को, पर इतने दबाव के बावजूद आज भी जगनिक और कबीर हमारे लिये प्रासंगिक हैं।

जनवादिता ने गीत को धार दी है। जनशक्ति का अपरिमित विस्तार ही गीत को गति दे सकता है। समझौते जैसे यथास्थितिवाद के लिये गीत में कोई संभावना नहीं होती। आकस्मिक नहीं है कि समसामयिकता और युगीन परिस्थितियाँ जनवादी गीतों के साथ जुड़ी हुयी हैं। इन गीतों की सोच में यह बात है कि गीत मानव-संघर्ष और मूल्यों से अलग होकर नहीं रचा जा सकता। जो गीतकार उनसे अलग होकर रचना करते हैं, निश्चय ही वे यथास्थिति के प्रति समर्पित, पलायनवादी, हताश रचनाकार हैं।

नये जन के उदय के साथ जनवादिता की प्रवृत्ति और स्वस्थ हुई थी। उसमें नये आयाम जुड़ने लगे थे। इसके पीछे नये प्रकार की क्रियाशील मानसिकता काम कर रही थी। इस मानसिकता का विरोध प्रशासन एवं प्रशासक से नहीं, व्यवस्था एवं व्यवस्था के ठेकेदारों से था। आज भी यह बहुत जरूरी है कि गीत की आंतरिक शक्ति की सुरक्षा के लिये उसके बाह्य संसार में प्रवृत्त और सक्रिय हुआ जाये। नवगीत का एक सकारात्मक पक्ष यह था कि तारसप्तक या अन्य सप्तकों ने जनभाषा का जो पक्ष लिया था, उसको नवगीत ने अन्यतम परिणति तक पहुँचाया। नवगीत की इस जनभाषी चेतना ने जनवादी गीतों में एक स्वस्थ भूमिका का निर्माण किया। यह सच है कि जनवाद का मूल्य समूह का मूल्य है, उसका क्रोध जनता का क्रोध है। ऐसी स्थिति में उसकी चुनौतियाँ भी जनता की चुनौतियाँ हैं।

आज इस अंतःपरीक्षण को भी साथ रखना है कि जनवादिता के नाम पर कोई मोहक भ्रम नहीं फैले। सामन्तों और इजारेदारों का विरोध करती हुई रचना सावधानी के अभाव में प्रतिक्रांतिकारी भी बन जा सकती है। राजनीति जब व्यवसाय बन जाये, सत्ताधारी और व्यवसायी में सीधी साँठ-गाँठ हो जाये तो युद्ध और शान्ति दोनों स्थितियों में ये शासन से जुड़ जाते हैं। भ्रष्ट व्यवस्था से जनता त्रस्त हो जाती है। जनवादी गीत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मोहभंग की स्थिति को जीते हुए जनमानस जब ऊब रहा होता है, उस समय भी जनवादी गीतकार के मन में आत्मनिर्वासन या आत्महंता आस्थाएँ नहीं आतीं।

समय की तमाम चुनौतियों और संघर्षों को अपने गीतों में रेखांकित करती हुई मैं अपनी रचनाधर्मिता में सक्रिय हूँ। संघर्षों से जूझने के लिये मेरे

गीत मेरे औजार हैं। शोषण के खूनी जबड़ों को तोड़ना जहाँ इनका लक्ष्य रहा, वहीं जनता के हिस्से की धूप, उनके उजास, उनकी हरियाली, उनके वसन्त, उनके सुख-चैन, उनके खेत-खलिहान, उनके घर-पास-पड़ोस, उनकी हंसी और उनकी बची हुई जिन्दगी को बचा लेने की अनन्य आकांक्षा भी इन गीतों में भरी हुई है।

बदलते हुए समय के साथ रचना के आस्वाद बदलते रहते हैं। किन्तु उसके आस्वाद की शर्त्त समय-सापेक्षता ही होती है। मैंने अपने गीतों में संघर्षशील श्रमजीवी जन-जीवन के सकारात्मक पहलू को उजागर किया है। मेरे गीतों में प्राकृतिक उपादान और मानवीय प्रेम अपने पूरे सांस्कृतिक परिवेश में उभरकर आये है। इन गीतों में प्रेम की संहिति श्रमशक्ति को तीव्रतर बनाने के उपकरण के रूप में हुई है। यहाँ स्त्री-पुरुष का पारस्परिक प्रेम आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्षों में प्रेरणा और शक्ति का स्रोत है।

मैंने अपना लेखन-कार्य नवगीत-यात्रा के दौरान शुरू किया था। समसामयिकता के दबाव में गीत-जगत के विकासशील परिवर्तनों को लक्षित कर मैंने अपनी रचना-दिशा का चुनाव किया है। इस तथ्य की जानकारी मेरे गीतों की अन्तर्यात्रा करके प्राप्त की जा सकती है।

मीठनपुरा, वी० सी० गली
क्लब रोड, रमना,
मुजफ्फरपुर - 842002
(बिहार)
दूरभाष : 0621-2270895

36, ऑफिसर्स फ्लैट,
जुबली रोड, नार्दर्न टाऊन,
जमशेदपुर - 831001
(झारखण्ड)
मो० : 9430917356, 9204917148

परिधि

शान्ति सुमन का 'ओ प्रतीक्षित' : आत्मदान के अभिषेक में नवगीत

❑ राजेन्द्र प्रसाद सिंह

अपनी नवगीत-कृति 'ओ प्रतीक्षित' में 'पुरोवचन के बहाने' कवयित्री शान्ति सुमन ने कुछ ध्यातव्य विचार भी प्रस्तुत किये हैं। पहले द्रष्टव्य है कि उन विचारों के यत्किंचित् प्रकाश में किस मान्यता की दिशा कितनी दूरी तक उजागर हुई है; फिर रचनाओं की परख करें। उनके अनुसार कुछ कहने की बाध्यता, अपनी रचनाओं के प्रसंग में, यही है कि युगीन जटिलताओं में 'खंडित व्यक्तित्व, टूटे कुटुम्ब एवं तन-मन के प्रकारान्तर के सन्दर्भ में आत्मस्वीकारोक्ति सम्प्रेष्य हो जाती है।' कहने की बाध्यता का कारण यदि आत्मस्वीकारोक्ति का सम्प्रेष्य हो जाना है, – तो यही कारण रचना की बाध्यता का भी होगा, शान्ति सुमन के लिए, – ऐसा लगता है। इस सम्प्रेष्य यानी आत्मस्वीकारोक्ति के केन्द्र में कैसा बोध और अनुभव है, – कुछ संकेतों से समझा जा सकता है। शान्ति सुमन के शब्दों में 'मन ही ऐसा मिला है कि अवसाद का एक घना कुहासा इर्द-गिर्द व्यापा ही रहता है', ...और –'संस्कारतः सोचना ही पड़ता है कि परेशानियाँ ही तो हमारी सहयोगिनी हैं', ...और –'सुख के क्षण क्षेपक या फुटनोट की तरह ही आते हैं', ...और फिर भी 'आवश्यकता है, अपने आप में दुर्दमनीय जिजीविषा को जाग्रत कर उसे अपराजेय बना देने की। एकान्त निजता का मोह वहन कर भी सदैव ही हुआ कि निजी दुखदर्द को भीतर दफन कर पुलक के गीत ही गाई, पर बर्फ के ओठों पर एक रक्त रेखा की तरह नैराश्य का भाव मुखर ही रहा।' –कवयित्री के ये संकेतक शब्द उसके सम्प्रेषणीय आत्म-स्वीकार का मूलभूत द्रव्य उपस्थित कर देते हैं – मनोजात अवसाद और परेशानियों से समझौता कर, किंचित् सुखानुभूति से भी जिजीविषा की अदम्यता के लिए, निजी दुख-दर्द का पुलकान्तर। सवाल उठता है कि प्रस्तुत नवगीतों में क्या इसी मूलभूत द्रव्य की ध्वनि मिलती है ? शायद इतने की ही नहीं, पूरे मनःसंघर्ष को, जो कवयित्री के शब्दों में उसके – 'जीवन का सच है' और उसके 'गीतों का भी सच बनते-बनते, जानें, क्या हो गया है।' –तो क्या हो गया है, यह जानना होगा। जीवन का सच, –गीतों का सच बनते-बनते क्या हो जाता है या फिर क्या रह जाता है– अव्यक्त सच का सम्प्रेषित और असम्प्रेष्य भाग ? हाँ, जो हो जाता है, उस पर फिर कभी बातें हों, अभी यह देखा जाए कि प्रस्तुत गीतों में जीवन का सच क्या हो गया है ? जाहिर है, जीवन का सच आधुनिक बोध की चौहद्दी में उपस्थित है, इसीलिए शान्ति सुमन के शब्दों में – 'मध्यवर्गीय भाव-चेतनाओं का उतार-चढ़ाव', ...धरती की बातों से धरती की गंध' ...न केवल मध्यवर्गीय ऊब, कुंठा,

घुटन, पीड़न, विवशता एवं शैथिल्य है अपितु हृदय और बुद्धि का असामंजस्य, व्यवहार एवं आदर्श का वैषम्य एवं टुकड़े-टुकड़े होकर बँटे व्यक्ति के बाहरी दबाव भी' – वे तत्त्व हैं, जो जीवन के सच से कहीं संयुक्त, कहीं कटे हुए, कहीं स्थानान्तरित, कहीं बहुगुणित, कहीं सविकल्प गृहीत और सर्वत्र सापेक्ष हो रहे हैं। **जब तक जीवन का सच इन पारिवेशिक तत्वों के केन्द्रण और बलाघात से संश्लिष्ट और अटूट नहीं हो जाता, तब तक उसकी अवस्था और अभिव्यक्ति में एक प्रकार का बिखराव रहता है, जिसे कवयित्री ने – 'आधुनिक युग की ही एक स्थिति' माना है, संभवतः विघटन के अर्थ में, या डिस्टार्शन के अभिप्राय से, किन्तु बिखराव जीवन के और गीतों के उपस्थापित सच में ही सहज ही उतर आया है, –समय, बोध, स्वभाव और परिवेश की मध्यवर्गीय ग्रहणशीलता के द्वारा, –यही हुआ है।** प्रस्तुत गीतों में जो कुछ असम्प्रेष्य रह गया है, उसकी ध्वनि कहीं नहीं है, जो सम्प्रेषित है, उसमें अव्यक्त सच का सर्वाधिक उत्तेजक भाग वय और बोध के सीमानुपात में बड़ी प्रभावशालिता से प्रकट किया गया है।

'ओ प्रतीक्षित' का पहला गीत शायद इसीलिए पहला है कि जीवन के पिछले अनुभवों का सम्मिलित प्रभाव जो बदल गया है, –इस गीत में पूर्व-सूचना से ज्ञात होता है, –'अब चाँदनी टटकी नहीं लगती, सब कुछ वैसी ही, वैसी नहीं लगती' –तभी मैं कृतित्व की दृष्टि से दूसरे गीत को ही पहला मानकर चलूँगा। भारतीय परिवेश की आधुनिकता आकांक्षाओं में ही अधिक रहती है, फिर मध्यवर्गीय जीवन में युक्ति-संगति और विवशता का एक और 'किन्तु' लगा ही रहता है, –'डबके स्याही-सा अन्धकार-बुद्धिजीवी, मसिजीवी परिवार के घरों में है, जिसमें 'उदास चेहरे धँसे' हैं और 'मायूसी के आलम पर खुशियों का ही प्रचार' –मात्र होता है, जिसमें जिया हुआ वैयक्तिक यथार्थ सामाजिक यथार्थ के साथ दीर्घव्यापी तनाव में सक्रिय है। जहाँ आत्मदान के प्रथम अभिषेक का – 'एक बादल बरसता रहा और धुलती गई वासना' –सहज फल है, –वहीं पहले वसन्त की मिठास भी नयी सद्यस्कता लिये, स्वभाव में लौट आती है। होड़ करता हुआ, अपनी सीमाओं का बोध भी लौट आता है – 'मुट्ठी भर रेत-सी रिसती इच्छाएँ-एक बँध जाता कितने क्रम तोड़' –और आहत सन्तोष एक विराम बन जाता है, –'वह भी होना था, –यह भी होना है।' सम्बन्धों के प्रतिनिधि, जो संस्कार के भागीदार बनकर बड़े दावे करते हैं, वे तमाशबीन के अलावा कुछ साबित नहीं होते, जिनमें नितान्त व्यावसायिकता भरी होती है – इस कटुता का भोगी कोई भी समव्यथी इस अतीत भोग की मनस्थिति में आ जाता है –'तभी कितने जी गए सुख, दुख गए होंगे।' –फिर भी 'राह जहाँ तक संग जायेगी, होंगे नहीं विमन' –कहकर दिल को सँभालना पड़ता ही है। तब

वह बार-बार सोचता है – ऊब, कुंठा, परायापन, –सभी से दरकिनार हो –'छोड़ो घने तनाव, उलझनें भी रिस जाएँ, – क्या कर डालूँ तुम्हें कि जी हलका हो जाए।' 'क्या करे कोई वैसे सन्दर्भजीवी क्षणों में अपने समव्यथी का', –जब 'बर्फ के ओठों पर रक्त उतर आया है' और 'भूले सम्बन्धों का सूत्र निखर आया है।' वहीं जिजीविषा के लिए आत्मदान का दूसरा अभिषेक फलीभूत होता है।

आत्मदान का दूसरा अभिषेक : एक दृश्य; एक उपक्रम, एक मनोमिश्रण की कलात्मक सुरुचि और सम्बन्ध-लीला का गहरा अन्तर्वाह्यव्यापी यथार्थ है, जो उस संवेगात्मक और फिरं भी संवेद्य आवर्त्त में जिया गया है, जिसमें 'जूड़े को खोल रहा चाँद', 'जेठ बहुत कम लगता, माघ बहुत तेज', 'दर्द मेरे, दर्द तेरे ओढ़े मौसम दुहरा', 'गंध भटकाती रही हर द्वार, सारी रात, सारी रात, स्वयं मन की तृप्तिओं के लिए', 'आँखों में आंजली थोड़ी गलतफहमी, खूबसूरत भूलों के जीने में क्या कमी', 'बँधे हुए आँचल में साँसों के शोर, क्षमा कैसे बाँधू', 'नामहीन पत्थर को तोड़ दिया, किसी स्वीकृत क्षण ने तुमको मुझसे जोड़ दिया' और 'कुछ देर यों ही आस-पास हो लें, मन है, आकाश हो लें' –वैसी अभिव्यक्तियाँ जुड़ी हुई हैं, जिनका आस्वादन कोई स्मृति के माध्यम से, कोई प्रत्याभिज्ञान से और कोई परिकल्पना से कर सकता है। आत्मदान के इस दूसरे अभिषेक से वैयक्तिक यथार्थ का बोध परिवेश से बहुत कुछ कट गया है, जो स्वाभाविक है किन्तु इसका दूसरा पक्ष भी स्वाभाविक है कि पारिवेशिक बोध आत्मप्रसंग के पूरक की तरह अलग से तीव्र हो उठा है, क्योंकि ग्रहणशीलता जब संवेगात्मक और संवेद्य अनुभवों से सतेज और सशक्त हो जाती है, तब एक प्रकरण का अन्त ही दूसरे प्रकरण का आरम्भ हो जाता है, भले ही प्रतिकूलता या विपर्यय हो या स्वानुभूति के बाद नगर-बोध की दिशा हो। वही हुआ है, पृष्ठ 39 से पृष्ठ 54 तक प्रस्तुत सारे गीत अपनी वस्तु या निधि में, प्रेरणा या भोग में, प्रतिक्रिया या प्रतिन्यास में नगर-बोध से जुड़े हैं। इन गीतों को नगर-बोध ने क्या दिया है ? देखें-संगदिली के संबंधों से प्रतीकित यह पत्थरों का शहर है, जहाँ 'धुएं के छल्लों-सा जीना नाकाम' लगता है, व्यावसायिक दृष्टि ऐसी है कि 'चाय पिला जोड़ें सब चीनी के दाम।' हम सामूहिक व्यवस्था के जिस नियंत्रित जुलूस में चले जा रहे हैं उसमें ऐसी आत्मवंचना है कि 'दबा-दबा मन का विद्रोह', 'इधर-इधर से लेकर घूस' और एकान्त में लगता है –'आंखों में चूर-चूर एक शीशा, बदनसीब का और क्या किस्सा' दरअसल मन ने भी शहरी जीवन में व्यक्तित्व पर 'कुछ भूखी बहस, जुलूस सतही, चर्चाओं के टाँके-सिले पहर मनहूस' ही प्रक्षेपित किये। इस आंतरिक प्रक्षेप की त्रासदी के सहज फलाफलों में अकेलापन, बासीपन, बोझिलपन, अजनबीपन, परायापन, सूनापन-यानी बचपन की संकुलता के कन्ट्रास्ट में कितने ही खालीपन के विवर्त

मिलते हैं। आत्मवंचना की दूसरी स्थिति है – 'जितना धोया कुंठाओं का तन, खला उतना ही नया बासीपन।' तभी एक उमस भरा प्रश्न उठा है – 'कहाँ छोड़ दूँ खाली मन का विद्रोह' – **इस समूचे प्रक्षेप की एक अपूर्व बिम्बात्मक अभिव्यक्ति हुई है – 'बदहवास भाग रहीं इच्छाएँ, धूल-भरे आँखों के ताल, नीचे पथरायी ढेर-सी मछलियाँ, ऊपर खिंचे मेहराबी जाल।' ऐसी ही अभिव्यक्तियाँ रचना प्रक्रिया के सुपरिचित फल-सी नवगीत की शक्ति बढ़ा सकती हैं।** नगर-बोध के ही मध्यवर्गीय संदर्भ में –'वही नम बरसात, खुशफहमी के आसार, फटी कमीज पर आलपिन' का चित्र और भी मार्मिक हो उठता है, जब दुहरे-तिहरे यथार्थ की तहें उभरती हैं – 'नकली चेहरों को जीती सड़कें, कर्जों के सूरज उग आते तड़के, वही निर्मम घात, उतरती-चढ़ती जिम्मेवारी, बेकार मक्खियों की भिन-भिन।' नगर-बोध के इसी भावात्मक विराम पर फिर जिजीविषा की पुकार जगती-सी लगती है और उसके पहले, उसकी भूमिका में ही एक वैयक्तिक सामूहिक समाहार को आगे बढ़ानेवाला निष्कर्ष आता है –'माँगा जब मैंने यथार्थ देने को था तब आदर्श, –परिवेशों में घिरे हम तुम-खोजो, जो मिल जाए हर्ष।' तभी हर्ष की सापेक्ष और फिर भी नयी खोज की भूमिका शुरू होती है अनजाने, अनचाहे, अनियोजित। जिजीविषा पिछली मंजिलों के प्रतीक पुरुष को सम्बोधित कर कहने लगी – 'एक विराट् हिमालय रखकर, पीड़ा के सब आवेगों पर कभी न लेकर नाम तुम्हारा – मैं जी लूंगी।' जीने और जीते रहने की इस कठकरेज निष्ठा को अनुभूति-पिपासा के अभाव में परवान चढ़ाना नामुमकिन है। वह पिपासा सुदीर्घ और पूर्वागत स्मृति-रेखा की वेदनामयी खुराक के विपरीत 'एक सहज जीवन जी लेने का क्षण भर' की लालसा पूरी होने से भी यदि बुझ नहीं सकती तो जीवित रह सकती है, क्योंकि जाहिर है – 'रेंगता दिन, ऊँघती, शाम, भागती इच्छाएँ बेकाम, – यों जीने से क्या फायदा ? फिर सामूहिक यथार्थ और उसका व्यक्तिगत प्रक्षेप नगर-बोध के संदर्भ से छनकर वैयक्तिक यथार्थ में घिरी जिजीविषा को प्राणवान करने की दिशा में पर्यवसित होता है और आत्मदान के तीसरे अभिषेक की चरितार्थता व्यक्त होने लगती है।

आत्मदान का तीसरा अभिषेक : शरीर, मन, संबंध, परिवेश और मूल्य-धारणा का विशिष्ट संश्लेष है जिसमें 'ओ प्रतीक्षित' की चिरागत प्रतीक्षा उपलब्धि के इस नये रहस्य से गुजर चुकी है कि वह होती नहीं, की जाती है, – निष्ठापूर्ण आरोप के द्वारा भी, तभी प्रतीक्षा सीधी राह से कटकर सवाल करती है – 'वादे कल-परसों के रूठे रहे सारी रात, पिया कहाँ बँधे तुम रहे ?' इस विशिष्ट संश्लेष में प्रतिक्रियाओं के स्थान पर प्रभावात्मक बिम्ब भरे हैं – 'पीना इस जहर का-भारी पग उठते कहारों के, सांझ-सुबह-दोपहर, हर वक्त अपना

ही चेहरा अनजाना क्या ?' स्वीकार के तात्पर्य से – 'जाते-जाते एक बार फिर लिख दूँ – हरी स्याही में तुम्हारा नाम' या – 'खिल-खुला कचनारी मन, दहके अनारों की बेल, साड़ी की बैगनी सलवटें आंखों की प्यास रही झेल' – या 'गरम हथेली औ' भींगे तलुबे, ऐसे ही जी उकताये से पिया चुटकी न काटो' – या फिर – 'भरेपन का जभी होता अहसास, लगता – तभी कुछ चूक गया, कुछ घटा' – इत्यादि सन्निविशिष्ट अभिव्यक्तियाँ स्वप्नाभ से विपरीत स्पष्टतः घटित हैं और जिजीविषा इनके प्रक्रम से सुपुष्ट हुई है, इसका प्रमाण भी मिलता है। यह प्रमाण है जिजीविषा के प्रति आसंग-भरी निष्ठा का आत्मनिष्ठा में रूपान्तर। पृष्ठ-77 से पृष्ठ-104 तक प्रस्तुत सारे गीतों में प्रवृत्तियों और निमित्तों के भेद से विविध स्पर्शों में कवयित्री की आत्मनिष्ठा का अभिव्यंजन हुआ है। 'राह अपनी ही चलें हम, ठहरने का क्या सवाल ?' –यह अपने कदमों पर भरोसा, उस प्रौढ़ि की देन है, जिसके आश्वस्तकारी प्रभाव से प्रकट होता है – 'पीड़ा का क्या न यह नया अर्थ, –कुंठित गौतम का बनना सिद्धार्थ ?' –और मनोदैहिक सम्बन्धों तथा आसंगों की आधुनिक और शहरू असंगति – 'तन किसी का, मन किसी का' के तात्त्विक अन्तराल में भी समय-बोध महत्वपूर्ण सम्बल बन जाता है – 'समय मेरे द्वार पर ऐसे रुका, --ज्वार पर कोई किरण का फूल।' तभी एक दैनंदिन समतोल का संकेत मिलता है – 'बाँटकर भोगें हम, बाँटकर सहें' – और व्यक्तित्व की परिधि भी पूरी हो जाती है आत्मस्वीकार में 'ग्रहों ने भटकाकर छोड़ दिए, मोह-दंश से भर गया वर्तमान। क्षण-क्षण जनम लेती दुविधाएँ, दृष्टि खोजती कहाँ आक्षेपों का समाधान ? संबंधों के नए-नए अर्थों को क्यों खोजूँ, सहजता न बँधेगी और क्षण की तरह।' शायद इसी मनोलब्धि का समर्थन पुरोवचन के बहाने किया गया है – 'यह आज की जीवन-व्यवस्था का दोष है कि आज आदमी समस्याओं से बचकर जीना चाहता है। वह अधिकाधिक सुविधाओं का भोग करना चाहता है। मैं शान्ति सुमन से सहमत हूँ – कि 'नवगीत आज एक विवशता के रूप में फूट रहा है जो नितान्त आन्तरिक एवं निजी है।' अस्तु।

●

'ओ प्रतीक्षित' : एहसास की सच्चाई

❑ डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

आज की जिन्दगी की तमाम उपलब्धियों और विसंगतियों के साथ नवगीत ने संवेदनशीलता को भी अपने साथ सँजोकर रखा है। नवगीतकार की संवेदना को किसी क्षण की तल्ख हकीकत कुरेद जाती है और कभी वह अपनी संवेदना के सहारे ही समकालीन जिन्दगी के किसी एक आयाम का लेखा-जोखा करने लगता है। इसलिए नवगीत में जीवन की जटिलताओं और उलझी हुई मनस्थितियों के साथ मुक्त क्षण का आभोग भी जब-तब झलमलाने लगता है। उसकी मनोदशा ऐसे व्यक्ति की होती है जो जार में तैरती हुई रंगीन मछलियों के सौन्दर्य का भोक्ता होकर भी चारों ओर के घुटन भरे माहौल की तीक्ष्णता का भी अहसास निरन्तर कर रहा है। इसलिए नवगीतकार अन्यों की अपेक्षा अधिक ईमानदार है। वह जिन्दगी के प्रत्येक क्षण के आमने-सामने है। वहाँ अपनी जिन्दगी और अपनी जुबान है, लेकिन इतनी कोमल कि हल्की सी खरोंच लगने पर भी तिलमिला उठे।

'ओ प्रतीक्षित' ऐसा संग्रह है जो नवगीत के अनुभूत्यात्मक संदर्भ को पूर्ण विश्वसनीयता के साथ फैलाता है। इसमें समकालीन मध्यवर्ग की रिक्तता, तनाव, अकेलापन, बेपनाही, खीझ, उदासी, थकान, तिलमिलाहट, बेचैनी, बदहवासी, टूटन, बिखराव और निरुपाय विद्रोह के साथ उल्लास, उन्मुक्तता तथा रोमानियत के दायरे में सिमट जानेवाला क्षण का मुक्त आभोग भी है। शान्ति सुमन के ये गीत केवल नवइयत की तलाश के लिए ही नहीं लिखे गये हैं, बल्कि ये मध्यवर्ग की समकालीन जिन्दगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज हैं। नयी कविता में जिन्दगी की बेचैनी बड़ी तल्खी से उभरती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि परखनली की इयत्ता उफनते हुए रासायनिक द्रव को संभाल नहीं पाती और काँपते हाथों से छूट कर द्रव समेत परखनली ही फर्श पर गिर कर चकनाचूर हो जाती है और एक तीखी गंध हवा में टंग जाती है। लेकिन नवगीत को अभी ऐसे खतरे से गुजरना नहीं पड़ा है। अर्से से गीत की संरचना का केन्द्रबिन्दु कोई संवेदना होती चली आई है और नवगीत ने भी इस धरोहर के संजोकर रखा है। इसलिए नवगीत में समसामयिक जीवन की विश्वसनीयता अपने संपूर्ण परिवेश में दिखाई पड़ती है। नई कविता में कई क्षणों के अलग-अलग बिम्ब अथवा मनस्थितियाँ बया के घोंसले की तरह अलग-अलग लटकी दिखाई पड़ेंगी, किन्तु नवगीत किसी एक ही क्षण की मनस्थिति से बँधा रहता है। उसमें एक संपूर्ण बिम्ब इसलिए आकार ग्रहण करता है कि क्षण विशेष के संवेग की

संश्लिष्टता ही रीढ़ हुआ करती है। उसमें प्रभावान्विति भी इसलिए तीव्र होती है। वह किसी एक बिन्दु को ही उसकी समग्रता के साथ पकड़ता है। इस तरह नवगीत का रूप-गठन लगभग वही है जो एक बहुत अच्छे गीत का शिल्प करता है। थोड़ा सा फर्क लयात्मक संधान में अवश्य आया है। लेकिन तबदीली का अधिक अहसास उसके कथ्य को देखने से होता है।

शान्ति सुमन के 'ओ प्रतीक्षित' को पढ़ने के बाद नवगीत का वह पक्ष उभरता है जो नयी संवेदनाओं को बतौर हिस्सेदारी के इस तरह लय-बद्ध करता है कि वह व्यापक मानव-बोध का साफ-सुथरा आईना बन सके। दो प्राणियों के बीच 'दूरी को पाटने वाली' आदिम संवेदना के कुछ ऐसे भी गीत इस संग्रह में हैं, जिन्हें देखकर नवगीत के बारे में एक विशेष प्रकार की धारणा रखने वालों को तिलमिलाहट हो सकती है। इन लोगों को नवइयत के टेम्परेचर में 'मुक्त क्षण का आभोग' असहनीय प्रतीत होने लगता है। वे भूल जाते हैं कि अपने परिवेश के दबाव में जकड़कर भी कुछ व्यक्तित्व इसलिए नहीं चिटक पाते कि मानव का मूल-स्वर उनके रंध्रों में बाँसुरी सा गूंजता रहता है। शांति सुमन ने आज की जिन्दगी के बाहरी दबाव और अन्दरूनी उलझनों की घेरेबन्दी से जब-तब अपने को मुक्त पाया है। जीवन के प्रति उनका जितना भी है, बहुत साफ और सुलझा हुआ विचार है।

शान्ति सुमन के गीतों में भावात्मकता बराबर अनाहत रूप से विद्यमान मिलती है, किन्तु उनकी भावुकता में एक ओर निर्बाध मुक्तावस्था है तो दूसरी ओर पीड़ा और घुटन। वे प्रतिदिन के दबावों से मिले हुए दर्द को यथार्थ की सतह पर झेलती हैं, किन्तु लय संधान में भावात्मकता सघन हो जाती है। पुराना गीतकार किसी भावुक क्षण को पकड़कर अपनी पूरी भावात्मकता के साथ गीत की रचना किया करता था। गीत-विद्ध क्षण में यथार्थ से वह कोसों दूर रहा करता था। **असीम भावुकता और तदनुकूल अबाध कल्पना गीत की शर्त हुआ करती थी, किन्तु नवगीतकार अपने गीतों को जीवन की कड़ुई और मीठी सच्चाईयों का हिस्सेदार साबित करता है। इस तरह सही माने में 'ओ प्रतीक्षित' के गीत जिन्दगी से हिस्सेदारी के गीत हैं।** वस्तुतः जिन्दगी की सही माने में हिस्सेदारी रचनात्मक धरातल पर करते समय कभी बड़बोलेपन का खतरा रहता है और कभी सिद्धान्तीकरण का। नयी कविता में ये दोनों खतरे अपनी कारगुजारी दिखाते हुए आईने से साफ नजर आते हैं। शान्ति सुमन के इन गीतों में या तो यथार्थ के फलक पर संवेदना का चटकीला रंग उभरता है अथवा संवेदनशील क्षणों में यथार्थ चुभ गया है, इसलिए बड़बोलेपन की गुंजाइश नहीं है। इसी तरह संवेदनीयता सिद्धान्त-सृजन के लिये अवकाश नहीं देती। जहाँ कुंठित सिद्धार्थ

की फलश्रुति बुद्ध में होती है, कुंठा के ऐसे रचनात्मक पक्ष को सामने रखते समय भी सिद्धान्तीकरण का खतरा बड़े ढंग से बचा लिया जाता है –

पीड़ा का क्या न यह नया अर्थ,
कुंठित गौतम का बनना सिद्धार्थ

शहरों का मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी तनाव और बेपनाही में जी रहा है। संत्रास, विज्ञापन, भीड़ और अर्थ-शून्य आकर्षण के बीच जीनेवाले शहरी व्यक्ति के लिये पल भर की इनकी अनुपस्थिति अच्छी लगने लगती है :

अस्थिर मन सुनता जब अच्छी खबर,
थोड़ा सा रुचने लगता है शहर

इस समूचे गीत का रूप-गठन इतना सजग होकर किया गया है कि प्रभावान्विति काफी सघन हो जाती है। अच्छी खबर सुनकर शहर का अच्छा लगना, जैसे शीर्षक है। इसके बाद आगे टेक के रूप में दो-दो पंक्तियों में विज्ञापन, भीड़, सूनापन और मृगतृष्णा की बात कही गई है। तीनों क्रमशः प्रदर्शन, व्यक्तित्व-शून्यता और भटकाव के संकेतक हैं। क्रमशः तीव्रता प्रकट की गई है। पहली का परिणाम दूसरी और दूसरी का परिणाम तीसरी अवस्था कही जा सकती है। शहरी आदमी रिक्त होकर केवल प्रदर्शनजीवी बना अपनी निजता को खोकर भीड़ बन गया है। उसकी उपलब्धि के आगे निरुद्देश्य भटकाव है। उसे यह भी नहीं पता कि किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वह तपन में दौड़ रहा है। गीत में चार-चार पंक्तियों के तीन टुकड़े हैं। पहली में बेपर्द, निरुद्देश्य, भटकी दृष्टि द्वारा पूर्ण मर्यादित गाँव को निगल जाना, दूसरे में कमल-वन का सितुही पोखर बनकर देखते ही देखते सबेरे का उड़ जाना और तीसरे में सारी की सारी स्थितियों का विषम होना क्रमशः व्यक्त है। इनका व्यंग्यार्थ सहज मर्यादित जीवन की समाप्ति, सौन्दर्य के प्रतिमान के टूटने से भविष्य का अवरोध तथा निरन्तर की पीड़ा और कुंठा से जीवन की समग्रता की दुर्वह स्थिति है। दूसरे टुकड़े की इन पंक्तियों में चरमोत्कर्ष है :

अपना कमल-वन बना सितुही पोखर,
उजड़ गया देखते ही देखते सबेर

इन पंक्तियों के पहले बिजली के द्वारा तेल के दिये को सोखना और मुंडेरों द्वारा छाजन का उड़ाया जाना आया है। बिजली वैज्ञानिक या यों कहें कि यांत्रिक जीवन और तेल का दिया तरल, पारम्परिक और सहज जीवन का प्रतीक है। फूस की छाजन प्रकृति के साहचर्य और जीवन की अकृत्रिमता तथा मुंडेर बनावटी और कठोर ऊँचाइयों का संकेत है। इस सांकेतिकता के बाद आई हुई अपर की पंक्तियाँ – 'अपना कमल-वन' गीत की संवेदना को चरम बिन्दु

तक पहुँचा देती है। कमल वन की सितुही पोखर में तब्दीली और सुबह के उजड़ जाने के बाद निजता, चेतना और संरचना-विहीन भीड़ की जिन्दगी ही नियति बन जाती है। चूंकि केवल तीन खंडों में विभक्त करके अपनी अनुभूति को संक्षेप में कहना है, इसलिए गीतकार ने बंद की प्रायः प्रत्येक पंक्ति में प्रतीकों को संजोया है – कच्ची टेढ़ी पगडंडी, कमल-वन, सितुही पोखर, सबेर, धूप और धुआँ। ये एक ओर परिवेश के घटक हैं और दूसरी तरफ इनमें व्यंग्यार्थ भी है। शान्ति सुमन के शिल्प की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि वे प्रस्तुत के चयन में ही संकेत गर्भित कर देती हैं। ऊपर से देखने पर एक बिम्ब उभरता है, लेकिन जरा सा संकेत पकड़िये कि एक अन्य बिम्ब भी उससे लिपटा हुआ खुलने लगेगा :

सहजन की डाल टंगा सूख रहा जाल,
ऐसे में बतियाना करता बेहाल

सरसरी निगाह से देखने पर पतझर के मौसम में सहजन की नंगी बाँहों में टंगा जाल और उदास वातावरण की बेचैनी का अहसास होता है, किन्तु इसके बाद अप्रस्तुत 'गिरे-गिरे केशों सी पत्तों की छाँह' से बरबस पहले की पंक्तियों में लिपटा एक और बिम्ब-हाथों में उलझा हुआ सूखता बाल-खुल जाता है। अब सेमल और जाल की अर्थवत्ता सघन हो जाती है। इसी तरह आगे बाँसों की फुनगी पर धूप का बैठना, बादल द्वारा कोहबर का पान खाना और गोखरू चुभाना भी नया अर्थ देता है। बाँसों की फुनगी पर धूप की उपस्थिति दिखाने के बाद ही बादलों को कोहबर का पान खाते हुए कहा गया है। सतही तौर से देखें तो असंगति और जरा गौर कीजिए तो आसमान के एक कोना में धूप के कारण चमकदार कोरवाला बादल का टुकड़ा तैरता हुआ दिखाई पड़ेगा। इस तरह चाहे किसी अनुभूति की सघनता अथवा बिम्ब की तीक्ष्णता को व्यंजित करना हो, शान्ति सुमन उसकी समग्र और संक्षिप्त अभिव्यक्ति करती हैं और इसी से उनके गीतों में संस्पर्शिता अधिक होती है।

'ओ प्रतीक्षित' में दो प्रकार की संवेदनाएँ हैं – एक तो युग की और दूसरे व्यक्ति की। यहाँ व्यक्ति की निजी विवशता और पीड़ा ही युग की अनुभूति बन गई है। युग के दर्द को झेलते हुए असलियत को पूरी विश्वसनीयता के साथ कहने पर समकालीन जिन्दगी की संवेदना के लिए भटकना नहीं पड़ता। **शांति सुमन जी ने समसामयिकता की असलियत को बिना नमक-मिर्च लगाये कहा है, इसलिये सही माने में वे युग की पीड़ा को पहचानकर कह सकीं हैं। यहाँ उनका निजी अहसास समाज की समकालीन जिन्दगी का दस्तावेज बन गया है।** 'ओ प्रतीक्षित' में जिसे मैं व्यक्ति की संवेदना कहता हूँ, वह भी दो प्रकार की है – एक तो मुक्त क्षण का आभोग यानी 'आदिम

रस गंधो' के बीच हम मुक्त होकर तैरने लगते हैं और दूसरी वे मनस्थितियाँ जो मध्यवर्ग की शहरी घातें झेलती हैं। शांति सुमन जी नारी हैं, इसलिए उनकी संवेदना अन्य नवगीतकारों की अपेक्षा अधिक तरल है। किन्तु वे पुराने गीतकारों के समान भावुकता के बेग में बहती नहीं, धीरे-धीरे लहरें केवल पाँव पखारती हैं।

शहरी जीवन पर इधर काफी लिखा गया और उसका एक सधा मुहावरा भी बन गया है। इसलिए जब नवगीतकार बंद, घेराव, प्रदर्शन और फाइलों से रूँधी हुई जिन्दगी की बात करने लगता है तो विश्वसनीयता का प्रश्न उठ खड़ा होता है। भीड़ और कोलाहल से अभी तक दूर रहने वाली व्यक्ति-निष्ठ गीत-विधा भीड़ और कोलाहल की असलियत को कहाँ तक व्यक्त कर पायेगी, यह सवाल गीतकार की काव्य-क्षमता से जुड़ा हुआ है। एक जन-समूह का संत्रास या बिखराव भी गीत का विषय बन सकता है, किन्तु गीतकार को काफी संवेदनशील होकर संकेत-चिह्नों के माध्यम से भीड़ के अहसास को कहना होगा। वह स्वयं एक इकाई बनकर भी पूरी भीड़ के मनोविज्ञान को निर्वैयक्तिक होकर ताटस्थ्यपूर्वक कह सकता है। 'कृत्रिम समझौते मे बीत रहे दिन' आज की उखड़ी जिन्दगी की सही तस्वीर पेश करता है। सुबह-शाम, तन-मन और वादे-इरादे के क्रमशः बन्दी होने खपने-कँपने, बिखरने-बदलने की बात जैसे एक समग्र प्रभाव का कथन है और उसके बाद गीतकार व्यौरे में जाता है। इसी तरह इस गीत के चार टुकड़े में से प्रत्येक का प्रभाव एक समान है। इसमें चरम बिन्दु किसी एक खास टुकड़े के हिस्से में नहीं है। इन टुकड़ों में क्रमशः दिन की निरर्थकता, फीकेपन, अधूरेपन, उदासी की चर्चा है। सब मिलाकर दिन भर की उदासी और अर्थशून्यता की प्रभावान्विति पूरे गीत के माध्यम से सँजोई गई है। दिन की रिक्तता के साथ बोझिल सुबह-शाम, शरीर और मन पर उनके प्रभाव और उसके कारण संवेगों की तब्दीली को भी सामने लाकर एक स्थिति को उसके वाह्य और आन्तरिक स्वरूप की समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है। गीत की यह दूसरी तकनीक है कि चरम बिन्दु किसी टुकड़े में न संजोकर पूरे गीत से प्रभावान्विति को एकोन्मुख किया जाय। इसमें आये हुए उपमान भी अधिकतर प्रस्तुत संदर्भ से ही चुने गये हैं – खाली मेजों सा, अधभरे खातों सा, सूने चौराहे से, टूटी प्याली सा तथा झड़े-झड़े पातों सा। उखड़े आलक्तक को भी प्रस्तुत से ही संदर्भित किया जा सकता है। अब सिर्फ झुकी-झुकी टहनी और उड़े-उड़े पात विशुद्ध अप्रस्तुत ठहरते हैं जो क्रमशः समझौते और उद्भ्रान्ति के संकेतक हैं। उनका उपयोग शुरूआत की पंक्तियों में पृष्ठभूमि के रूप में हुआ है। कुछ दूर से माहौल को देखनेवाला जैसे दूर से उपमान लाकर किसी स्थिति को प्रकट कर रहा हो और उसके बाद तो जैसे वह सह-भोक्ता बन जाता है।

चूंकि दिन का खाली और उदास माहौल पूरी समग्रता के साथ प्रतिबिम्बित हो रहा है, इसलिए अनुभूति नितान्त विश्वसनीय है। गीतकार ने बतौर हिस्सेदारी के रचनात्मक स्तर पर भी आज की जिन्दगी के यथार्थ को झेला है। आज का हर आदमी जुलूस का एक हिस्सा बन गया है, उसकी चाल खुद की नहीं बल्कि पीछे से एक रेला आया है और वह आगे चलने के लिए मजबूर है। यह उसकी चाल नहीं, मजबूरी है। आदमी विरोधात्मक स्थिति में जी रहा है। एक ओर वह ऊब से भरी हुई भीड़ की जिन्दगी बसर कर रहा है, उसका कोई निजी एहसास नहीं और दूसरी ओर वह खण्ड-खण्ड में बंट कर जी रहा है :

भीड़ों की जिन्दगी साथ लिये ऊब
नंगी खामोशी में चैन गई डूब,
ताख पर धरे पड़े सारे एहसास
खंड-खंड में बँटे आदमी भी खूब

लेकिन इसके बाद आया हुआ मुहावरा 'अपने ही कंधे पर अपनी लाश लेकर चलना' अत्यधिक घिस जाने के कारण अर्थ-शून्य हो गया है। यह तो ठीक वैसे ही है जैसे उर्दू शायरों का अपनी हड्डी से अपनी ही कब्र खोदना। ऐसे भाषाई प्रयोगों से ही अनुभूति की सत्यता नहीं जाहिर होती। भाषाई अविश्वसनीयता संवेदना की अविश्वसनीयता उधेड़ कर सामने रख देती है।

नवगीतकारों में अधिकांश सारी कुन्ठाओं और संत्रास के बावजूद जीवन के प्रति आस्थावान हैं। शांति सुमन जी ने तो कुन्ठाओं को जीवन के वृहत्तर आयाम की उद्घाटिका तक सिद्ध करना चाहा है। इसलिए सारी रिक्तता, ऊब और थकान के बावजूद वे सिर्फ अपने से ही हमेशा जूझने में विश्वास नहीं करतीं। ग्रंथि को खोलकर एक दूसरे से हिलना-मिलना यानी बाँट कर भोगना आदमी और आदमी के बीच सेतु का काम करता है। अन्दर की गांठों ने सेतुओं को खंडित कर दिया है और इनकी पुनर्रचना किसी अच्छे इंसान की सबसे बड़ी स्पृहा हो सकती है।

अपने से कब तक यों जूझते रहें,
बाँट कर भोगें हम बाँट कर सहें
तुम्हारी सुनें, कुछ अपनी कहें

शान्ति सुमन ने मुक्त क्षणों के आभोग की जो बात जहाँ-तहाँ कही है, उस पर बहस की काफी गुंजाइश है। नवगीत के कुछ पक्षधर मुक्त-क्षण की इन बातों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। उनके अनुसार यह रोमानियत है, लेकिन मेरा ख्याल यह है कि यहाँ बहस का मुद्दा अनुभूति की विश्वसनीयता होनी चाहिए। प्रेम एक ऐसा प्रसंग है, जिसके बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं।

हर इंसान में यह किसी न किसी रूप में बराबर रहता है। समय की तब्दीली से इसका स्वरूप बदल सकता है, किन्तु मूल अनुभूति समाप्त नहीं हो सकती है। प्रेम रोमानियत के रूप में हो सकता है और जीवन के अपरिहार्य सन्दर्भ के रूप में भी। नवगीत से मुक्त क्षण के इस व्यापार को काट देने पर नवगीत की अनुभूत्यात्मक विश्वसनीयता संदेहास्पद हो जायेगी। हिन्दी कविता में तो आधुनिक काल में पहली बार किसी नारी के द्वारा मुक्त क्षणों का बेबाक सम्प्रेषण हुआ है। उनमें नारी होने के नाते थोड़ी सी भावुकता शेष है, किन्तु प्रणय-व्यापार के दौरान रोमांच, तन्मयता, व्याकुलता, आभोग आदि को वे बड़ी खूबसूरती से सांकेतिक भाषा में कह जाती है :

तन धीरे हुआ कास-वन,
मन सूरजमुखी बन गया।
छवि खिंची दरपनी वक्ष पर,
एक तूफान थमने लगा।
गंध महकी जुही-जंगलों सी,
एक पिघलाव जमने लगा

छायावादोत्तर प्रेमगीतकारों की लिजलिजी भावुकता और इस गीत की संवेदना में यह फर्क है कि इसमें जीवन की सच्चाई है और वहाँ प्रायः कल्पना टंगी अनुभूति की अविश्सनीयता ही फरफराती रहती है। चिरपरिचित ऐसे संकेत-चिह्नों को पकड़ा गया है जो हमारे सौन्दर्य-बोध के सुपरिचित मानदण्ड रहे हैं। ये संकेतक अर्से के साथी होकर भी नये ढंग से व्यवस्थित किये गये हैं। यहाँ आई हुई संज्ञायें और क्रियायें नये भाषाई अंदाज का रंग भर रही हैं और एक नितान्त विश्वसनीय अनुभूति को सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया है। किसी मुक्त क्षण के भोग को ताटस्थ्यपूर्वक सन्दर्भित करने की गवाह उसी गीत की ये पंक्तियाँ है :

एक बादल बरसता रहा –
और धुलती गई वासना

प्रतीक्षा एक परम्परा – सिद्ध सन्दर्भ है, जिस पर बहुत कुछ लिखा गया, लेकिन हर आदमी के लिये वह बराबर नया बना रहा। काफी यांत्रिकता के बावजूद इससे जिन्दगी में कतरा कर निकलना मुश्किल है। आज का गीतकार भी इसे झेलता है, लेकिन परिवेश की रेखाओं से अनुभूति की विश्वसनीयता और नयेपन दोनों को आँक देता है :

खिड़की के पल्ले खुले,
परदे उड़े सारी रात
पिया कहाँ बँधे तुम रहे

मैं जब मुक्त क्षणों की बात करता हूँ तो शांति सुमन जी के दो गीत विशेष रूप से याद आते हैं – 'होने दे ओ रे मितवा, जो जी में है' और 'गरम हथेली और भीगे से तलुवे।' इन गीतों में जीवन का सही एहसास है। रोमानियत इसलिए नहीं है कि आवेग से जन्मी कोरी काल्पनिकता नहीं दिखाई पड़ती। पहले गीत की भाषा में थोड़ी सौन्दर्यपरक रोमानियत है और वह भी अप्रस्तुत चयन में। 'सोनिल अंजोरिया' और 'गंधिल उसाँस' भाषाई रोमानियत है, किन्तु यह उस परिवेश के एहसास को अधिक जोरदार ढंग से सामने रखता है। विशेषण जरा सूक्ष्म हैं और वे अनुभूति की सच्चाई तक कल्पना के जरिये पहुँचाते हैं। नीचे की चार पंक्तियों में पहली दो के संकेतक-कचनारी मन और अनारी-बेल – कल्पना-सापेक्ष होते हुए भी प्रस्तुत की स्थिति को सही ढंग से सामने रखते हैं, लेकिन नीचे की दो पंक्तियों में एकदम ताजगी के कारण एहसास की सच्चाई है :

खिल-खुला कचनारी मन
दहके अनारों की बेल,
साड़ी की बैगनी सलवटें –
आँखों की प्यास रही झेल

दूसरे गीत में एहसास की सच्चाई और लोकगीत का संस्पर्श एक साथ मिल गये हैं। 'पिया चुटकी न काटो' कतिपय सहजता और लयात्मक ढलाव के कारण किसी लोकगीत की पंक्ति मालूम होती है। किन्तु उसके पहले की पंक्ति 'गरम हथेली औ भीगे से तलुवे' संवेदना को एकदम विश्वसनीय बना देती है। चूंकि यह अनुभूति गीतों में अभी तक अनकही कहानी रही है, इसलिए इसमें तरोताजगी है। इसके आगे के टुकड़े में बेरी के डार सी पास-पड़ोसिन और निगोड़ी पुरवैया लोकगीत में इतना घिस-पिट गई है कि संवेदना उनके बहुत ऊपर से गुजर जाती है, लेकिन इसके बाद के टुकड़े की पंक्ति 'बुरा नहीं मानो तो खींचू यह रेह' में मीठी गुदगुदी है। गीत के अन्तिम हिस्से में सोहागिन की तनुक अभिधेय किन्तु साजन की बरजोरी और सजनी का मनुहार व्यंग्य है। गीत के चार छन्दों में से इस आखिरी टुकड़े में आकर अनुभूति का सारा प्रभाव सघन हो गया है :

ये लो चनक गई
तीज चढ़ी चूड़ी,
ओहो, बड़े वैसे तुम
मानो मजबूरी

'ओ प्रतीक्षित' में मध्यवर्गीय नारी की बेबस और बोझिल जिन्दगी का प्रतिबिम्ब एक गीत में अच्छी तरह से हुआ है – 'क्रोशिया काढ़े दिन बीते।'

इसका सौन्दर्य इसलिए और बढ़ जाता है कि स्थिति से जूझती हुई मनस्थिति का सांकेतिक व्यौरा पूरे गीत में है। 'क्रोशिया काढ़े दिन बीते, अब तो चूल्हे-चौके की बात' में चूल्हा-चौका पकाने-खाने में सिमटी जिन्दगी और क्रोशिया थोड़ी सी फुरसत में शिल्प यानि सौन्दर्य-बोध से संबंधित गृहस्थी की ही जकड़बन्दी है। इसी तरह आगे की पंक्तियों में धुआँ और किलक-ठुनक क्रमशः घुटन और अभाव के संकेतक हैं। परिवेश का बाह्य अभिधेय और अभ्यन्तर व्यंग्य है। आगे की पंक्ति में कोहबर के पुष्परेणु का रीतापन यथार्थ की भूमि पर पहुंचने के बाद पिछली रोमानियत का सच्चा एहसास है :

धुओं से भर जाती घर की छत सुबह-सुबह
किलक और ठुनक दे मन की सब बातें कह
कोहबर के पुष्परेणु रीते –
अब तो बस सब मौके की बात

सदियों से कैद की जिन्दगी बसर करती हुई भारतीय नारी की तड़पन को भी शांति सुमनजी ने पहली बार लय में सँजोया है :

परदे बीमार और बंद गली दरवाजे,
सीखचों में कैद कोई धूप गई मर लाजे

बिम्बों के मामले में शांति सुमनजी ज्यादा संवेदनशील हैं। नवइयत की तलाश की अपेक्षा अनुभूत्यात्मक कोमलता पर उनकी दृष्टि अधिक रहती है। किसी रूप की समग्रता अथवा अनुभूति की गहराई को प्रगट करने में उनके बिम्ब खरे उतरते हैं। रूप-चित्र में भी स्थिर और गतिमान, दोनों प्रकार के बिम्ब 'ओ प्रतीक्षित' में आये हैं। 'कांचों के टुकड़े सा गड़ता अकेलापन' में एकाकीपन की धारदार तेज चमक और दर्द व्यंजित होता है। अलक्ष्य अनुभूति का लक्ष्य प्रस्तुत। यहाँ अप्रस्तुत के जरिये प्रस्तुत का तीखापन उभरा है, तो नीचे की पंक्तियों में केवल भाषा की व्यंजकता बिम्ब के प्रभाव को अच्छी तरह मांज देती है :

अलक भार झुकी-झुकी पलकें शरमीली,
रिसती सी रूप की सुगंध गमगमाती

पलकों को शरमीली कह कर अन्दर के संवेग और अलक के भार झुकी कह कर उसके वाह्य सौन्दर्य को प्रगट किया गया है। नीचे की पंक्ति में प्रभाव की सूक्ष्मता को व्यंजित करने के लिये भाषा भी सूक्ष्म हो गई है। सब मिलाकर अन्तर और वाह्य सौन्दर्य ही नहीं प्रभाव को भी बिना किसी अप्रस्तुत के सहारे केवल भाषाई ताकत से टांक दिया गया है। यहाँ सिर्फ 'अलक' शब्द आपत्तिजनक है। सिर के घुँघराले बालों के लिए अलक प्रायः रूढ़ है। उसमें अन्य अर्थ भरने

की गुंजाइश नहीं है। कभी सिर्फ एक विशेषण पर बिम्ब टिक जाता है – 'रोएँदार कुहासे/आँखें झँपी-झँपी' (पृ० 36)। कुछ नये अप्रस्तुतों के जरिये बिम्बों को उसकी पूरी सार्थकता के साथ प्रगट किया गया है। यहाँ नवइयत की तलाश के लिए भटकाव नहीं, बल्कि परिवेश से वस्तु-चयन के कारण समकालीन जिन्दगी का एहसास है :

धूएँ के छल्लों सा
जीना नाकाम
मकड़ी के जालों सी बिछी हुई उलझनें

बेचैनी, भटकाव, श्मशानी परिवेश और प्राणशून्य आकर्षण को अलग-अलग संकेतकों से प्रगट करके परिवेश की समग्र बेचैनी को नीचे की पंक्तियों में प्रकट किया गया है। अलग-अलग बिम्ब मिलकर परिवेश को उसकी संपूर्ण समग्रता में उभार रहे हैं। सिर्फ पहला बिम्ब बहुप्रचलन से घिसा हुआ है, किन्तु नीचे की तीन पंक्तियों में वह भी नये तरीके से प्रयुक्त हुआ है :

बदहवाश भाग रही इच्छाएँ
धूल भरे आँखों के ताल,
नीचे पथराई ढेर सी मछलियाँ
ऊपर खिंचे मेहराबी जाल

सुपरिचित वस्तुओं से बिम्ब की एक अन्य नई व्यवस्था :

मेरे दिन बरगद के –
पास कहीं पोखर,
मरी हुई मछली सी –
अपना सब खोकर

इसमें केवल वस्तु-संचयन ही नहीं, अनुभूति संगठन भी है। निजी संबंधों में दर्द का तीखा एहसास, एकदम नये बिम्ब से प्रगट हुआ है :

तरबूज की लाल सतह –
काले से दाने,
मेरा सम्मोहित क्षण
यह कैसे जाने

चाँद के लिए बहुत से उपमान आये हैं और उनमें प्रायः अधिकांश स्त्रीलिंग ही हैं। 'ओ प्रतीक्षित' की कुछ पंक्तियों में उसका शरमीला, किन्तु नए एहसास से भरा सुन्दर और अनुभूति-प्राण बिम्ब विधान हुआ है। एक ओर चाँद का स्वरूप और दूसरी ओर मानव का अनुभूति-गुंजित परिवेश :

लुकता-छिपता चाँद
जैसे नव ब्याहा पाहुन सहम रहा,
पार कर देहरी पहली बार

शांति सुमन ने नारी के इर्द-गिर्द से कुछ सार्थक बिम्बों का चयन किया है, जिससे नवगीत के फलक का विस्तार हुआ है :

देखे-अनदेखे से घूमे –
रीलों वाला मन
.....सूई की नोंक चुभी जब-जब
लहर गया रेशमी रूमाल

शहरी जिन्दगी के एहसास से बोझिल शांति सुमनजी ने देहाती आंचल से भी एकाध बिम्ब का आनयन किया है :

ठहराई स्मृतियाँ रेख यों टिका,
उड़ती अँधेरे बैलगाड़ी की धूल

कुछ बिम्ब पुराने होते हुए भी नई व्यवस्था में हैं :

सुधियों की भँवर गई डोल,
हाथों में काँपता गुलाब रह गया

शांति सुमन जी के कुछ ऐसे भी बिम्ब हैं जो वर्ण अथवा धर्म की असंगति के कारण लुंज-पुंज दिखाई पड़ते हैं –

छितराई अंबर में बादल की धूल –
गिरा हुआ फूल जैसे पूजा की थाली का।
.....आंचल पसार चली आती है रात –
चंदा लजाता जैसे बलम किसी दासी का

'ओ प्रतीक्षित' के शब्द-गठन और लय-संयोजन पर थोड़ी सी मेरी विमति है। गीत से 'गीतिल' (पृ० 5), ओस से 'ओसीली' (पृ० 53), कुहरे से 'कुहरीला' (पृ० 56), गंध से 'गंधिल' (पृ० 62), सपन से 'सपनीली' (पृ० 65), विकारी रूपों को एक सीमा तक ही स्वीकार किया जा सकता है। शुरू का क्रियारूप 'शुरूआये' आदि कुछ विशेष अर्थ दे तो ठीक अन्यथा बन्ध्या प्रयोग से क्या लाभ। इसी तरह गंध का बहुवचन 'गंधों' (पृ० 68) और लाल का विकारी रूप ललायेंगी' (पृ० 72) का तर्क सम्मत जवाब नहीं है। खुशफहमी (पृ0 46), 'यातयाम' (पृ० 20) जैसे प्रयोग भी बेमानी है। 'अथोड़' (पृ० 24) शब्द थोड़े से अधिक का ही व्यंजक है, बहुत अधिक का नहीं। इसी तरह 'आधे अधूरे' (पृ० 34) और 'ओ पिया' (पृ० 57) को क्रमशः मोहन राकेश और अज्ञेय ने ऐसा रगेदा

कि एक मुहावरा तथा दूसरा सार्वजनिक लटकन बन गया। मछेरों का जाल फेंकना, एक बूँद का उछलना और सूरज का चक्कर खाना भी अब बेमानी है। दूसरे की उधार ली हुई भाषा अपने एहसास को अच्छी तरह नहीं कह सकती। इससे भाषा की विश्वसनीयता उठ जाती है और अनुभूत्यात्मक सच्चाई पर पेबन्द लग जाता है। वैसे संग्रह की भाषा में नयापन न होते हुए भी सहजता का आकर्षण है। हमारे बहुत करीब की भाषा नितान्त विश्वसनीय होती है। गीत-योजना में शान्ति सुमन जी अधिकतर लयात्मक-संयोजन पर निर्भर रहती हैं। लोकधुनों को भी उन्होंने जब-तब अपनाया है। सामान्यतया लय में अनाहत प्रभाव होता है किन्तु एकाध जगह लय टूट सी जाती है। इन एकाध मामूली सी खामियों के अलावा 'ओ प्रतीक्षित' नवगीत विधा में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उसमें समसामयिक जीवन की हिस्सेदारी रचनात्मक धरातल पर बराबर दिखाई पड़ती है। इसके अलावा मध्यवर्ग की नारी की तड़पती, ऊब भरी, मुस्कुराती और दाम्पत्य जीवन की आड़ी तिरछी रेखाओं के घेरे में बंद जिन्दगी का यह एक सच्चा एहसास है।

●

ओ प्रतीक्षित : बिम्ब की पहचान

❑ ओम प्रभाकर

'...मेरे ये गीत भाव-भींगे क्षणों के, हल्के-फुल्के और भारी-भरकम क्षणों के गीत... इनमें मध्यवर्गीय भाव-चेतना का उतार–चढ़ाव आपको यत्र-तत्र मिलेगा और धरती की बातों से धरती की गंध... इन नवगीतों में न केवल मध्यवर्गीय ऊब, कुण्ठा, घुटन, पीड़ा, विवशता तथा शैथिल्य है अपितु हृदय और बुद्धि का असामंजस्य, व्यवहार एवं आदर्श का वैषम्य एवं टुकड़े-टुकड़े होकर बंटे व्यक्ति के बाहरी दबाव भी हैं.... इन गीतों में कहीं-कहीं आपको बिखराव भी मिलेगा. .. परिस्थितियों के साथ बरबस समझौता करने की मजबूरी मेरे गीतों में आप पायेंगे... मन ही ऐसा मिला है कि अवसाद का एक घना कुहासा इर्द-गिर्द व्यापा ही रहता है... मानसिक संघर्ष जो मेरे जीवन का सच है, मेरे गीतों का भी सच...'

यदि कोई रचनाकार अपनी कृति के संबंध में इतना-कुछ कृति के पहले ही कह दे, तब फिर किसी और के – जिसे पाठक या समीक्षक कहते हैं, उसके कहने के लिए कुछ विशेष नहीं रहता।

'ओ प्रतीक्षित' की कवयित्री शांति सुमन ने अपने नवगीत-संग्रह के 'पुरोवचन' में गीत, नई कविता और नवगीत को लेकर जो कहा है : संकलित अपने नवगीतों की वस्तु और शिल्प के संबंध में भी बहुत कुछ कहा। इस प्रकार के पुरोवचनों से कविताओं को समझने में सामान्य पाठक को यदि एक ओर कुछ 'लाइन्स' मिल जाती हैं तो दूसरी ओर समीक्षक के रास्ते में एक 'लाइन' आ जाती है जो कृति से उसका सीधा संपर्क नहीं होने देती। या समीक्षक वह नहीं कर पाता जिसे डॉ० इन्द्रनाथ मदान 'रचना की राह से गुजरना' कहते हैं। और फिर ऐसी स्थिति में, समीक्षक को या तो कवि की दी हुई लाइन्स पर चलना होता है, लेकिन वैसा करना सही समीक्षा करना नहीं होता, : या फिर कवि-प्रदत्त लाइन्स को स्थगित करके रचना की राह से गुजर कर ही देखना होता है कि रचना कहाँ जाती है और पाठक-समीक्षक को कहाँ ले जाती है। अस्तु।

शांति सुमन हिन्दी जगत में ख्याति और प्रतिष्ठा की दृष्टि से कितनी ही नई हों, रचनाकारिता की दृष्टि से उतनी नई नहीं हैं। 'आधुनिक हिन्दी कविता में मध्यवर्गीय भाव-चेतना' विषय पर जहाँ वे पीएच०-डी० की शोध-उपाधि प्राप्त कर चुकी हैं वहीं 'चेहरे का झूठ' तथा 'सम्प्रति' नामक उनके नयी कविता संग्रह और 'गूंज-अनुगुंज' मैथिली गीतों का संग्रह भी प्रकाश्य हैं। तो चार पुस्तकें जब शांति सुमन की छपने वाली हैं तब मैं यह मानकर चलता हूँ कि दो-एक

पाण्डुलिपियाँ उनके पास और होंगी। मतलब यह कि कितनी कम वय में इतने प्रचुर लेखन (विशेषतः काव्य) का कृतिकार यदि कृति की किसी अनिवार्य शर्त को नहीं मानता तो माना जा सकता है कि उसने जानबूझ कर ही ऐसा किया है। 'ओ प्रतीक्षित' के लगभग सभी गीतों में छंद की जो शिथिलता या अवज्ञा व्याप्त है, उसे मैं इसी रोशनी में लेता हूँ। और स्वयं कवयित्री ने भी कहा है कि उसके निकट शिल्प की अपेक्षा वस्तु अधिक महत्वपूर्ण है।

और जब (नव या प्राचीन) गीत में से छंद निकाल दिया जाय तो कहने को क्या रह जाता है – गीत की वस्तु और उसके बिम्ब, प्रतीक तथा उपमान।

तो यह कहने में मुझे केई संकोच नहीं कि शांति सुमन के इस संकलन में अनेकानेक हसीन, सजीव, सार्थक और ताजातरीन बिम्ब और उपमान भरे पड़े हैं।

कवयित्री द्वारा प्रकृति के गहन पर्यवेक्षण के जानदार बिम्ब 'कबूतर के पंखों पर ठहरी भोर', 'नील-जामुनी सांझ और कुछ पिरा गई', 'ज्वार पर कोई किरण का फूल', 'पंखुरियों के मेघ और यह सित परिवा का लुकता-छिपता चांद',

विवश मनःस्थिति का प्रवक्ता बिम्ब :

'एक विराट हिमालय रखकर
पीड़ा के सब आवेगों पर...'

प्रकृति से गहन आत्मीयता के संसर्ग में निजी पीड़ा का बिम्ब :

'यहीं कहीं संझा मुरझेगी'

शाम के धूसर क्षणों में स्मृतियों का किसी मन-कान्तार में आ-आकर ठहरना और शांति सुमन का यह बिम्ब :

'उड़ती अंधेरे बैलगाड़ी की धूल'

उड़ती लेकिन ठहरी हुई लगती जैसे मन के भीतर एक पर स्मृति उड़ती मगर वहीं ठहरी रहती।

...आशय यह कि 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों में बिम्बों – ताजे और जीवंत, जीवंत और अनुभूति विशेष के समर्थ संवाहक बिम्बों, प्रतीकों और उपमानों की कतई कमी नहीं है। कवयित्री में – जो कि उसके इन गीतों से साफ-साफ जाहिर है – एक बेहद वेगवती – अप्रतिहत तड़प है : अनुभूति को व्यक्त करने की : अनुभूति विशेष के व्यक्तीकरण के साथ कुछ अछूता प्रस्तुत करने की और किसी अभुक्त को उद्घाटित करने की।

यह एक अलग बात है कि 'ओ प्रतीक्षित' में शांति सुमन के गीतों में व्यक्त उनके अनुभव निश्चित हैं – निश्चित और सीमित : मोटे तौर पर मात्र दो-प्रेम

और समकालीन जीवन। लेकिन इन दो अनुभव वर्गों के अतिरिक्त जीवन-जगत और है क्या ? प्रतीक्षा, प्रणयाकुलता, प्रकृति की सुन्दरता, सम्भोगाकांक्षा, तदुपरांत विरक्ति, ऊब, बेचैनी, छटपटाहट, ग्लानि, समकालीन जीवन का अकेलापन, अजनबीयत, अरक्षा-भाव, कुन्ठा, आशंका : रचनाकारोचित स्वतंत्रता के परिवेश के दबाव से पराजित होने की विवशता : समाजिक रूढ़ियों-विवाह, पति, गृहस्थी आदि को स्वीकृति देने की विवशता, परिवेश की विडम्बना को स्वयं भोगने की विवशता, अपने माध्यम से आज के आदमी की लुप्त होती मौलिकता या अस्तित्वहीन होते जाने की विवशता...

मतलब यह कि जीवनानुभवों के विविध पक्ष, उनकी अनेक शेड्स शांति सुमन ने इन गीतों में पर्याप्त कलात्मकता के साथ उजागर की है।

फिर भी, एक बात मैं लाख न चाहने पर भी, कहने को विवश हूँ : कि जिस प्रकार अनेक गुणों के रहते या न रहते कविता को अन्ततः कविता तो होना ही चाहिए उसी तरह गीत अन्ततः गीत ही रहेगा। कविता कभी बयान, नीति-वचन, सूक्ति, दृष्टांत और विट मात्र होकर जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार लय और शैलिक अनुशासन से रहित होकर गीत-कुछ भी और कैसा भी हो सकता है – गीत नहीं रह सकता : नव और प्राचीन की तो बात ही अलग है। ऐसी मेरी मान्यता है निजी।

और इसके अतिरिक्त शांति सुमन को एक बात पर और ध्यान देना होगा (टोन के लिए क्षमा करें !) और वह है उनकी भाषा ! उनके गद्य में तो ठीक लेकिन कविताओं में जाने-अनजाने वे अनेक स्थलों पर जब आंचलिक (शब्द-प्रयोग में नहीं वाक्य-व्याकरण की दृष्टि से) हो जाती हैं तब अर्थ या तो लटपटा जाता है या अटपट हो जाता है।

फिर भी मुझे उनके इस संग्रह के गीत रूचिकर हुए।

●

नई व्यवस्था के लिये संघर्षशील एक युवा कवयित्री

❑ मधुकर सिंह

डॉ० शान्ति सुमन मध्यवर्गीय आकांक्षाओं, इच्छाओं, कल्पनाओं और एक खास तरह की नई व्यवस्था के लिए संघर्षशील एक युवा कवयित्री हैं जो यह मानकर चलती हैं कि 'गीत भोगे हुए क्षण की संपूर्ण अनुभूति है और है साफ-सुथरा, भरा-पूरा एक संपूर्ण विम्ब। कवि के आत्मिक तोष से उसका सबल संबंध है। जिन गीतों में जीवन के स्पन्दन होंगे, वे निस्संदेह अतीन्द्रिय उलझनों से मुक्त होंगे।' कवयित्री के लिए यह स्वीकारने में कोई झिझक नहीं कि वर्तमान पूंजी निर्मित दोहरी अर्थव्यवस्था के कारण मध्यवर्गीय लोगों के असंतोष, क्षोभ, घुटन, ऊब और कुंठा की स्थिति में नवगीत विवशता की सृष्टि है जहाँ रचयिता नितान्त आन्तरिक और निजी है। **शान्ति सुमन के गीतों से गुजरते हुए अचानक केदारनाथ सिंह के गीतों का स्मरण हो आता है जो तत्काल आत्मीय रिश्ते कायम कर लेते हैं और सहसा एक पारिवारिक सुख दुःख के पूर्ण परिवेश में छोड़ देते हैं। तब तक एक अथक पीड़ा का बोझ कवयित्री का ही नहीं – पाठक का भी निजी बन जाता है।** 'पास मेरे शेष रहे – कुछ तस्वीरें, कुछ साये।' इसी तरह गीतों में आत्मीय ठहराव के कई उदाहरण हैं –

पांव तेरे देहरी पर आ रुके होंगे,
और मन पर खिंची होगी एक सांकल
अथिर सूनापन नयन नम हो गए होंगे
संघर्षों का होगा उगा सूरज –
दहशतों भरी डूबती सी शाम,
आज भी अकेले ही दीखते होंगे
भीड़ों में कतराए से प्राण

या

जो कुछ तुमने दिया
सहेज कर रखा
आओ इस संझबाती में
तुम को सौंप दें.....

'ओ प्रतीक्षित' के प्रायः गीतों की यह विशेषता है कि पारिवारिक एकान्तिकता और निजता के बावजूद सामाजिक संबंध 'बासीपन' भले लगे, परंतु परायापन

और अजनबीपन की कुंठा गीतों के भीतर कहीं नहीं है – 'जितना धोया कुंठाओ का तन, खला उतना ही नया बासीपन।' यही बासीपन की नूतनता कवयित्री को जाने अनजाने पारिवारिक परिवेश में घेरे रहती है। मगर बनिया सभ्यता के दबाव के कारण यह व्यवस्था आस-पास कुंठाओं और वर्जनाओं का महाजाल फैलाए रहती है और कवयित्री के इस अकेलेपन की यात्रा में बड़ी मुश्किल लगता है इस महाजाल को अपने डैनों में फंसाकर उड़ जाना। क्योंकि मध्यवर्गीय संस्कारों को यथावत जीने वाले लोग महज औपचारिकताओं में जीते हुए अंधी दीवारों से टकराकर अपनी ऐतिहासिकता पर कालिख लगा देते हैं और बनिया सभ्यता में जन्मी आज की शहरी चेतना को कोसते हुए भी जुलूस, संघर्ष, अधिकार की चेतना में पीछे और अकेले रह जाते हैं। खुद को ही लाश की तरह ढोने चलने की मजबूरी, मध्यवर्गीय मजबूरी है, जिसकी भीड़ जुलूस और संघर्ष में तब्दील नहीं हो पाती है। इसीलिए,

हमारे दायें–बायें शहर का फैलाव,
होटल–कहवाघर नए बोध का सैलाब,
दफ्तरों में जिन्दगी के खोखले ताबूत,
क्रमहीन बहसों को ढो रहे भटकाव

कवयित्री के मस्तिष्क में दफ्तरी बाबुओं, स्कूल मास्टरों, वकीलों और मुर्दा कॉलेज-अध्यापकों के नक्शे साफ हैं जो यथास्थिति की बुनावट और शोषण के सीधे जिम्मेदार हैं। इन्हीं के घरों से चलकर उनके शहर को थूकते हुए जूलूस में शामिल होते हुए भी मन के विद्रोह का दब जाना स्वाभाविक है। कवयित्री ने जुलूस में चलने और भीड़ से बचने के लिए अनेक बार पुकारा है –

आओ, धारा के साथ–साथ डूबें
बांध कुछ ऊँचे, कुछ गहरे मनसूबे,
कुछ पल तो ऐसे न रहें ऊबे–ऊबे

इस मध्यवर्गीय चरित्र के कारण ही इस संस्कार में लिपटे लोग खामोश और खंड-खंड बंटे हुए आदमी की जिन्दगी जीते हैं और किसी भी सामूहिक चर्चा में शामिल नहीं होते। यहाँ तक कि कवयित्री के लिए भी उस जमात की होने के कारण कभी-कभी कह पाना मुश्किल पड़ जाता है, क्योंकि 'संस्कारतः सोचना ही पड़ता है कि परेशानियाँ ही तो हमारी सहयोगिनी हैं। जब वे न होंगी, तब हम क्या करेंगे ? आवश्यकता है, अपने आप में दुर्दमनीय जिजीविषा को जागृत कर उसे अपराजेय बना देने की।' दरअसल कोई भी आंदोलन जब तक सामाजिक रिश्ते के भीतर घट रहे बदलावों से जुड़ने और उसकी विसंगतियों-अन्तर्विरोधों को लक्षित करते हुए अपनी भूमिका स्पष्ट नहीं करता तब तक कोई चेतना पैदा नहीं होती। साहित्य की अलग-अलग विधाएं आंदोलन नहीं होतीं।

इसलिए समाज के गतिशील संबंधों के लिए कवयित्री के भीतर एक तरस और 'नई व्यवस्था' के लिए छटपटाहट है तब वह सही है जो इनके भविष्णु कवयित्री-कर्म की ओर इशारा करती है। समकालीन गीतों की जीवन्तता का प्रश्न – एक सार्थक प्रश्न है कि 'शहरी सभ्यता' यानी बनिया और पूंजीवादी सभ्यता की मार से भूख, गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक अन्याय और शोषण में सिकुड़े-दुबके आदमी की निष्क्रियता को ही उजागर किया जाए या इनके खिलाफ जूझते हुए मध्यवर्गीय आदमी की सक्रियता को। **शान्ति सुमन के गीतों में एक सक्रिय छटपटाहट जरूर है जो तमाम तरह के शोषणों से मुक्ति के लिए संघर्षरत अपने हाथों को हजारों हाथों तक पहुंचाना चाहती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि शांति सुमन के गीत सामन्ती ढांचे के टूटने के बाद शुरू होते हैं और पति, परिवार, दोस्त और समाज को यथास्थिति से मुक्ति के सपने गढ़ते हैं, जैसे कि 'साथ-साथ चला किए – समय और हम।'**

छायावाद के बाद भी प्रणय-गीतकारों की बाढ़ कम नहीं हो पाई है। इनसे टूटकर कुछ प्रयोगवादियों में शामिल हो गए – परन्तु केदार नाथ सिंह ने गीतकारों का अलग-थलग और रूढ़िमुक्त इमेज दिया। उस विकासोन्मुख परंपरा में आज के कुछ गीतकार रमेश रंजक, नईम, सूर्यभानु गुप्त, शान्ति सुमन, माहेश्वरी तिवारी, नचिकेता के नाम आते हैं।

●

शान्ति सुमन के नवगीत संकलन 'ओ प्रतीक्षित' पर एक समीक्षा दृष्टि

❑ पंकज सिंह

किसी भी 'रचना' का आज के परिवेश में या बदलते हुए सन्दर्भ में कितना उपयोग हो सकता है इसको हम अगर मध्ययुगीन उपयोगितावादी चिन्तकों (वेन्थम या मिल) के मुताबिक उनके अर्थ में ग्रहण न करें फिर भी आज बेकार लगती है बेमानी। सिवा इसके कि हम सबके पास महज अन्धकार का एक-एक टुकड़ा है और मनमाने ढंग से हम उसको अलग-अलग जी रहे हैं, कहीं कुछ नहीं है। एक अन्तहीन प्रतीक्षा है – बेकेट की गोदो या हरकहीं व्यर्थता, शून्य और स्थितियों की आदि अन्तहीन विरूपता में तड़फड़ाते हुए लोगों की जड़ता और पराजय का अहित आत्मबोध है।

और ऐसे में विदेशों से शुरू होकर चर्चाएँ हमारे यहाँ भी चलने लगी हैं कि साहित्य पिछले लोगों के लिए दिलचस्पी या बहस का मुद्दा बन सकता था।

यों हम समुदाय के साथ अपने आसपास की स्थितियों को और संपूर्ण फैले हुए परिदृश्य में जीवन को जीते हैं, जहाँ कहीं भी हमारा व्यक्ति उसके जिन विन्दुओं पर जुड़ा है या जहाँ तक उसके मनोलोक की व्याप्ति है। और जीने का यह साझा हम सब करते हैं, अनुभव हमारे भी जहाँ हमारे साथ या हमसे अलग हमारी जानकारी में घटित होते हैं, सबसे पहले हमारे लिए एक सामान्य जन का ही अनुभव होकर आते हैं। फिर सामान्य जन के लिए वे रोजमर्रा की चीज बनकर गुम होते जाते हैं – पर सृजन करनेवाले के लिए दुहरे स्तर पर घटित होते हैं – बाहर से रेंगकर वे हमारे संपूर्ण संस्कार और मनोलोक के स्वीकृत निर्णयों में पुनः-पुनः घटित होते हैं – और वहीं से हमारी यानी सर्जक की विशिष्टता प्रारम्भ होती है। जीवन के सारे अनुभव न सही उनमें से कुछ हमें हमारे उस रचनात्मक मनोलोक में प्रश्नाहत करते हैं और तब अभिव्यक्ति की विवशता हमारे लिये होती है और फिर हम जो अभिव्यक्त करते हैं उसकी अद्वितीयता ही हमारी रचनात्मक अभिव्यक्ति की प्रमाणिकता का निकष बनाती है। अभिव्यक्ति के कई-कई कला माध्यमों से एक साहित्य को चुनने के – और उसके दायरे में कविता, कहानी, गीत, नाटक-उपन्यास को अलग-अलग लेने के फिर अपने कारण होते हैं – यहाँ उन कारणों की व्याख्या मैं जरूरी नहीं मानता।

यहाँ प्रसंग गीतों का है और उनमें भी एक महिला गीतकार श्रीमती शान्ति सुमन के प्रकाशित गीत संकलन 'ओ प्रतीक्षित' पर यह चर्चा टिकी है।

हमारा पूरा का पूरा प्राचीन साहित्य छन्दोबद्ध है और यह सर्वमान्य बात है कि उनमें गीत-तत्त्व की प्रधानता है। हिन्दी कविता की आधुनिक मनोवृत्ति का प्रारम्भ अगर छायावाद से मान लें तो हम यह साफ-साफ पायेंगे कि उस काल

की कविता में बौद्धिक प्रभाव से ज्यादा संवेदन का सहज ग्राह्य गीत-संस्कार ही अधिक अभिव्यक्त हुआ। और कविता के अंतर्गत यह संवेदनात्मक गीतिल संस्कार सर्वप्रथम बड़े स्पष्ट रूप से हम 'निराला' के साहित्य में अलग वर्गीकृत होते हुए पाते हैं। उसके पहले यदि गीत और कविता का कोई फर्क था भी तो उसके पीछे मात्र इतनी समझदारी काम करती थी कि गीत में कविता से अधिक गेयता या हृदयग्राहिता की मात्रा होनी चाहिए – रचना की संपूर्ण प्रक्रिया में गीत को मात्र यह अवधानता कविता से अलग करती थी। निराला ने सर्वप्रथम कविता और गीत के ज्यादा बड़े और सही 'गैप' को पहचाना – और जीवन के निर्मम यथार्थ से जुड़ती हुई उनकी आन्तरिकता ने गीतों के लिए अलग भावलोक और अभिव्यक्ति प्रक्रिया की जरूरत कहीं न कहीं से महसूस की।

उसके बाद '50 से गीत और कविता का यह 'गैप' साफ-साफ समझ में आने लगा और अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर, भारत भूषण अग्रवाल, केदारनाथ अग्रवाल, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन, शील, शैलेन्द्र, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता आदि रचनाकारों ने अपनी सतत् जागरूक रचनाधर्मिता से रचनाओं के इस संस्कार भेद को ज्यादा स्पष्ट किया – गीत ने इस बीच नवछायावादी रोमानीपन से प्रगतिवाद, प्रयोगवाद की यात्रा की और अन्ततः अब 'नवगीत' की नई संज्ञा में आया है।

और इस प्रकार इस यात्राक्रम में 'नवगीत' की संज्ञा में आयी विधा की एक और महत्वपूर्ण कड़ी है 'ओ प्रतीक्षित'।

शान्ति जी के इस संकलन में मध्यवर्गीय जीवन की बहुआयामी गुत्थियों और जीवन की आहिस्ता-आहिस्ता क्षरित होती जाती हुई रागात्मक संवेदना के अवसाद का फैलाव है। गीत हमेशा से आत्मपरकता के व्यूह के बन्दी हैं – और गीतों में चाहे समसामयिक कविता से होड़ लेने की कोशिश में नवगीतकारों ने जितनी भी जीवन की संपूर्ण विरूपता और विद्रूप को समोने-संजोने की कोशिश की हो गीतों की आंतरिक संघटनात्मकता की सीमा है कि वे बहुत दूर तक 'सब्जेक्टिविटी' की चरित्र-सीमा में होते हैं। **और शान्ति जी के ये गीत अगर कहीं से रचनाकार की सहज-संवेद्य आत्माभिव्यक्ति बनकर आये हैं तो यह सीमा रचनाकार की नहीं, उस विधा की है।**

शान्ति जी के इन गीतों में हमें एक रचनाकार के 'पैनोरमा' के टूटने का दर्द मिलता है, जिसके बाद संस्कार के एक सहज स्वीकृत मायालोक का बिखराव रचनाकार को महज प्रश्न देता है – और उसी प्रश्नाहत संवेदना को जब गुजरते हुए यथार्थ में अपना निजीपन खोने का बोध और झूठे चेहरों और दिखावे भरी जिन्दगी की असलियत को झेलने की मजबूरी मिलती है तो उसकीजो कचोट उसे अभिव्यक्ति तक ले आती है – वह इस संकलन के गीतों में हमें बार-बार जैसे एक भयावह अर्न्तसंगीत सा दिखती है –

सोचा था खींच दूँ रोशनी की लकीर
बाँध दूँ समय को अपने ही तीर
ऐसा कुछ नहीं हुआ / होगा और / तुम्हीं कहो

या

'परदे बीमार और बन्द गली दरवाजे,
सींखचों में कैद कोई धूप गयी मर लाजे...'

और उसी भयावहता का तनाव कहीं शहराती सभ्यता के अभिशाप में कसी-फँसी जिन्दगी का गीत बन जाता है –

'यह शहर पत्थरों का पत्थरों का शहर।'

कहीं उस शहराती सभ्यता की मूल्यहीनता और आदमी के भीड़ बन जाने की नियति के बोध का गीत –

हम चल रहे जुलूस में/हमारे पीछे एक जुलूस

इसी गीत में आगे

'हमारे दायें बायें शहर का फैलाव/होटल कहवाघर नये बोध का सैलाब/दफ्तरों में जिन्दगी के खोखले ताबूत/क्रमहीन बहसों को ढो रहे भटकाव/दैनन्दिन चिन्ताएँ तनको/दिन रात ही रहीं चूस/भीड़ों की जिन्दगी साथ लिए ऊब/नंगी खामोशी में चैन गया डूब/ताक पर धरे पड़े सारे अहसास/खण्ड–खण्ड में बँटे आदमी भी खूब/अपने ही कंधे लाश ले अपनी/छाते रहे अपने घर फूस....'

आधुनिक जीवन फलक पर फैली अनेक बदशल्क सचाइयों का स्वीकार शान्ति जी को चुपचाप स्वीकार नहीं है – इस आशय की अभिव्यक्ति में उनका आक्रोश समस्त छद्मवेशी सम्बन्धों और मूल्यहीन दृष्टियों और स्थितियों से टकराता है।

सम्बन्धों से अपेक्षाओं के टूटने के बाद उन सम्बन्धों के नंगे चेहरे का साक्षात्कार – 'बनते हो मेरे संस्कार के भागीदार/पर क्या हो तुम ? क्या हो तुम/बस एक तमाशबीन/महज एक तमाशबीन' जैसी तीखी प्रतिक्रिया का गीत होकर आता है।

सारा का सारा जिया जाता हुआ वर्तमान का यथार्थ और उसके कई-कई संदर्भ शान्ति जी को जिस प्रक्रिया से गुजारते हैं वहाँ आक्रोश के बाद भी वे अपने संस्कार की सुरक्षित मानवीण करुणा भरी भावुकता और आसपास के ठहरे हुए वातावरण को एक साथ अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों के स्तर पर गीतिल गतिमयता दे देती हैं – 'फिर फैली जाती आज पिया पूनो की वही उदासी'/ 2. 'रहे या न रहे कल यह बात' / 3. 'होने दे ओ रे मितवा' जैसे कई गीतों में यह साफ दिखता है। इस प्रकार नवगीत के संस्कार एवं अत्याधुनिक अनिवार्यता की समवेत उपलब्धि के रूप में शान्ति सुमन का 'ओ प्रतीक्षित' प्रस्तुत है।

●

डॉ० शान्ति सुमन की गीति-प्रतिभा

❑ डॉ० रेवतीरमण

'राग में गीत-गोविन्द गाया जाता है, विराग में गीता गायी जाती है' – यह सूक्ति आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की है। हिन्दी में श्रेष्ठ गीत राग और विराग के इन दो छोरों पर ही लिखे गये हैं। निराला हिन्दी के सबसे बड़े गीतकार हैं तो इसीलिए कि दोनों छोरों को आत्मसात कर कई बार वे बीच की जगह भी भर पाते हैं। यह अलग बात है कि उनकी काव्य चतुरंगिनी में शुरू से अन्त तक हर साँस के साथ होने पर भी गीत आन्दोलन की वस्तु नहीं बने। डॉ० रामविलास शर्मा ने उचित ही निराला की प्रतिनिधि कविताओं का संगह 'राग-विराग' के नाम से संपादित किया था। राग का गहरा संबंध रूप से है और यह रामविलास जी के यहाँ 'रूप-तरंग' हो गया है तो आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के यहाँ 'रूप-अरूप।' डॉ० शान्ति सुमन राग और रूप ही लिखती रहीं, विराग और अरूप ने कभी उन्हें आकर्षित नहीं किया तो इसके पीछे उनकी गतिशील यथार्थ की समझ और विकसनशील वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि है। मिथिला की जनपदीय लोकचेतना और गेय संस्कार उनके गीतों में 'स्व-भाव' की तरह शुरू से ही विन्यस्त रहे हैं। उनमें माँ की लोरी और पहरुए की प्रभाती गेय रूप में सहज और प्रभाव के स्तर पर अक्सर अचूक रही है। कहीं-कहीं उत्सवधर्मी आयोजनों की स्नेहित सामाजिकता भी। **उनकी तीर की तरह नुकीली, अचूक गीति-प्रतिभा शुरू में अत्यन्त चमकदार थी, जिसका अपहरण 'नवगीत' से लगाकर जनगीत और जनवादी गीत का परचम लहराने के लिए किया गया।**

अब इसका क्या किया जाए कि गीत की प्रकृति ही एकान्त की सस्वरता है, स्वयं से सघन साक्षात्कार की है जबकि मिलनोत्कण्ठा एक सहज मानवीय प्रवृत्ति। 'आज मैं अकेला हूँ, अकेला रहा नहीं जाता' – त्रिलोचन ने लिखा था। डॉ० शान्ति सुमन में अपनी जिद पर अड़े उस अड़ियल कलाकार का अभाव रहा जो रूढ़िवादी कहे जाने का जोखिम उठाकर भी खुलकर खुद को पुनः-पुनः रच सके, टूट जाये पर झुके नहीं, अन्त तक अपनी रीढ़ पर तना रहे। **बहरहाल, मैं मानता हूँ कि शान्ति सुमन के भीतर गीत की संवेदना निश्छल है, अमिश्रित है। उनके भावावेश अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं। वे गीत रचने और उनकी सम्यक् प्रस्तुति के लिए ही बनी हैं, प्रदीर्घ संवेदनात्मक तनाव-यात्रा उनके वश की नहीं।** संभव है, जनआन्दोलनों का पीछा करने की प्रेरणा उन्हें उद्दाम युगचेतना से मिली हो। 'नवगीत' से जनगीत और जनवादी गीत की यात्रा में आन्दोलनात्मक आवेश प्रचार पाते गये हैं, पर कलाकार की स्वकीयता आहत और तिरस्कृत हुई है। मंच के प्रपंच में **हिन्दी**

गीत की यह अद्वितीय प्रतिभा आत्म-दमन से आत्म-निषेध तक की दौड़ लगाती रही है, यह त्रासद है, क्योंकि इस पूरी प्रक्रिया में एक स्त्री का संपूर्ण रचनात्मक अहसास लगातार भाव-संकोच का शिकार हुआ है। शान्ति सुमन चाहे जितने उत्साह में समूह के, अभियान के गीत लिखें, रचना के भीतर की सच्चाई है – जैविक सच्चाई कि विभिन्न संबंधों-सरोकारों के साथ एक स्त्री की प्रसन्न और उदास अभिव्यक्ति जो शुरू के गीतों में खुलकर हुई है, परवर्ती दौर में अक्सर दब-घुट गई है। माँ, बहन, बेटी, पुत्र-वधू भारतीय नारी के विभिन्न रूपों में शान्ति सुमन की स्त्री-संवेदना मिथिला के जनपदीय आधार के साथ उनके गीतों में सक्रिय रही है। उनका यह वैशिष्ट्य जबरन जुलूस में शामिल कर लेनेवालों की नजर में अनदेखा रह गया है। पर मुझे लगता है – इस कवयित्री के गीतों में वे अंश अविस्मरणीय हैं, जहाँ उनका यौवन, उनका राग, विरह-ताप और मातृकरुणा नितान्त लौकिक स्तर पर उजागर हुए हैं। उनके कथित नवगीत रोमांस-विरोधी नहीं हैं, चाहे किसी भी कोण से क्यों न देखें।

शान्ति सुमन छायावाद की महीयसी महादेवी से न मुठभेड़ करती हैं और न उनके चरण-चिह्नों का अनुसरण ही, पर कोई चाहे तो सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में उनकी जनसंबद्धता परख सकता है। खास बात यह है कि उनके गीतकार की जड़ें मिथिला में हैं। उनके गीतों में जयदेव भी हैं, विद्यापति और शुरूआती दौर के नागार्जुन भी। महादेवी के प्रगीत कल्पना-समृद्ध हैं, वे कलागीत के शिखर हैं, परन्तु उनका कोई सुस्पष्ट जनपदीय आधार नहीं है। उनमें जैसे कोई मनोरम स्त्री शरीर नहीं, वैसे ही उनका कोई व्यवस्थित भूगोल भी नहीं, हर साँस का इतिहास लिखने के दावे के बावजूद। जबकि शान्ति सुमन के गीतों में मिथिला को गंभीर रचनात्मक प्रतिनिधित्व मिला है। मैथिल संस्कृति के वे सारे उपकरण जो नागार्जुन की कविता को अमरता देनेवाले हैं, बड़े शालीन तरीके से शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय हैं।

शान्ति सुमन के गीतों में दूसरी मूल्यवान चीज है – राग संतप्तता, समूहगान रचने की अभ्यस्त सैन्य तत्परता के बावजूद, जहाँ कहीं नारी हृदय की वेदना-विह्वलता झलकती है, लक्षित होती है – गीत का रंग निखर उठता है। **कम ही सही, उन्होंने ऐसे गीत भी लिखे हैं, जिनमें उनका प्रसन्न व्यक्तित्व गेंदे के फूल की तरह अपनी आभा और रंग-गंध से राह से गुजरनेवालों के पाँवों को जड़ीभूत कर दे।** राजनीतिक लिखने में उनकी बौद्धिक ऊर्जा का अपव्यय हुआ है, ऐसा हम नहीं कहते। कविता बनाम जनपक्षधरता के द्वन्द्व में कविता का पक्ष क्रमशः उजागर होता गया है। हिन्दी में कम गीत ऐसे

लिखे गये हैं, जिनमें जनपक्षधरता हवाई मुठभेड़ नहीं, काव्य-संस्कार का बोध जगाये।

यह सच है कि कविता का वामपक्ष डॉ० शान्ति सुमन को एक जनपक्षधर कवयित्री के रूप में ही स्वीकार करता रहा है। **मिथिला की गरीबी और भुखमरी के बीच दलित उभार ने उन्हें जनपक्ष में आवेगपूर्ण और आक्रामक भी लिखने की प्रेरणा दी है।** 'नवगीत' ही नहीं 'जनगीत' और 'जनवादी गीत' – रचना के उनके अपने तर्क हैं, विचार हैं। परन्तु मुझे उनके वे आरंभिक गीत अधिक प्रीतिकर प्रतीत होते हैं, जिनमें लोकराग गहरे रचनात्मक स्तर पर व्यक्ति-व्यंजक है –

'याद तेरी गुलमुहर के फूल,
वह विजनगन्धी उदासी, अब गई है भूल
गुलमुहर के फूल।'
'गरम हथेली औ'/भींगे-से तलुवे
ऐसे ही जी उकताए-से–
पिया चुटकी न काटो !
पास-पड़ोसिन तो/बेरी की डार,
निगोड़ी पुरवैया/खींचती कटार
ऐसे ही जी घबड़ाए-से
पिया टिकली न साटो'
'सुधियों की भँवर गई डोल
हाथों में काँपता गुलाब रह गया'

शान्ति सुमन का पहला गीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' 1970 में प्रकाशित हुआ था। संख्या में भी सबसे ज्यादा गीत उसी में हैं। **सन् '42 में कवयित्री का जन्म हुआ, जिस साल महादेवी की 'दीपशिखा' प्रकाशित हुई।'** '70 के आस-पास कांग्रेस के प्रति भारतीय जनता का मोहभंग हो चुका था। एक अराजक किस्म के उथल-पुथल के दौर में शान्ति सुमन के पहले गीत-संगह को कैसी स्वीकृति मिली, मुझे नहीं मालूम। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि वह कवयित्री की उम्र का ही यौवन नहीं, उनकी गीति-संवेदना का भी उत्कर्ष-काल था। **'नव' और 'जन' के झमेले में पड़े बिना भी आलोचना में यह साहस होना चाहिए कि हिन्दी गीत की इस नई चमकदार प्रतिभा की पहचान करे, उसकी परख में रुचि ले।**

'परछाईं टूटती' (78) और 'मौसम हुआ कबीर' (85) दो अन्य संग्रह उनके परवर्ती दौर में प्रकाशित हुए हैं। आज इतने दिनों बाद इन संग्रहों से गुजरते हुए, मुझे लगता है कि 'ओ प्रतीक्षित' में जो घटित हो रहा था – तन-मन के स्तर पर, संभावित के साँचे में–बहाने से–'परछाईं टूटती' में बासी पड़ने लगा

था, स्मृति की वस्तु बनने लगा था। उमंग, उत्साह और राग-विह्वलता मुट्ठी में रेत के कणों-से फिसलने लगे थे। बाद में शेष रहा हवा में मुट्ठी भाँजना। साथ भी भजन-मण्डली थी। उस दौर में मध्यवर्गीय कुण्ठाओं के जड़-पुँज जुलूस की नारबाजी गगनभेदी हो रही थी, विश्वास प्रवंचित और साथ होने का भ्रम। 'परछाईं टूटती' में कहना अनावश्यक है कि जनबोध की शक्ल में नये-नये अलंकरण काफी जगह घेरते हैं। जो आकर्षक हैं, 'ओ प्रतीक्षित' में ही आ चुके थे। जैसे – गेहूँ की पत्तियाँ, दूब की फुनगियाँ, चिड़ियों की चोंच, भाभी के खनकते हाथों का कंगन, चम्पा, जुही, कनेर, जाल, मछेरा, मछली, इन्द्रधनुष, सूर्यमुखी, सागर आदि। प्रायः एक ठहरी हुई मध्यवर्गी दिनचर्या-जिससे निकलने को छटपटाता कवयित्री का मन –

'परछाईं टूटती
हल्दी के अंगों में उबटन सी छूटती
हवा हवा एक हुई
गीतों की टेक हुई
दूर अँधेरे में कोई कोंपल फूटती'
'बाँधा पर बँधी नहीं/अनमनी दिशाएँ'
'तुम्हें विदा करते हैं बींधते हुए
मौसम के धान ये पके हुए।'
'दुख रही है अब नदी की देह/बादल लौट आ
छू लिये हैं पाँव संझा के/सीपियों ने खोल अपने पंख
होंठ तक पहुँचे हुए अनुबन्ध के/सौंप डाले कई उजले शंख
हो गया है इन्तजार विदेह/बादल लौट आ'

गये बादल लौटते नहीं, बहरहाल। अब रह गये हैं 'यादों के खजूर' रेंगता दिन, फड़फड़ाती शामें हैं और ठण्ड ने उगा दिये हैं जंगल कुहासों के। गरज कि प्रयोगशीलता प्राणवायु की तरह है इन गीतों में और कवयित्री का मन पुनः-पुनः पीछे भागता है। ऐसे में, चाहतीं तो वे देर तक गीतों को स्मृति–समृद्ध कर सकती थीं। पर साथ की भीड़ ने उकसाया लिखने को – 'मौसम हुआ कबीर।' अनुभूति के साथ यथार्थ के अनुभव बोलने लगे गीत की प्रकृति के विरूद्ध। 'सुलगते पसीने' और 'पसीने के रिश्ते' में गीत-तन्त्र हावी है – संरचना चुस्त-दुरुस्त है – कम्युनिस्ट कही जानेवाली राजनीति से जुड़ने की लालसा और कौशल निश्छल और सुघड़ हो सकते हैं पर जब 'क्रान्ति' और 'जनउभार' ही आत्मप्रवंचना की गिरफ्त में हों तो अनुसरण करनेवाले रचनाकारों को क्या कहें ? सिवा इसके कि रचनाकार आगे बढ़ गया, रचना पीछे छूट गई। पर जो छूट गया, संभवतः वही इतिहास-विधाता को प्रिय और स्वीकार्य हो।

●

डॉ० शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि

❑ रामनिहाल गुंजन

हिन्दी की वरिष्ठ कवयित्री डॉ० शांति सुमन के जिस रूप से मैं परिचित हूँ वह मूलतः उनकी गीत-रचना से जुड़ा हुआ है और इस दृष्टि से वे हिन्दी की एक प्रतिष्ठित लेखिका के रूप में मान्य हैं। उन्होंने अपनी रचना का प्रारंभ 1965 के आस-पास किया और अब तक उनकी एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके गीतों की पहली पुस्तक 'ओ प्रतीक्षित' (1970) है, जिसमें उनके प्रारंभिक गीत संकलित हैं। उसके बाद उनके गीत हिन्दी की प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित होते रहे। इस बीच यानी 1978 से 2007 के दौरान जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं, वे हैं – 'परछाईं टूटती' (1978), 'सुलगते पसीने' (1979), 'पसीने के रिश्ते' (1980), 'मौसम हुआ कबीर' (1985), 'तप रहे कचनार' (1997), 'भीतर-भीतर आग' (2002), 'पंख-पंख आसमान' (2004), 'एक सूर्य रोटी पर' (2006) तथा 'धूप रंगे दिन' (2007)। इन पुस्तकों में उनके नवगीत और जनवादी गीत संकलित हैं, जिनसे गुजरने का अर्थ है उनकी गीत-रचना के विकास-क्रम से अवगत होना और यह उनके गीतों के मूल्यांकन की दृष्टि से जरूरी है।

उल्लेखनीय है कि शांति सुमन नवगीत आन्दोलन की उपज रही हैं, जिसका प्रारंभ 'कविता' (अलवर) के नवगीत विशेषांक से माना जाता है तथा जिसका संपादन गीतकार ओम प्रभाकर ने किया था। यों नवगीत आन्दोलन का विकास जिस रूप में हुआ उससे हिन्दी के रचनाकार बखूबी परिचित हैं। अतः नवगीत के बारे में अधिकांश गीतकारों और आलोचकों के मत समय-समय पर परिवर्तित होते देखे गये। शांति सुमन ने भी अपने गीत संग्रह 'एक सूर्य रोटी पर' की भूमिका लिखते हुए गीत में आये बदलाव की ओर संकेत किया है, जो उचित है। उनके शब्द हैं – 'कोई भी विधा कितनी भी प्रिय और जरूरी हो, दीर्घकालीन रचनानुभवों से गुजरते हुए वह कहीं-न-कहीं अपने यथार्थ को दुहराने लगती है। उसमें धीरे-धीरे मैनरिज्म आने लगता है और एक स्थिति उत्तरकाल में ऐसी आती है जब लगता है कि गीतकार कोरस लिख रहे हों। नवगीत के साथ अन्ततः ऐसा ही हुआ। वह मैनरिज्म का शिकार हो गया। एक ही नवगीतकार जैसे अपने भावों और संवेदनाओं को दुहराने लगे।' हालांकि शांति सुमन के गीतों यानी नवगीतों का सिलसिला लंबे समय तक चला और यह बात उनके जेहन में 1970 के आसपास तक मौजूद थी कि नवगीत आंदोलन का अंत अब निकट है। तथापि उनकी यह धारणा कि ''प्रगतिकाल

के कलाहीन गीतों से मुक्त होता हुआ नवगीत अपने सघन शिल्प के कारण अधिक पहचान बना सका। नवगीत को कलात्मक गीत विधा के रूप में प्रतिष्ठित होने का श्रेय प्राप्त है'' – आज भी उनके जेहन में बैठी हुई है, जो आकस्मिक नहीं है। यही कारण है कि उनके गीतों में नवगीत-रचना के संस्कार बहुत दूर तक पीछा करते रहे और बाद में उन्होंने जो गीत लिखे उनमें जनवादी गीत-रचना के तत्त्व जरूरी तौर पर लक्षित हुए, जिनको रेखांकित करना भी जरूरी है। शांति सुमन के गीतों की चर्चा करने से पूर्व इस बात का उल्लेख करना जरूरी प्रतीत होता है कि नवगीत आंदोलन से पहले भी नवगीत लिखे जा रहे थे जिसके उदाहरण के रूप में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और शील जैसे रचनाकारों के गीत प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये कवि नयी कविता के काल के ही हैं, जो निराला की गीत-परंपरा को आगे बढ़ानेवाले सिद्ध हुए। वैसे प्रगतिकाल में भी कुछ अच्छे गीत लिखे गये थे, जिनका कोई विकल्प परवर्ती गीत-रचनाओं में उपलब्ध नहीं होता। दरअसल लोकचेतना और प्रगतिशील काव्य-तत्त्वों के आधार पर ही कोई कविता या गीत-रचना खड़ी होती है तथा जीवन को समग्रता में प्रस्तुत करती है। उनके अभाव में ही नई कविता, प्रयोगशील कविता और नवगीत जैसे आंदोलनों का असमय अवसान हुआ, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

लिहाजा नवगीत के बरक्स जनवादी गीत-रचना को महत्व देते हुए शांति सुमन ने छायावाद, नवगीत और जनवादी गीतों का तुलनात्क दृष्टि से विवेचन करते हुए ठीक ही लिखा है – ''छायावाद ने नवीन शिल्प और नये छंदों से कविता की एकरसता को तोड़ा था, नवगीत ने अकलात्मक गीतों के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हुए नयी रचना–शक्ति का परिचय दिया। जनवादी गीतों ने उससे भी आगे जाकर अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावाद का परिचय दिया। अपनी धर्म-निरपेक्ष छवि का परिचय देते हुए मनुष्य की विशेषकर शोषित-पीड़ित और दलित जन की मुक्ति के लिए गीतों को हथियार के रूप में प्रस्तुत किया।'' **जाहिर है जनवादी अथवा जनगीतों के प्रति डॉ० सुमन का रूझान देश और समाज के प्रति प्रगतिशील अवधारणा के तहत हुआ, जिसका विकास उनके परवर्ती गीतों में खासतौर से देखा जा सकता है।** यों नवगीत के शिल्प में लिखे उनके कई गीत बाद के संग्रहों में भी शामिल हैं, जिनकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

1. *यह भी हुआ भला*
   कथरी ओढ़े तालमखाने
   चुनती शकुन्तला
   (एक सूर्य रोटी पर)

2. *तू गाती है नदी*
   तो लगता गाता है मौसम
   (गाती है नदी)

3. *यह कपास सी सुबह*
   रात खादी कुरते सी
   कटी फसल की महक
   लगे अनलिखे पते-सी
   चांदी की हंसुली यों तोड़ गये
   हरिजन जैसे दिन
   (हरिजन जैसे दिन)

जाहिर है इन गीतों की पंक्तियों में जो विम्ब और प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं, वे मूलतः नवगीत के संस्कारों से अनुप्रेरित हैं। यों डॉ० सुमन के गीतों में वैसे कई स्थल मिलेंगे, जहाँ नवगीत में जनवादी गीत के तेवर के दर्शन प्रायः होते हैं। इसलिए कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे गीत भी इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि वे मूलतः नवगीत लेखिका हैं, **लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह उनका स्थायी भाव नहीं है। उनके बाद के गीतों में जनवादी और प्रगतिशील तत्त्वों का समावेश आवश्यक रूप में लक्षित किया जा सकता है।** जहाँ तक शांति सुमन के गीतों में सामाजिक यथार्थ के चित्रण की बात है, उस संबंध में उनके गीतों की भाषा, शिल्प और अन्तर्वस्तु के औचित्य पर बातचीत की जा सकती है जिससे उनके गीतों के विकास का पता चल सकता है। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि जनवादी गीतों या जनगीतों की भाषा और शिल्प नवगीतों की शब्दावली और शिल्प से भिन्न होने के कारण भिन्न काव्यात्मक आस्वाद देते हैं जिसके कारण इस प्रकार के गीत नवगीत की कोमलकान्त पदावली की अपेक्षा ठोस जीवन के खुरदरे यथार्थ को व्यंजित करनेवाली शब्दावली को ज्यादा महत्व देते हैं। इन गीतों की रचना का अभिप्राय भी इसीलिए नवगीत-रचना के अभिप्राय से भिन्न होता है। नवगीत, वास्तव में 'स्वांतःसुखाय' और वैयक्तिक आशा-आकांक्षा तथा कलावाद को ज्यादा प्रश्रय देते हैं। यह बात अलग है कि कभी-कभी उनमें सामाजिक यथार्थ की जाने-अनजाने अभिव्यक्ति दिखाई पड़ जाती है। फिर भी उनकी भाषा और शिल्प की सीमा भी है, जिसके कारण उनमें जन-जीवन के खुरदरे यथार्थ की अभिव्यक्ति भी सरस रूप में संभव हो पाती है और इस रूप में यानी 'शुष्को वृक्षः तिष्ठति अग्रे' की जगह 'नीरस तरूरिह विलसति पुरतः' का ही चित्र उपस्थित हो पाता है। इस प्रकार देखा जाय तो नवगीत की

यह बहुत बड़ी सीमा थी, जिसे देखते हुए उसके आन्दोलन का असमय अवसान आकस्मिक और अकारण नहीं माना जा सकता। तथापि नवगीत-रचना की सार्थकता के कतिपय बिन्दुओं की तलाश कर उन पर बातचीत करने की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता।

जहाँ तक शांति सुमन के जनवादी गीतों की रचना-प्रक्रिया की बात है, यह गौरतलब है कि उनके गीत जन-जीवन के सुपरिचित दायरे में प्रवेश करने से पूर्व गीतकर्त्री की कला-दृष्टि से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। फलतः उनके जनवादी गीतों में कलात्मकता अथवा कलात्मक अभिव्यक्ति की संभावना बढ़ जाती है। इस प्रसंग में उनके जनवादी गीतों की, उदाहरण के बतौर, कुछ पंक्तियाँ देखें –

1. *फसल काटने के दिन आये*
   परब जगे
   हंसिया मचल रहा हाथों में
   झूमे वाली कानों की
   जलती सिन्दूरी मशाल
   होठों पर धुन गाने की
   पिछले दुख रह–रह गहराये
   कठिन लगे

   (हंसिया मचल रहा)

2. *लौटेंगी बच्चों की खुशियाँ*
   तो जीवित होंगे सपने
   रोजी–रोटी की खातिर अब
   अलग न होंगे अपने
   खबरें फैला रही यहाँ
   फूलों की लाल पँखुड़ियाँ
   नये मौसम के हाल पर

   (जीने के इरादे)

3. *हम लोहे लोहों के गीत लिखेंगे*
   मिहनत को भालों पर स्वयं रचेंगे
   .....पेट पीठ से मिले नहीं अब यही लिखेंगे
   .....हम अपने घर–बार क्रांति के नाम लिखेंगे

   (लोहों का गीत)

4. *जनम से ही पढ़ रहे हम*
   भूख के ककहरे
   .....याद आते नहीं मौसम
   होलियाँ – दशहरे

   (भूख के ककहरे)

जाहिर है ऊपर की पंक्तियों में काम करती स्त्रियों के चेहरे पर जलती सिन्दूरी मशाल का प्रतीक उनके संघर्षशील जीवन का बोध कराता है। दूसरे गीत में अपने गांव-शहर में ही अब कामगारों को काम मिलेंगे, इसी आशा से सभी कामगार खुश हैं। इस कारण उन्हें अब अपने बच्चों से रोजी-रोटी के लिए अलग नहीं रहना पड़ेगा। इसी प्रकार अगली पंक्तियों में मेहनतकशों के गीतों के बहाने इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि मेहनतकश अवाम दरअसल लोहे की प्रकृति के होते हैं, जो प्रायः अपनी मिहनत के बल पर मनुष्य के संघर्षों का गीत लिखा करते हैं। वे अपना अलग इतिहास भी रचते है। उनका यह संकल्प कि वे अपने श्रम की बदौलत यह साबित कर देंगे कि भविष्य में कोई भूखों नहीं मरेगा और न किसी का पेट पीठ से मिलेगा। इन पंक्तियों से गुजरते हुए सहसा निराला की 'भिक्षुक' कविता का यह भाव-चित्र उपस्थित हो जाता है – 'पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक/चल रहा लकुटिया टेक/मुट्ठी भर दाने को/भूख मिटाने को/मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता।' आखिरी गीत-पंक्तियों में वैसे अभावग्रस्त श्रमजीवी परिवारों के बच्चों के लगातार भूख से उत्पीड़ित होने की बात कही गई है तथा जिसे कलात्मक रूप में गीत में चित्रित किया गया है। इस प्रकार देश में तैयार हो रही भूखों की पीढ़ी का गीत लिखा जाना इस बात का सूचक है कि वही पीढ़ी आगे चलकर अपने घर-बार क्रांति के नाम लिखने को तैयार होगी। इस प्रकार भूख के ककहरे से जीवन का प्रारंभ करनेवाली पीढ़ी का चित्र अंकित कर डॉ० सुमन ने यथार्थवादी गीत-रचना के सार्थक बिन्दुओं की ओर संकेत किया है। यों अन्य कई गीतों में सामान्य जन-जीवन, निम्न मध्यवर्ग और सर्वहारा-वर्ग की जीवन-स्थितियों का चित्रण प्रमुख रूप से प्रस्तुत हुआ है। इस दृष्टि से 'धूप रंगे दिन' में संगृहीत गीतों – 'मुनिया के घर का सूरज', 'बड़े लाल घर में', 'मजदूर माँ की लोरी', 'उदास आँखें', 'फटेहाल हम', 'रोटी के बीज', 'पहचान बनो' तथा 'एक सूर्य रोटी पर' में संकलित 'राजनीति का सलीब', 'बेरोजगार हम', 'आँखों में आग', 'वक्त का पैमाम', 'कसी हुई मुट्ठीवालों की कतारें', 'लोहे की जंजीरें', 'भूख है हथियार', 'लोहों का गीत', 'खेत हमारे हाथ', 'निम्न मध्यवर्ग का गीत', 'अकाल में बच्चे', 'आस्था का गीत' आदि को जनवादी गीतों के रूप में

रेखांकित किया जा सकता है। वैसे इन गीतों की रचना के पीछे कवयित्री का जो भी उद्देश्य रहा हो, इतना अवश्य है कि ये गीत उनकी चेतना के विकास की सूचना देते हैं तथा इस बात का अहसास कराते है कि जब भी कोई कविता या गीत जनता की आशा-आकांक्षा को लक्ष्यकर लिखा जाता है, उसमें जनधर्मी विम्बों और प्रतीकों का इस्तेमाल प्रमुखता से होने लगता है। शांति सुमन के गीतों की भाषा और शिल्प में आये बदलाव अथवा क्रमिक विकास को भी इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए। हालांकि उनके जन गीतों की भाषा और शिल्प पर नवगीत का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। इसका अर्थ यह है कि वे चाहकर भी उसके संस्कारों से बिल्कुल मुक्त नहीं हो पातीं जो एक प्रकार से उनकी भाषागत व शिल्पगत सीमा का सूचक है। फिर भी इन गीतों के जरिये वे निश्चित रूप से नवगीत के कतिपय मुहावरों को तोड़ने का काम भी करती रही हैं और यही उनके गीतों – जनवादी गीतों की सार्थकता है।

गौरतलब तथ्य यह है कि शांति सुमन ने गीत-रचनाओं के विकास-क्रम में शोषित-उत्पीड़ित जनता, नारी-वर्ग तथा बच्चों के वर्तमान एवं भविष्य के प्रति अपनी सहज और स्वाभाविक चिन्ता जाहिर करते हुए इस बात की ओर संकेत किया है कि आनेवाले समयों में इनके दुःखों और समस्याओं का निश्चय ही अन्त होगा। और **सच पूछिये तो शांति सुमन के ऐसे ही आस्थावादी गीतों के जरिये उनके जनवादी चिन्तन और जनपक्षधरतापूर्ण लेखकीय दायित्व की सूचना मिलती है। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो उनके समग्र गीत साहित्य का उचित मूल्यांकन जरूरी प्रतीत होता है।** इस दिशा में सजग लेखकों- आलोचकों के रचनात्मक प्रयत्न की आवश्यकता बनी रहेगी।

●

टूटें न तार...!

❑ सत्यनारायण

गीत के फलक पर शान्ति सुमन का आविर्भाव एक घटना है। जी हाँ, एक घटना। ऐसा कहकर मैं उन्हें महिमामंडित नहीं कर रहा। मेरे पास इसके ठोस और वाजिब आधार हैं। शान्ति सुमन के प्रारंभिक दौर से मैं उनकी रचना-यात्रा को देखता-परखता रहा हूँ। इस क्रम में वे कई तीखे मोड़ों और घुमावदार घाटियों से गुजरी हैं। अनेक सँकरी सुरंगें भी आई हैं। नवगीत से जनगीत तक के लंबे सफर में कवयित्री की गीतधर्मिता पर कई खरोंचें भी साफ देखी जा सकती हैं। ठोस वैचारिकता का आत्यंतिक मोह कई स्थलों पर उनके गीत-कर्म को आहत कर गया है। माना ये बातें अवान्तर नहीं हैं। लेकिन प्रमुख भी नहीं हैं। प्रमुख हैं, अपने समय की चुनौतियों से टकराना, निरन्तर अमानवीय होती जा रही जीवन-स्थितियों से जूझना और हमें उनसे मुठभेड़ के लिए तैयार करना। मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि शांति सुमन की सृजनधर्मिता ने पैंतीस-चालीस वर्षों की यात्रा में गीत के धरातल पर अपना होना प्रमाणित किया है।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि शान्ति सुमन को शुरूआती दौर से सुनता-पढ़ता आया हूँ। सुना है काव्य-मंचों से और पढ़ा है स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं और गीत के प्रतिनिधि संकलनों में। तात्पर्य यह कि कवयित्री ने पत्र-पत्रिकाओं में छपकर अपनी स्पष्ट पहचान बनाई तो साथ ही काव्य-मंचों से कविता की वाचिक परंपरा को समृद्ध करती रहीं। सही है कि आज मंच से कविता पढ़ना प्रतिष्ठा की बात नहीं रही। सिर्फ मंच की बदौलत तालियाँ बटोरने वाली कवयित्रियों के बारे में तो आम धारणा है कि वे खुद नहीं लिखतीं, उनके लिए कोई और लिखता है। ऐसे में एक जेनुइन कवयित्री के लिए मंच से कविता पढ़ना जान बूझकर खतरा मोल लेना था। किन्तु, सुमन ने मंचों से कविता पढ़ने का खतरा मोल लिया। उनके पास शब्द की सामर्थ्य भी रही और स्वर का सम्मोहन भी। वे गाती नहीं हैं, गीत का सस्वर पाठ करती हैं यानी 'रिसाइट' करती हैं। पाठ में आरोह-अवरोह नहीं होता, न खींच-तान होती है। लटके-झटके तो एकदम नहीं। गीत पढ़ते समय उनका स्वर शुरू से अन्त तक एक 'पिच' पर बना रहता है। शायद यही कारण है कि काव्य-पाठ के अखिल भारतीय आयोजनों में उन्हें बुलाया जाता रहा है और काव्य-प्रेमी उन्हें स्नेह और सम्मान के साथ सुनते-सराहते रहे हैं। ऐसा नहीं है कि सुमन हिन्दी कवि-सम्मेलनों की मौजूदा गिरावट से अनजान हैं। किसी और संदर्भ में लिखी गई उनकी यह गीत-पंक्ति आज के कवि-सम्मेलनी माहौल को

भी उजागर करती है, 'रोपे तो / शीशम के पेड़ गए / फूले हैं / यहाँ पर बबूल / ' काश, मंच लूटनेवाले तालियों के तलबगार हमारे धाकड़ कवि यह समझ पाते कि काव्य-मंच से कविता पढ़ना और उसे सामने बैठे हजारों श्रोताओं तक पहुंचाना एक जरूरी सामाजिक दायित्व और सांस्कृतिक कर्म है। आज कवियों का एक 'एलीट' वर्ग बन गया है जो कविता को 'एलीट' श्रोताओं तक ही सीमित रखना चाहता है। वे भूल जाते हैं कि कवि-सम्मेलनों में जाकर हम हर वर्ग के श्रोताओं को अपनी रचनाओं से जोड़ते-जुड़ते हैं। साथ ही, कविता मात्र के प्रति श्रोताओं की रूझान में हम इजाफा करते हैं और रूचि का परिष्कार भी। मेरा दृढ़ मत है कि कवि-सम्मेलनों के स्तर में गिरावट के बावजूद आज भी तीस से पचास प्रतिशत श्रोता अच्छी कविताएँ सुनने की लालसा लेकर आते हैं। ऐसे में काव्य-मंचों का बहिष्कार अपने सामाजिक दायित्व का बहिष्कार है, अपने कवि-कर्म से विमुख होना है। अगर सही लोग काव्य-मंचों से परहेज करेंगे तो गलत लोगों का काबिज होना लाजिमी है। और याद रखिए, इसके पहले जिम्मेदार ये 'सही लोग' ही हैं। शान्ति सुमन कुछेक सही लोगों में हैं जो मंचों से कविता पढ़कर अपना कवि-धर्म निभाती रही हैं। इसके लिए न इन्हें कोई संशय रहा है, न कोई अपराध-बोध। 'एलीट' मानसिकता वाले तर्क प्रवण कवि चाहे जो कह लें, सुमन जानती हैं –

कोई बात छिपी है फूलों के मन में
साँसों में अब नहीं उतरता मौसम है

शान्ति सुमन की गीत-यात्रा पर दृष्टि डालता हूँ तो एक सुकून का अहसास होता है। इनका पहला गीत-संग्रह – 'ओ प्रतीक्षित' – वर्ष 1970 में आया था। तब से थोड़े-थोड़े अन्तराल पर इनके लगभग दस संकलन (2007 तक) प्रकाशित हो चुके हैं। 'भीतर-भीतर आग' के फ्लैप पर छपे परिचय में इनकी कृतियों को वर्गीकृत किया गया है। इसके अनुसार 'ओ प्रतीक्षित' (वर्ष 1970) और 'परछाईं टूटती' (वर्ष 1978) नवगीत संग्रह है। शेष सभी जनवादी गीत-संकलन। इस वर्गीकरण में 'नग्मों की हकीकत कितनी' है, इसकी पड़ताल आलोचक करें। पाठक के लिए तो गीत की मर्मस्पर्शिता मायने रखती है। खैर, यह अलग से विचार का विन्दु है।

'ओ प्रतीक्षित' संकलन 1970 में प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित कई गीत श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में छपकर ध्यान आकृष्ट कर चुके थे। यह दौर नवगीत के उन्मेष का दौर था। उन्मेष अकारण नहीं था। यदि शम्भुनाथ सिंह की मानें तो नवगीत कोई आंदोलन नहीं था। यह तो नई कवितावादियों द्वारा गीत पर किए जा रहे घातक प्रहार का परिणाम था। गीत की अस्मिता पर उंगलियाँ उठाई गईं। उसके अस्तित्व को नकारा जाने लगा। तब गीत के पक्ष में खड़ा होना

खतरों से भरा एक साहसिक रचनात्मक पहल थी। किसी नई प्रतिभा के लिए तो गीत लिखना अपने भविष्य को दाँव पर लगाना था। ऐसे में बिहार के एक छोटे से शहर, मुजफ्फरपुर से नई उम्र की एक कवयित्री ने अपने को बेहिचक दाँव पर लगाया और नवगीत के पक्ष में यह कहती उठ खड़ी हुई –

रही खटकाती सपन के द्वार
सारी रात, सारी रात
एक भटकी चाँदनी के लिए

'एक भटकी चाँदनी' वस्तुतः गीत की राग-दीप्त चेतना है जो नई कविता के शोर में कहीं भटक रही है। 'सपन' गीतधर्मिता का स्वप्न है जिसे पटरी पर लाने के लिए कवयित्री 'सारी रात' दरवाजे पर दस्तक दे रही है। यहाँ 'सारी रात' की पुनरावृत्ति भी अकारण नहीं है। इस जद्दोजहद में पूरी रात सक्रिय है।

मेरा मानना है कि गीत की चेतना घर-आंगन, पास-पड़ोस से चलकर अपने समय और समाज तक जाती है। गीत का स्वर अपनी रागधर्मिता में मूलतः जीवनधर्मी है। घर-परिवार से जुड़े मीठी संवेदनाओं से भरे-भरे शान्ति सुमन के कई सरल-तरल गीत आत्मीयता का अहसास कराते हैं। उनका एक गीत है 'पूरी पृथ्वी माँ'। पंक्तियाँ हैं –

तू पूरी पृथ्वी हो माँ
सपनों में रोज सुलगती
ऊपर-ऊपर ठोस मगर
भीतर से बहुत धधकती

.....तेरे शब्द बिना माने भी
कितनी दूर तलक जाते थे
अपनों से मिलने की खातिर
अपने से ही हट जाते थे
घर के पौधे की खातिर तू बनी स्वयं ही खाद

माँ को पूरी पृथ्वी कहकर उस जीवन्त परम्परा को रेखांकित किया गया है जिसकी जड़ें हमारी संस्कृति में बहुत गहरी हैं। घर के पौधे की खातिर माँ का स्वयं खाद होना अनूठी उक्ति तो है ही, साथ ही इस तथ्य की ओर संकेत है कि परम्परा से जुड़कर भी आधुनिक हुआ जा सकता है। बिना माने भी माँ के शब्दों का दूर तलक जाना ममत्व के असीमित विस्तार का पता देता है। इस शृंखला में आत्मीय अनुभूतियों से धड़कता शान्ति सुमन का एक सरल, तरल गीत 'धीरे पाँव धरो', बरबस याद आ रहा है। इसकी मीठी तलस्पर्शी संवेदना एक नैसर्गिक संगीत-सा बज उठता है। नव विवाहिता

बिटिया ससुराल से पहली बार मायके आई है। पान-फूल सी बिटिया, लवंग-सुपारी सी बिटिया। सुयोग्य घर-वर के लिए माँ-बाबूजी ने न जाने कितने-कितने सपने देखे थे। निर्जल व्रत रखा था। पितर मनाया था। आज वही बिटिया घर लौटी है। मांग में दपदप करता सुहाग-सिन्दूर। माथे पर चकमक बिन्दी। कलाई पर खनकती चूड़ियाँ। पाँव में महावर की लाली। पिता-गृह मंत्र-सिद्ध तपोवन। पंक्तियाँ देखिए। शब्द, जैसे पेड़ में नए पत्ते आते हैं, जैसे अभी-अभी खिले पुष्प में सुगंध रच-बस जाती है –

धीरे पाँव धरो
आज पिता-गृह धन्य हुआ है
मंत्र सदृश उचरो!
तू अम्मा के घर की देहरी
बाबूजी की शान
तू भाभी के जूड़े का पिन
भैया की मुस्कान
.....जीवन की अल्पना रचेंगे
सुख के मीन-मयूर
लहठी वाले हाथ रचेंगे
माथे का सिन्दूर
पितरों के गौरी-गणेश को
पूजो, वरण करो

उपर्युक्त पंक्तियों को उद्धृत करने के बाद अलग से किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। यही तो गीत का अन्तरंग है जो कवयित्री के मर्म से निकलकर पाठक के मर्म को आलोड़ित कर जाता है।

प्रकृति आदिकाल से ही कविता का उपजीव्य रही है। उसका सौन्दर्य, उसमें संचरित जीवन कवि-मन को बाँधता रहा है। गीत के कवि ने बढ़-चढ़कर प्रकृति को अपनी रचना का धरातल दिया है। यह अकारण नहीं है। उसे गहरा विश्वास है कि जब सब साथ छोड़ देंगे तब भी बादल का कोई टुकड़ा, बारिश की कोई बूँद, फूल की कोई पँखुरी, दूब की कोई पत्ती उसकी व्यथा-कथा सुनने से इनकार नहीं करेगी। आज के गीत-कवि ने प्रकृति के सौंदर्य और सुषमा को संजीवनी के रूप में ग्रहण किया है। शान्ति सुमन ने अपने एक गीत में 'फागुन के दिन' की अनुभूति कुछ इस तरह व्यक्त की है –

अलसाने लगे फागुन के दिन
फागुन के
धूप–छंद रचकर सिरहाने

रात लगी मंजीर बजाने
महुआने लगे पातों के तन

कभी जानकीवल्लभ शास्त्री ने अपने एक प्रसिद्ध गीत में रोएँदार तन का चित्र (अंग-अंग फूले कदम्ब सम) उकेरा था। मौजूदा दौर की कवयित्री ने 'पातों के तन' के 'महुआने' की बात कहकर अपनी सौंदर्य दृष्टि को रेखांकित किया है। महुआ की गंध बड़ी मादक होती है। ऐसे में तन का अलसाना लाजिमी है। ऐसी ही मनःस्थिति की मुझे अपनी एक पंक्ति 'ये डगमग-से दिन मासूम गुनाहों के' सहसा याद आ रही है। किंतु शान्ति सुमन की गीत-चेतना इस सौंदर्य-बोध का अतिक्रमण भी करती है। उन्होंने प्रकृति को माध्यम बनाकर आज के जटिल और भयावह यथार्थ को इस तरह अभिव्यक्त किया है –

रोपे तो शीशम के पेड़ गए
फूले हैं यहाँ पर बबूल!
और बड़ी हो गईं छायायें
दुबली रोशनियों की देह
पथराई प्रतीक्षा ले पुतलियां
रूई से उड़ते हैं दुखियारे नेह
लोहे के सूर्य और चाँद हुए
दूब धान नहीं हैं कबूल

आज प्रेम की कविताओं के लिए कर्फ्यू की स्थिति पैदा कर दी गई है। कविता को लेकर क्रांति की हड़बड़ाहट में आकुल-व्याकुल रहनेवाले कवि और तर्कबुद्धिप्रवण आलोचकों की मानें तो प्रेम की कविता लिखना संगीन जुर्म है और ऐन्द्रिक प्रेम की कविताएँ लिखना तो पाप-कर्म। इनके लिए प्रेम (एन्द्रिक प्रेम भी) की कविताएँ लिखनेवाले कवि 'समय से बाहर' के कवि हैं। सच्चाई यह है कि कविता किसी अखबार की ताजा खबर नहीं है जो अभी-अभी पढ़ी जाए और अभी-अभी नष्ट भी कर दी जाए। हम भूल जाते हैं कि प्रेम मनुष्य की सबसे बुनियादी और सृजनशील अभिलाषा है। प्रेम कोई अजूबा तत्त्व नहीं है जिसके लिए सबकुछ छोड़-छाड़कर मर मिटा जाए। उसे सबकुछके साथ ही जिया जाता है। दूसरी सच्चाई यह भी है कि प्रेम की कविता प्रेम से बड़ी होती है। शांति सुमन शायद इस तथ्य से नावाकिफ नहीं है। उन्होंने प्रेम और ऐन्द्रिक प्रेम के अनेक गीत लिखे हैं। इनमें कुछेक निश्चित रूप से पठनीय हैं। ऐन्द्रिक प्रेम को मूर्त करती इन पंक्तियों का सहज सम्मोहन द्रष्टव्य है –

सौ आमंत्रण बजे स्नेह के
बरसे रंग सुहाग के
यह कैसी कोमलता, आँखें

सजल सलज अनुराग से
थर-थर कँपते से होठों पर
लगता पूर्ण विराम है.....
तन्मय चुम्बनसिक्त अधर पर
लिखा तुम्हारा नाम है

स्नेह से सिक्त 'सौ आमंत्रण', 'अनुराग से रंजित सजल-सलज आँखें, थरथराते होठों पर अंकित पूर्ण विराम और चुम्बनसिक्त अधर तन्मयता के अबोले प्रगाढ़ ऐन्द्रिक प्रेम को मूर्त कर रहे हैं। शान्ति सुमन की एक गीत-रचना 'बादल लौट आ' एक पृथक कोण से ऐन्द्रिक प्रेम को स्वर देती है। इसमें सीपियों ने अपने पंख खोल रखे है। होंठ तक पहुँचे हुए अनुबंध हैं, बैंजनी नदियाँ, कत्थई हवा और गेरू से नयन के गीत हैं। ऐसे में जब 'खेत के रेह' पतले हो रहे हैं और इंतजार विदेह हो रहा है तब नदी की देह का दुखना अकारण नहीं है। इसीलिए 'बादल लौट आ'। यह मेरा पसंदीदा गीत है। और मुझे अपनी पसंद पर प्रसन्नता तब हुई जब मैंने 'श्रेष्ठ हिन्दी गीत संचयन' (प्रकाशक, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली) में इसे छपा देखा। सुमन के इस अनूठे गीत को मैंने केदारनाथ अग्रवाल के प्रसिद्ध गीत 'माँझी, न बजाओ वंशी' और 'आज नदी बिल्कुल उदास थी' के गीतों के समकक्ष रखकर बार-बार पढ़ा और सराहा है। कुछ पंक्तियाँ आप भी देखें –

दुख रही है अब नदी की देह
बादल लौट आ
छू लिए हैं पाँव संझा के
सीपियों ने खोल अपने पंख
होंठ तक पहुँचे हुए अनुबंध के
सौंप डाले कई उजले शंख
हो गया है इन्तजार विदेह
बादल लौट आ

जैसा मैंने प्रारम्भ में कहा है, शान्ति सुमन ने नवगीत से जनगीत तक का लम्बा सफर तय किया है। ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ और क्या हुआ, इसे मैंने चुप रहकर ही सही, ध्यान से देखा परखा है। वह दौर नवगीत के उन्मेष का दौर था। तब उमाकान्त मालवीय, ओम प्रभाकर, नईम, देवेन्द्र कुमार, रामचन्द्र चन्द्रभूषण जैसे कई गीत-कवि नवगीत की अस्मिता प्रतिष्ठित कर रहे थे। वाराणसी से शम्भुनाथ सिंह, मुम्बई से वीरेन्द्र मिश्र और मुजफ्फरपुर से राजेन्द्र प्रसाद सिंह नवगीत के पक्ष में युद्ध-स्तर पर जूझ रहे थे। कलकत्ता से चन्द्रदेव सिंह और महेन्द्र शंकर के सम्पादन में गीतों का

प्रतिनिधि संकलन 'पाँच जोड़ बाँसुरी' फलक पर आ चुका था। तभी मुजफ्फरपुर की एक युवा कवयित्री ने अपने नवगीत संग्रह के साथ अपना होना प्रमाणित किया। कवयित्री थी, शान्ति सुमन और संग्रह था 'ओ प्रतीक्षित।' उस दौर में ये उमाकान्त मालवीय से खासा प्रभावित थीं और उमाकान्त उनकी नवगीतधर्मिता को प्रेरित-प्रोत्साहित करते रहे। सुमन स्तरीय पत्र पत्रिकाओं में छपती रहीं और कवि सम्मेलनों में भी शामिल होती रहीं। पत्र-पत्रिकाओं ने उन्हें पहचान दी और काव्य मंचों ने लोकप्रियता। फिर नचिकेता उनके संपर्क में आए। तब नचिकेता मुंगेर में थे और नवगीत की पत्रिका 'अन्तराल' का सम्पादन करते थे। रमेश रंजक के सान्निध्य ने नचिकेता को जनवादी गीतों की तरफ मोड़ा और नचिकेता ने शान्ति सुमन को। जनवाद की ललक इस तरह सिर चढ़कर बोलने लगी कि नचिकेता के साथ उनक साझा संकलन (सुलगते पसीने, पसीने के रिश्ते) प्रकाशित हुए। अपनी टिप्पणियों और आलेखों में वे जनवाद की पुरजोर हिमायत करने लगीं। आज जब रचना पर मार्क्सवादी विचारधारा हावी हो रही है और आलोचना एकपक्षीय तब खुद को चर्चा में बनाए रखने के लिए शान्ति सुमन का कायाकल्प यों ही नहीं है। मार्क्सवाद एक विचारधारा है, अंतिम सत्य नहीं। मैं मार्क्सवाद को एक सीमा तक ही स्वीकार कर पाता हूँ। अगर मुक्तिबोध, शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन महत्वपूर्ण कवि हैं तो क्या अज्ञेय, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही, दिनकर महत्वहीन हैं ? क्या समकालीन हिन्दी कविता का परिदृश्य केवल वामपंथी कवियों तक ही सीमित है ? मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति जड़ प्रतिबद्धता का ही नतीजा है कि हमारे वामपंथी 'शिखर आलोचक' को सुमित्रानंदन पंत में कूड़ा-करकट और दिनकर में केवल गर्जन-तर्जन और फेन नजर आता है। क्या मार्क्सवाद से असहमति रखना समाज विरोधी होना है ? किसी विचारधारा से असहमति रखना किसी मनुष्य और लेखक का बुनियादी अधिकार है।

विचारधारा के प्रति शान्ति सुमन का आग्रह किस हद तक उनके गीत-कर्म को पुष्ट कर पाया है, इसकी पड़ताल एक पृथक और विस्तृत आलेख की माँग करती है। फिलहाल यहाँ यह संभव नहीं है। जनवादी मूल्यों से जुड़े शान्ति सुमन ने गीत अवश्य लिखे हैं। लेकिन उनके कई गीत संकलन प्रकाशित हो जाने के बाद भी उनकी संख्या कम है। इस कोटि का एक गीत है 'मजदूर माँ की लोरी'। यह मद्धिम आँच में पकाया गया गीत है जो सलीके से गरमाहट देता है –

लिख मेरे बेटे एक, दो, तीन
लिख पढ़ के पहचानेगा जमीन

दादी की लोरी में गंगा का पानी
सूखा-सा कुआँ और चूती यह छानी
सोन हाथों से तू पाथर बीन

'सोन हाथों' से 'पाथर' बीनने में श्रम की कौंध के साथ बेहतर कल के लिए एक दृढ़ संकल्प और निष्कम्प आस्था है। इस सिलसिले का ही एक उल्लेखनीय गीत है 'सूर्य को प्रणाम'। इस गीत में संघर्ष की चेतना कवयित्री के काव्य-विवेक के साथ मूर्त हुई है –

चक्कियाँ चलाती अपनी माँएँ
आटा-आटा होकर रह गईं
जोहती रहीं कुछ उनकी आँखें
काठ के बुरादे-सी ढह गईं

आओ, अपना पथ मोड़ते हुए
नदी को प्रणाम हम करें
.....झरने की तरह पर्वत फोड़ते हुए
फूल को प्रणाम हम करें

यदि हम कुछ रचनामक करने के कायल हैं तो निश्चय ही घिसे-पिटे रास्ते को छोड़कर झरने की तरह पहाड़ों की कैद से निकलना होगा। संघर्ष की शुरूआत के लिए, मानव-जीवन की बेहतरी के लिए हर घड़ी शुभ होती है। केदारनाथ अग्रवाल कह गए हैं, **'साइत और कुसाइत क्या है। जीवन से बढ़ साइत क्या है।'** कवयित्री का 'पेड़' शीर्षक गीत मार्क्सवादी सोच को रचनात्मक विवेक के साथ सामने रखता है –

इस तरह होते बड़े ये पेड़
नहीं केवल चुप खड़े ये पेड़.....
जड़ों से बेहद कड़े ये पेड़

मैं कह चुका हूँ विचारधारा को काव्य-विवेक से भावित और अनुशासित करनेवाली गीत-रचनाओं की संख्या कम है। सुमन के कई गीत विचारधारा के अतिरेक से आक्रान्त है। उनमें कविता नहीं, कोरी विचारधारा है। मसलन –

पहले तेरी कुरसी पर हम फूल चढ़ाते थे
अब तेरी कुरसी पर हम बारूद बिछा देंगे
पहले अपने कर्ज में हम जान गँवाते थे
अब कर्जे की खातिर तेरी जान वसूलेंगे
(जंगल के कानून)

विचारधारा का अतिरेक तो एक गीत में गाली तक उतर आया है। 'लाल पसीना' कुछ इस अन्दाज में चू रहा है –

मौसम बड़े कमीने
शाखों पर फूलों को देते
नहीं कभी ये जीने!
.....सुर्ख सुबह यह मगर नहीं
बेचेगी लाल पसीने

जीवन की बजाय ठोस वैचारिकता से आहत कविता बड़े कवियों में भी देखी जा सकती है। शमशेर बहादुर सिंह विशुद्ध सौन्दर्य और प्रेम के एक अद्वितीय कवि हैं। 'वैयक्तिक प्रणय की मार्मिक मनुहार' से धड़कती उनकी पंक्तियाँ हैं, 'लौट आ/ओ फूल की पंखड़ी/फिर/फूल में लग जा/' वही शमशेर जब यह लिखते हैं –

'वाम, वाम दिशा, समय साम्यवादी।'

तो लगता है, हम कविता नहीं, मार्क्सवाद का मेनिफेस्टो पढ़ रहे हैं। खैर।

शांति सुमन की गीत-चेतना ने एक लम्बी यात्रा तय की है। उनकी यात्रा आज भी चल रही है, अविराम और अप्रतिहत। यहाँ मुझे उमाकान्त मालवीय अपनी पंक्ति के साथ याद आ रहे हैं, 'गीत एक अनवरत नदी है।' शान्ति सुमन की गीत-नदी की अनवरत धार में नेकी और बदी दोनों बहते हैं। यहाँ पत्थर के पिघलते मसौदे भी हैं और पत्थर पर उगे हुए तुलसी के पौधे भी। यह नदी इसी तरह लहर-दर-लहर प्रवहमान रहे, मेरी यही कामना है, अपेक्षा भी –

टूटें न तार तने जीवन-सितार के।
ऐसा बजाओ इन्हें प्रतिभा के ताल से
किरनों के कुंकुम से, सेंदुर-गुलाल से
लज्जित हो युग का अंधेरा निहार के। (केदारनाथ अग्रवाल)

●

नया समाज गढ़ने की कोशिश हैं शान्ति सुमन के गीत

❑ डॉ० वशिष्ठ अनूप

साहित्य और समाज का बड़ा गहन, अन्योन्याश्रित और द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध होता है। दोनों एक-दूसरे को प्रभावित एवं प्रेरित करते रहते हैं। इसीलिए साहित्य समाज से उत्पन्न होता है और पुनः उसे प्रभावित भी करता है। नक्सलबाड़ी के सशस्त्र किसान विद्रोह ने जहाँ एक तरफ तत्कालीन दिशाहीन और भटकावग्रस्त साहित्यकारों को एक सार्थक चिन्तन दिशा दी, वहीं तमाम तेजस्वी और उदीयमान रचनाकारों को बहुसंख्यक और न्याय के पक्ष में लड़ रही अवाम के पक्ष में अपनी लेखनी को हथियार की तरह लेकर खड़े होने के लिए प्रेरित भी किया। **उस समय नई ऊर्जा और मार्क्सवादी जनवादी विचारधारा से लैस होकर रचनाकारों की जो नई टीम आई उनमें सर्वाधिक प्रतिभाशाली लोगों में से एक नाम शांति सुमन का भी था।**

डॉ० शांति सुमन एक ऐसी कवयित्री हैं जिन्होंने स्वतः स्फूर्त भावुकता को काव्य का विषय न बनाकर जीवन की मूलभूत समस्याओं और शोषक-शोषित वर्ग के बीच के टकरावों एवं संघर्षों को अपने गीतों में अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने नवगीत से लेकर जनगीत और जनवादी गीत तक की सार्थक और महत्वपूर्ण काव्य-यात्रा की है। आरंभिक दौर में लिखे गये उनके नवगीत भी सीमाओं का अतिक्रमण करते रहे। उनके गीत 'ओ प्रतीक्षित', 'परछाईं टूटती', 'सुलगते पसीने', 'पसीने के रिश्ते', 'मौसम हुआ कबीर', 'तप रहे कचनार', 'भीतर-भीतर आग', 'मेघ इन्द्रनील' और 'पंख-पंख आसमान' शीर्षक संकलनों में संकलित हैं।

शांति सुमन ने समाज, साहित्य, गीत, लय, छंद, भाषा, बिम्ब, प्रतीक, विचार और कला आदि पर गंभीरता से चिन्तन किया है। वह ढुलमुल रचनाकारों की भाँति साहित्य में राजनीति का विरोध नहीं करतीं, किन्तु राजनीतिक विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति को जरूर मानती हैं। एक जगह वह लिखती हैं कि 'बिम्बों और प्रतीकों के स्थान पर महज राजनीतिक विचार एवं नुस्खे तथा जीवन्त एवं प्राणवान जीवनानुभवों के स्थान पर केवल विचारों के आडम्बर से गीत रचना मृत हो जाती है। इसीलिए जरूरी है कि कला की मूलभूत चरित्र-संगति में ही राजनीतिक विचारधारा को ग्रहण किया जाए ताकि कला के साथ विचारों का संतुलन बना रहे, क्योंकि जनवादी कला जीवन को ही अपना स्रोत मानती है और सीधे जीवन से प्राप्त अनुभवों और प्रेरणाओं को महत्व देती है।

इसके लिए जीवन की भूमिकाओं में गहरी पैठ की जरूरत है, न कि अमूर्त सामान्यीकरण की। साहित्य का उद्देश्य खुद अपने को जानने में मनुष्यों की मदद करना, उनके आत्मविश्वास को दृढ़ बनाना, सत्यान्वेषण को सहारा देना... बड़े और दीर्घकालीन उद्देश्य के लिए शक्ति बटोरने में सहायता करना तथा सौन्दर्य की पवित्र भावना से उनके जीवन को शुभ्र बनाना है।' (मौसम हुआ कबीर, पृष्ठ-8)

डॉ० शान्ति सुमन के गीतकार व्यक्तित्व की विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए डॉ० रेवतीरमण ने लिखा है कि – 'शान्ति सुमन छायावाद की महीयसी महादेवी से न मुठभेड़ करती हैं और न उनके चरण-चिह्नों का अनुसरण ही, पर कोई चाहे तो सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में उनकी जन-पक्षधरता परख सकता है। खास बात यह है कि उनके गीतकार की जड़ें मिथिला में हैं। उनके गीतों मे जयदेव भी हैं, विद्यापति और शुरूआती दौर के नागार्जुन भी। शान्ति सुमन के गीतों में मिथिला को गम्भीर रचनात्मक प्रतिनिधित्व मिला है। मैथिल संस्कृति के वे सारे उपकरण जो नागार्जुन की कविता को अमरता देने वाले हैं, बड़े शालीन तरीके से शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय हैं। (मौसम हुआ कबीर, पृष्ठ–15-16)

शान्ति सुमन का पुस्तकीय ज्ञान और लोक ज्ञान दोनों ही समृद्ध हैं। अतः उनका चिन्तन-जगत और रचना-जगत भी वृहद है। प्रसिद्ध जनवादी गीतकार नचिकेता की मान्यता है कि – 'शान्ति सुमन गीत-रचना के लिए जीवन-जगत की विस्तृत दुनिया से व्यापक अनुभवों का विपुल भण्डार एकत्र करती हैं। इसलिए उनका ग्रामीण परिवेश, प्रकृति-प्रेम, किसान-चेतना, लोक-जीवन और लोक-संस्कृति के तत्त्व उनके गीतों में घुल-मिलकर मूल्य-चेतना का रूप धारण कर लेते हैं।... शान्ति सुमन के गीतों के अनुभवों का पाट बहुत ही चौड़ा है और जमीन उर्वर।' (पंख-पंख आसमान, पृष्ठ–14-17)

जिस प्रकार महाश्वेता देवी के कथा-साहित्य का केन्द्रीय विषय आदिवासी समाज है, उसी प्रकार शान्ति सुमन के गीतों के केन्द्र में बिहार के किसान-मजदूर और विशेषकर खेतिहर मजदूर हैं। ये वे मजदूर हैं जो दिन-रात अपना खून-पसीना बहाकर धरती को उर्वर बनाते और अन्न उगाते हैं, किन्तु स्वयं अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसते-तड़पते हैं। जिनके रोटी, कपड़ा और झोपड़ी के सपने भी सपने ही रह जाते हैं। इससे आगे का और कोई सपना देखने का साहस नहीं कर सकते। रोटी उनके सामने सबसे बड़े सवाल की तरह खड़ी है –

रोटी हुई सवाल, भैया रोटी हुई सवाल
मेहनत करके भूखे रहना अपनी नियति हुई
उस पर यह बेकारी, जिनगी भीगी हुई रुई

दिन पर दिन होता जाता है अपना खस्ताहाल
बहिना, रोटी हुई सवाल
कन्धे पर से नहीं उतरता, कमी करज का बोझ
तानाशाही के पुरजे को, अब तो लेंगे खोज
किन्तु महाजन हमें सताने लगता है हर साल
भैया रोटी हुई सवाल

गरीबी से उत्पन्न होनेवाली मुश्किलें हर कदम पर आम आदमी का रास्ता रोक कर खड़ी हो जाती है। शान्ति सुमन के एक बहुचर्चित गीत में भूखे-नंगे बच्चे की यह स्वाभाविक जिद मन में बड़ी टीस और करुणा उत्पन्न करती है –

फटी हुई गंजी ना पहने, खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, माँगे एक पूरा चन्द्रमा
पाटी पर वह सीख रहा
लिखना ओ-ना-मा-सी
अ से अपना, आ से आमद
धरती पूरी माँ-सी
बाप को हल में जुता देखकर सीखे होश सम्हालना
घट्ठे पड़े हुए हाथों का प्यार बड़ा ही सच्चा
खोज रहा अपनी बस्ती में दूध-नहाया बच्चा
बाप सरीखा उसको आता नहीं भूख को टालना

गरीबी और विवशता के चंगुल में छटपटाती, किन्तु जिजीविषा और श्रम-सौन्दर्य से भरी एक रचना है – 'एक सूर्य रोटी पर।' यह गीत अपने आप में महाकाव्यात्मक औदात्य और अर्थ-गाम्भीर्य को समेटे हुए है। सामन्ती शोषण का शिकार हुई कालिदास की शकुन्तला और निराला की 'तोड़ती पत्थर' की युवती का विकसित और एक नया रूप शान्ति सुमन की इस मजदूरिन शकुन्तला में देखा जा सकता है –

यह भी हुआ भला
कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती शकुन्तला
कन्धे तक डूबी सुजनी की देह गड़े काँटे
कोड़े से बरसे दिन, जमा करे किस-किसखाते
अँधियारी रतनार प्रतीक्षा, बुनती चन्द्रकला
मुड़े हुए नाखून, ईंख-सी गाँठदार उँगली
टूटी बेंट, जंग से लथपथ खुरपी-सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने केसर का बाग जला
बीड़ी धुकती ऊँध रहीं पथराई शीशम आँखें

लहठी-सना पसीना, मन में चुभती गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा, चाँद नून-सा गला

इस गीत में परिस्थितियों की मार से त्रस्त एक युवती की दारुण-दशा का बहुत मार्मिक दृश्य उपस्थित हुआ है। चढ़ती उम्र में रूप का अरूप में बदल जाना, रतनार और रंगीन सपनों का अंधकार में विलीन हो जाना, आँखों का शीशम-सा पथरा जाना, उसके हिस्से के सूर्य और चाँद का रोटी और नून में बदल जाना तमाम युवतियों के जीवन का सच है। यह गीत पाठक के हृदय को बहुत देर तक व्यथित और आन्दोलित करता रहता है। इस गीत की शब्दावली बिम्ब, प्रतीक और उपमान कृषक जीवन और श्रमिक वर्ग से लिये गये हैं जिससे इसका प्रभाव और बढ़ जाता है।

शान्ति सुमन ने वर्तमान समय और समाज में होने वाले परिवर्तनों पर भी सतर्क निगाह डाली है। उनके गीतों में महानगरीय जीवन में तेजी से पाँव पसार रही विकृतियों और प्रतिगामी-आत्मघाती मूल्यों पर गहरी चिन्ता झलकती है। स्वार्थ, हिंसा, छल-छद्म, ईर्ष्या-द्वेष, पाखण्ड, पारिवारिक विघटन, अलगाव, कुण्ठा, संत्रास, अविश्वास, कृत्रिमता, एकरसता, ऊब, सम्वादहीनता आदि बुराइयों का चित्रण भी उनके गीतों में खूब हुआ है। नई कविता और नवगीत के रचनाकारों ने इन विघटनों को विशेष रूप से उद्घाटित किया था। कृत्रिमता और एकरसता में अनचाहे-अनमने ढंग से बीत रहे दिन का वर्णन इस गीत में द्रष्टव्य है –

कृत्रिम समझौते में बीत रहा दिन
झुकी-झुकी टहनी-सा दिन, उड़े-उड़े पातों सा दिन
फाइल में जीवन की गंध सभी बंद
सुबह कहीं बंद, शाम कहीं बन्द
अनमना-अनजाना-सा बीत रहा दिन
खाली मेजों-सा दिन, बासी बातों-सा दिन

हर तरफ हत्या, क्रूरता, भय, आगजनी, विनाश और अविश्वास का वातावरण है। प्रहरी लुटेरों और अपने विश्वासघातियों की भूमिका में हैं। ऊपर से शान्ति और सन्नाटा है किन्तु भीतर से हर आदमी के जज्बात अंगारों से दहक रहे हैं –

भीतर-भीतर आग बहुत है, बाहर तो सन्नाटा है
सड़कें सिकुड़ गयी हैं भय से, देख खून की छापें
दहशत में डूबे हैं पत्ते, अंधकार में काँपें,
किसने है यह आग लगायी, जंगल किसने काटा है ?
घर तक पहुँचाने वाले वे, धमकाते हैं राहों में
जाने कब सीधा बज जाये, तीर चुभेंगे बाँहों में
कहने को है तेज रोशनी, कालिख को ही बाँटा है

शान्ति सुमन जनवादी सोच की कवयित्री हैं, अतः उनके यहाँ मित्र और शत्रु वर्ग की पहचान बहुत स्पष्ट है। वह जनता के दुख-दर्द और शोषण से तो परिचित हैं ही, इसके साथ ही शोषक-तत्वों से भी अवगत हैं। यह प्रश्न उनके गीतों में बार-बार उभरता है कि हाड़ तोड़ परिश्रम करने के बावजूद एक बहुत बड़े वर्ग को भरपेट भोजन तक क्यों नहीं मिलता और कुछ लोगों को बिना कुछ किये सब कुछ कैसे उपलब्ध है ? अनाज उपजाने वाले भूखे, कपड़ा बनाने वाले नंगे और महल बनाने वाले सड़कों-फुटपाथों पर रहने के लिए अभिशप्त क्यों हैं ? इस बात को उन्होंने 'दाने कहाँ गये' शीर्षक गीत में बहुत साफ ढंग से उठाते हुए इसका उत्तर भी दिया है –

बेटे बोलो, तेरे घर के दाने कहाँ गये ?...
कुछ तो लूटे अफसर नेता, कुछ को साहूकारों ने
उससे ज्यादा पुलिस-कचहरी, बाकी चोर बाजारों ने
खा न सके अब तक जी भर के, दाने कहाँ गये ?

इसी प्रकार उनका एक बहुत प्यारा-सा गीत है – 'हम मुठभेड़ हुए।' इस गीत में उन्होंने गाँव की दादी, काकी, भौजी और बहन के हवाले से इस वर्गीय विषमता को बहुत खूबसूरत ढंग से वर्णित किया है –

थाली उतनी की उतनी ही, छोटी हो गयी रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
.....अपना तो घर गिरा दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी अब दिन-दिन होती छोटी
कहती नवकी भौजी अपने गाँव की
सबसे गोरी भौजी अपने गाँव की

शान्ति सुमन परिवर्तनकामी और स्वप्नदर्शी रचनाकार हैं उनकी दृष्टि वैज्ञानिक है, इसलिए वह ठहराव और यथास्थिति को स्वीकार न करके लगातार परिवर्तन की बातें करती हैं। वह हर प्रकार की नकारात्मक प्रवृत्तियों-शोषण-दमन, लूट-हिंसा, जोर-जबर्दस्ती और अन्याय-अत्याचार को देखते हुए भी निराश और हताश नहीं हैं। वह जानती हैं कि समय बदलेगा और आने वाला समय बेहतर तथा गरीबों, मजदूरों, किसानों का होगा। यह परिवर्तन और आशा का स्वर उनके अनेक गीतों में मुखर हुआ है। यहाँ कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

'बीते दिन बहुरेंगे, पाखी लौटेंगे
इच्छाओं से भरी तांबई होगी कोंपल
धूप-तितलियों के फेरे फिर होंगे पल-पल
रोते मन सँवरेंगे, पाखी लौटेंगे...'

'सुबह हुई आँगन में गमकी/धूप किसी पकवान सी'
'केवल बाग नहीं फूलेंगे, खुशगवार पल भी होगा
अपनी सधी निगाहों में, सुख-समता का अक्षर होगा
गूँजेंगे चौराहे, गलियाँ होंगी मंगल गान-सी'

शान्ति सुमन के गीत अदम्य जिजीविषा और जुझारूपन से भरे हुए हैं। वह जनता की ताकत से परिचित हैं और यह भलीभाँति जानती हैं कि जनशक्ति अपार और अपराजेय होती है। दुनिया के इतिहास में जब भी राजसत्ता निरंकुश, तानाशाह और रक्तपिपासु हुई है, उसे जनशक्ति का कोपभाजन बनना पड़ा है और संगठित-सुनियोजित जनता ने तानाशाहों और शोषकों के ताजो-तख्त को भूलुंठित किया है। वह इस सत्य से भी अवगत हैं कि अधिकार कभी भी भीख में नहीं मिलता बल्कि उसे बलपूर्वक छीनना पड़ता है। इसीलिए उनके गीत कभी भी याचना की मुद्रा में नहीं आते। उनके गीत संघर्ष और क्रान्ति की भावना से भरे हुए हैं। यहाँ अलग-अलग गीतों की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

'पहले तेरी कुर्सी पर हम फूल चढ़ाते थे
अब तेरी कुर्सी पर हम बारूद बिछा देंगे।
पहले शोषण की अन्धी घाटी में बहकाते थे,
अब शोषण के मन्सूबों को खाक बना देंगे...'
'हम गरीब मजदूर भले/हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नयी बटोर क्रान्ति के बीज उगायेंगे
कच्चे गीतों से अच्छा है नारा एक लिखो
बँधे हुए द्वीपों से बेहतर धारा एक दिखो...'
'खूनी जबड़े तोड़ेंगे हम उनके कानूनों के
नया समाज गढ़ेंगे हम समता के मजमूनों से
हर मुश्किल पर दहक उठेगी अपनी लाल मशाल
भैया, रोटी हुई सवाल/बहिना रोटी हुई सवाल'

हिन्दी गीत विधा में अपनी जनवादी चेतना और विद्रोही तेवर के लिए जानी जाने वाली शान्ति सुमन ने काफी अच्छे प्रेम-गीत भी लिखे हैं। इन गीतों में प्रेम की विविध मनोदशाओं– आकर्षण, उत्कण्ठा, उत्साह, प्रतीक्षा, चिन्ता, मिलन, विछोह आदि का बड़ा मनोरम और स्वाभाविक वर्णन हुआ है। इस संबंध में गीतकार-समीक्षक नचिकेता ने लिखा है कि – 'शान्ति सुमन ने दर्जनों उम्दा प्रेमगीत लिखे हैं। उनके हर प्रेमगीत का अलग सौन्दर्य है, अलग अनुभूति है, अलग रंग है, अलग चमक है, अलग खुशबू

है। कहीं तो वह परदेशी प्रियतम के विरह में व्याकुल ग्राम्य युवती दिखाई देती हैं – 'दुख रही है अब नदी की देह/बादल लौट आ.../हो गया है इन्तजार विदेह/बादल लौट आ'...तो कहीं प्रेम पर लगे सामाजिक प्रतिबन्ध को नकारती हुई, पुरुष सत्ता के वर्चस्व को चुनौती देती हुई – 'एक हँसी फेंककर इधर-उधर/दूबों को सहलाना प्यार से/पल्लू को स्वतः खिसकने दिया/माथ झुका गधिल आभार से।'...'शान्ति सुमन का स्त्री विमर्श अपने बासम्स में पूरे भूमण्डल को चाँप लेने वाला कुण्ठित, आत्ममुग्ध और बड़बोला स्त्री-विमर्श नहीं है, न ही 'ब्रा बर्निंग मूवमेंट' जैसा खोखला, दिखावटी और फैशनेबुल आन्दोलनकारी शगल है। यह तो पुरुष सत्तात्मक समाज के द्वारा स्त्रियों के उन्मुक्त प्रेम के अधिकार पर लगाये गये अमानवीय प्रतिबन्धों के विरूद्ध उठ खड़ा हुआ प्रतिरोधी स्वर है।' शान्ति सुमन के प्रेम गीत उदात्त और अकुण्ठ हैं। कुछ उदाहरण देखें –

'तुमको चाहा कितना-कितना मैंने अपनी चाह में
सूरजमुखी खेत में झूमे, फसलें खड़ी गवाह में.....'
'केसर रंग रँगा मन मेरा, सुआपंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में, लिखा तुम्हारा नाम है'
'तुम मिले तो बोझ है कम, बहुत हल्की पीठ की गठरी
.....अँधेरे के हाथ हैं नम, फूल वाली आँख जो ठहरी.....'
'जब से तुमको देखा है, बस फूल-फूल हैं आँखों में
दिन सतरंगे सपनों वाले, देखे बन्द सलाखों में.....'

शान्ति सुमन के गीतों में स्त्री-पुरुष या पति-पत्नी के प्रेम से अलग भी रागात्मक भावों की परिधि में आने वाले अन्य विषयों की भरपूर उपस्थिति उन्हें काफी समृद्धि प्रदान करती है। उनमें गांव-घर और प्रकृति के प्रति गहरा तथा आत्मीय आकर्षण है। दादी, माँ, काकी, भाभी, बहन, बेटी, बेटा आदि उनके गीतों में आकर एक भारतीय परिवार को पूर्णता प्रदान करते हैं। 'दरवाजे का आम-आँवला/घर का तुलसी चौरा/इसीलिए अम्मा ने अपना/गांव नहीं छोड़ा' या 'मुझमें अपनापन बोता है/साँझ-सकारे यह मेरा घर/चिड़ियों का जैसे खोंता है/झिन-झिन बजता है कोई स्वर' जैसे गीत इसी तरह के हैं। कई गीत वात्सल्य और ममता से भरे हुए हैं – 'नींद में भी सुनाई पड़े/एक हँसी खिलखिलाती हुई/कत्थई गोद के फूल-सी/गंध भीनी नहाती हुई।' या 'कनक थाल में दीप चाँद का जलता तेरे नाम का/तुम मेरे भविष्य के आखर/दर्पण हो दिनमान का।' अथवा 'तेरे बाबू लाते थे कर्जे में गेहूँ के दाने/तेरी ही खातिर आती थीं घर में कुछ खुशियाँ बेटे।' उनके वात्सल्य के दायरे में सिर्फ बेटे ही नहीं, बेटियाँ भी हैं। बेटी के जन्म पर लिखा गया सोहर पुरुष प्रधान समाज में एक क्रांतिकारी कदम है – 'धीरे-धीरे बहे पसीना/धीरे

नदी बह रे/ललना रे, आधी रात गए, रनियाँ का मन कँहरे/इधर गजर का बोल/उधर मुनियाँ जनमे/ललना रे, आँखों रचे सरूप/कि हँसिया हाथ थमे/अगुवारे फूले गेंदा फूल, बीच-बीच अड़हुल रे/ललना रे, बेटी का भाग अमोल/बढ़े दो-दो कुल रे।'

शांति सुमन अपने कुछ गीतों में एक आदर्श भारतीय गृहिणी और ममतालु माँ का दायित्व निभाती हुई दिखती हैं। अपनी सद्यः सुहागिन बनी बेटी को माँ की यह सीख बहुत अच्छी लगती है – 'धीरे पाँव धरो/ आज पितागृह धन्य हुआ है/मंत्र सदृश उचरो। तुम अम्मा के घर की देहरी/बाबू जी की शान/तुम भाभी के जूड़े का पिन/भैया की मुस्कान/पोर-पोर आँगन के/लाल महावर-सी निखरो। तेरी हँसी पहनकर गाये/फूलों की टहनी/तुम अंतर की भाषा में/सपनों के सूत बनी/आँचल भरकर दूब-धान/सिन्दूरी नमन करो।'

यदि गीत के स्तर और गीत की शर्तों को ध्यान रखकर अध्ययन करें तो शांति सुमन के संग्रहों में दो तरह के गीत मिलते हैं। एक वह जो सहज और स्वाभाविक हैं तथा अपने कथ्य की शक्तिमत्ता के कारण अभिव्यक्ति के समस्त उपादानों – लय, गति, छंद, प्रवाह, तुक, बिम्ब, प्रतीक, उपमान और भाषा आदि को साथ लेकर चलते हैं और अपनी चुस्त अन्विति के कारण काफी प्रभावशाली हैं। इस दृष्टि से उनके आरंभिक दिनों के गीत सर्वोत्तम हैं। दूसरे बहुत सारे गीत ऐसे भी हैं जो अस्वाभाविक और बनावटी लगते हैं। कुछ गीतों में अप्रासंगिक और अनावश्यक रूप से भूख, रोटी, भात आदि शब्दों को डाला गया है। इसी प्रकार गीत का आरंभिक तेवर चाहे जैसा हो, लेकिन अंत संघर्ष के आह्वान के साथ होता है जो स्वाभाविक न होकर बनावटी लगता है। कई गीत ऐसे भी हैं जो शर्तों पर खड़े नहीं उतरते। छंदों और अन्त्यानुप्रास का निर्वाह नहीं हुआ है। कुछ गीत शुरू किसी छंद में होते हैं और आगे चलकर दूसरे छंद में चलने लगते है। मात्राएँ भी घटती बढ़ती रहती हैं। कोई चाहे तो इसे छंदों की जकड़ से गीत की मुक्ति कह सकता है, लेकिन इससे गीत का स्वभाव आहत होता है।

कुल मिलाकर **डॉ० शांति सुमन ने हिन्दी की जनवादी गीत धारा को एक नई ऊँचाई और सार्थकता प्रदान की है। उनके गीत मानव मुक्ति के मुखर समर्थ प्रवक्ता हैं तथा जनसंघर्षों को शक्ति प्रदान करनेवाले हैं। उनके गीतों की भाषा सहज, सघन, बेलाग और जीवंत है। उन्होंने अपने गीतों के माध्यम से मेहनतकश वर्ग को अपनी जंजीरें तोड़ने तथा मुक्ति के सपने देखने की प्रेरणा दी है।**

●

शांति सुमन के गीतों में जनवाद की पृष्ठभूमि

❑ डॉ० सीता महतो

शांति सुमन का जन्म एक निम्नमध्यवर्गीय किसान-परिवार में हुआ। घर में नौकरी करने की कोई परिपाटी नहीं थी। पहली बार उनके पिता ने अंग्रेज सरकार के अधीन डिफेन्स में नौकरी की। परन्तु बहुत दिनों तक वह स्थिति नहीं रही। एक बड़ा संयुक्त परिवार का सदस्य होने कारण उन्होंने घर-बार, खेती-किसानी की पूरी जिम्मेदारी अपने चाचा (तब घर के मालिक वही) के आदेशानुसार ग्रहण कर ली। वस्तुतः उनके अपने पुत्र शान्ति सुमन के पिता की उम्र से छोटे थे और पूर्णतः निष्कलुष रूप में आत्म विश्वास के कारण उन्होंने इन पर यह दायित्व डाल दिया था। ऐसी स्थिति में शान्ति सुमन के पिता ने डिफेन्स की अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और गाँव में रहने लगे।

गाँव में परिवार के पास जो जमीन थी उसमें खेती होती थी और परिवार में आय का एकमात्र स्रोत वही थी। शान्ति सुमन का पालन-पोषण एक संयुक्त परिवार में हुआ। कुछ वर्षों तक तो तालमेल ठीक रहा। पर जैसे-जैसे नई बहुएँ घर में आईं उसकी मजबूत दीवारों का दरकना शुरू हो गया। शान्ति सुमन ने बचपन के दिनों में दरकते हुए दीवारों वाले घर को अपनी आँखों से देखा और छोटी-छोटी समस्याओं पर लोगों के आपसी मनमुटाव देखे। स्वार्थवश परिवार में अपना-पराया का भेदभाव भी इन्होंने शिद्दत से महसूस किया। नकली मुलम्मेबाजी भी देखी।

तब खेती बटाईदारों के द्वारा होती थी। शान्ति सुमन ने गाँव में खेती की चौपड़बाजी भी देखी। गरीब बटाईदारों को पुराने हल और कमजोर बैलों के साथ जूझते देखा। जमीन के मालिक को निश्चिन्त और खेती करनेवाले लोगों को खाद-बीज, पटवन आदि-आदि के लिए खून-पसीना बहाते देखा। घर की सारी कमाई लगाकर खेती करनेवाले वे गरीब आसामी सालभर भरपेट खा नहीं पाते थे और जमीन-मालिक के बखार भरते जाते थे। शान्ति सुमन ने अपने घर में अपनी एक चचेरी फुआ का विवाह पचासों गाड़ियों में भर-भर बोरे धान को सुपौल हाट में बेचकर होते देखा था। उन बोरे-बोरे धान को बेचकर दहेज की राशि भी जुटाई गई थी। गाँव में अपने टोले में ही शान्ति सुमन ने बच्चों को भूखा-नंगा देखा। पढ़ने-लिखने की बात तो एक दुःस्वप्न की तरह थी। शान्ति सुमन के अपने घर में कई नौकर-चाकर थे। कुछ तो गाय-बैलों की देखभाल के लिये, कुछ दालान की व्यवस्था देखने के लिए। तब खाते-पीते घरों में दालान

घर के बाहर होते थे। अतिथि का स्वागत दालान पर होता था। भले खाने के लिये वे घर के भीतर जाते थे। शान्ति सुमन ने अतिथियों की हैसियत के आधार पर भी घर में उनके स्वागत में अन्तर देखा। घर का मुखिया, उनके बच्चों और पूरे परिवारजन की देहों पर रंगीन कपड़ों के बीच में घर का नौकर मैला-कुचैला, पुराना फटा कपड़ा में ही रहता था। एक पवित्र ग्लास में ताजा शुद्ध पानी नौकर के उस अशुद्ध, अपवित्र हाथ से ही आता था। उसकी सफाई पर पैसा लगाना अपव्यय था।

शान्ति सुमन का परिवार बड़ा था जिसमें खानेवाले और आराम करनेवाले अधिक थे। उनके चचेरे दादा (जो घर के तब मालिक थे) के दीवान की पत्नी दीवान जी के मर जाने के बाद वहीं उनके घर में रहती थी। उनके दो बेटे थे और इस घर के अलावे उनका कोई आश्रय नहीं था। गरीबी और अभाव से लड़ते रहने की बजाय उन्होंने उनके घर में ही रहने का निश्चय लिया था। मगर उस निश्चय की आड़ में शान्ति सुमन ने उस अधेड़ कमजोर महिला को सुबह से आधी रात तक जब तक एक-एक आदमी खा नहीं ले – तब तक चूल्हे-चौके से पिसते देखा। शान्ति सुमन ने उस महिला को सूरज डूबने के बाद अर्घ्य देते देखा। वही उनके नहाने और खाने का समय था। रात में वह कब खाती थी – थककर चूर हो जाने पर नींद से उसकी कैसी कहा-सुनी होती थी – इसको घर में न कोई देखता था, न महसूस करता था। कोई खेत पर गया, कोई (जन) मजदूरों के पीछे था तो कोई धान के बोझों को धूप में खड़ा होकर गिनता रहा. .. सबकी अपनी तरह की व्यस्तता थी। शान्ति सुमन ने अपने ही घर में अपनों से अपनों के छल देखे। घर और खेत में काम करते जन के साथ होते हुए असमान ही नहीं असभ्य और क्रूर व्यवहारों को उन्होंने देखा था। जन को 'बन' (मजदूरी) में मडुवा-मकई दिया जाता था, स्वयं के खाने के लिए भात-दाल थे। गेहूँ कम उपजता था, इसलिये भी और सच था कि रोटी तो गरीब-गुरूआ खाते थे। बड़े घरों में रोटी खाई जाती तो घी चपोड़कर। मजदूरों को कर्ज में जो अन्न दिये जाते थे, वे पाँच सेर का सात सेर लिखा जाना तो छोटी बात थी। ऐसा पड़ोस के घर में खूब होता था।

शान्ति सुमन ने लोगों को बेगार खटते देखा। काम करने के एवज में उनको खाना मिल भी गया तो उनके बाल-बच्चे वैसे ही रह जाते थे। कुछ घरों में बड़ी बूढ़ियाँ बैलों की तरह खटती थीं। उनके रहन-सहन का कोई रखरखाव नहीं था। इस प्रकार शान्ति सुमन ने अपनी खुली आँखों से घर और घर के बाहर खेत-खलिहान सब में गरीब जन को पिसते और घुटते देखा। अपनी छोटी उम्र से ही वे इस विषमता को समझने लगी थीं। कभी-कभी वे अपनी माँ और दादी से इस संबंध में प्रश्न

भी पूछती रहती थीं। उनका मन बेचैन होता रहता था अपनी ही उम्र के बच्चों को अपनी तरह नहीं देखकर। माँ तो चुप रहती थीं। कदाचित् पिता के मालिकाना रोब-दाब के भीतर वे भी आती थीं। दादी अपेक्षाकृत मुखर थीं, मगर परम्परावश उनके उत्तर से सब समय संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता था।

एक समय ऐसा हुआ जब गाँव में गरीबी बहुत बढ़ गई थी। गाँव में आसिन-कातिक का समय भुखमरी का समय होता था। एक तो भूख उस पर महामारी का कहर भी। लोग अन्न-पानी और दवा-दारू के बिना मर जाते थे। कुछ लोग जिनके पास पैसे थे, चुपके से दूकान से अन्न मँगाकर अपने बच्चों को खिला देते थे और शेष बच्चे उन्हें टुकुर-टुकुर ताकते रह जाते थे। ऐसा इसलिये कि उनकी माँ के पास पैसे नहीं होते थे।

शान्ति सुमन का बचपन इन्हीं परिदृश्यों, घटनाओं और समस्याओं के बीच व्यतीत हुआ। उनको सुविधाजनक जीवन कम ही जीने को मिला। पढ़ने-लिखने में भी इनको बहुत संघर्ष करना पड़ा। चौथे से नवे-दसवें वर्ग की पढ़ाई करने के लिए उनको गाँव से सुखपुर स्कूल तक पैदल जाना-आना पड़ा। तब कासीमपुर से सुखपुर की दूरी डेढ़-दो कोस से कम नहीं थी। धूप-वर्षा सबको झेलते हुए और इस दूरी को तय करते हुए इन्होंने स्कूल की पढ़ाई पूरी की। ऊषा और भारती – दो लड़कियाँ सुखपुर की ही थीं जो इनके साथ पढ़ती थीं। एक आदमी उनको स्कूल पहुँचाने और छुट्टी होने पर ले जाने आता था। शान्ति सुमन के मन में बराबर यह लालसा जगती थी कि उनका घर भी उनकी तरह क्यों नहीं हुआ। तब न तो धूप में जलना पड़ता न वर्षा में भींगना। कभी-कभी तो वर्षा के साथ ऐसी तेज हवा चलती थी कि हाथ से छाता छूटकर दूर खेत में भाग जाता था।

शान्ति सुमन के मन पर अपने घर, परिवेश और समय का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उनके अवचेतन में समय के वे निशान और अधिक गहरे होते गये। एक बार तो छेदी (साथ में पढ़ने वाला एक हरिजन लड़का) के हाथ से कुएँ से भरा हुआ पानी शान्ति सुमन ने स्वयं पिया और दूसरे बच्चों को भी पीने के लिए बाध्य किया। इस पर घर पहुँचकर लाला बाबा से उनको बहुत डाँट पड़ी और अगली बार वैसा करने पर मारने की धमकी भी। पर शान्ति सुमन को अपने काम से आत्मिक संतोष और सुख मिला था।

जीवन के इसी प्रभाव और दबाव ने शान्ति सुमन के गीतों की जनवादी पृष्ठभूमि बनाई है। बटाईदारों के साथ अन्याय, खेत में काम करनेवाले जनों (मजदूरों) के प्रति अत्याचार, धान रोपते, फसल काटते, घर की छान छाते, बेगार करते, भूखों मरते, बीमारी से लड़ते, मिहनत से कम पगार पाते, श्रमरत-संघर्षजीवी जन के जीवन-यथार्थ सहज ही शान्ति सुमन के गीत और कविता

के केन्द्रीय भाव हैं। ऐसे शोषित-पीड़ित जन के प्रति पक्षधरता इनके अनुभवों की अनिवार्य फलश्रुति है।

शान्ति सुमन के पहले गीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' को डॉ० विश्वनाथ प्रसाद जैसे समीक्षकों ने मध्यवर्ग की जिन्दगी की हिस्सेदारी के गीत कहा। पर उन्होंने अपनी दृष्टि की सीमा से बाहर जाने की कोशिश नहीं की। जो लोग महादेवी के गीतों के प्रतीकों में युग के संघर्ष को देखते हैं, वे शान्ति सुमन की पूरी शब्द-योजना, भावान्विति और अंतर्वस्तु में सन्निहित जीवन-यथार्थ और संघर्ष की चेतना को नहीं देखते। शान्ति सुमन के नवगीतों में ही उनके आगामी संघर्ष, विद्रोह और बदलाव के संकेत मिलने लगे थे। उन गीतों में समय और समाज भी साँसें लेने लगा था।

'परछाईं टूटती' में व्यक्त युगबोध को आँख से ओझल नहीं किया जा सकता। अपनी मिट्टी की पहचान, अपने आंचलिक जीवन की पीड़ा और संघर्ष इन गीतों में भी दिखाई देते हैं। अपने जीवन की जड़ों तक जो गीत लौटा ले जाये, वह सिर्फ रागात्मक बोध का गीत नहीं हो सकता। इन गीतों में राग यथार्थ से जुड़कर आये हैं –

कन्धे तक झुकी हुई रात
बेरोजगार माँ-सी
सुबहें बासी मुँह लिखती
उजली ओ-ना-मा-सी
चेहरे का ताप कितना कम गया है
सूखता सा करोटन मौसम नया है

इस विचार को स्पष्ट करने के लिए कुछ और पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

कहीं-कहीं दुखती है
घर की छोटी आमदनी
धुआँ पहनते चौके
बुनते केवल नागफनी
मिट्टी के प्याले सी दरकी
उमर हुई गुमनाम

'सुलगते पसीने' में तो शान्ति सुमन पूरी तरह से एक जनवादी गीतकार के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती हैं। उसके गीतों में पसीने के चंदन बनने की बात कही गयी है –

ये सुलगते पसीने चंदन बनेंगे

कुछ और पंक्तियाँ देखें –

बाघ-वन में सुना जाता/पक्षियों का शोर
बहेलिया हर बार आता/शर लिये इस ओर
जब हवा के पंख खुलते हैं
काटकर चट्टान तब हम बीज बोते हैं

कुछ और पंक्तियाँ देखें –

आज तक खाते रहे जो/दुधमुँहे हिस्से
चुभ रहे उनको उन्हीं के/दाँत के किस्से
खुद-ब-खुद उनसे लड़े ये पेड़
नहीं केवल चुप खड़े ये पेड़

सन् '85 में प्रकाशित 'मौसम हुआ कबीर' जनवाद का पूर्ण विकसित रूप लेकर आया। पाठकों और समीक्षकों की राय बनी कि ''शान्ति सुमन हिन्दी-साहित्य की एकमात्र कवयित्री हैं जिन्होंने शोषित-पीड़ित जनता के दुख-दर्द को अपने गीतों में चित्रांकित किया है। वे शोषकों के खिलाफ दलितों–पीड़ितों को आगाह करती हैं और एकजुट होकर उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं।'' **(मौसम हुआ कबीर के फ्लैप से)**। वस्तुतः इस गीत-संग्रह को शान्ति सुमन के जनवादी गीतों की अगली कड़ी के रूप में देखा गया – श्रमजीवी संघर्षरत जनता के जीवन से एकमेक होकर ये गीत शान्ति सुमन की जनवादी चेतना को विस्तार देते हैं। जनसाधारण के प्रति अदम्य सान्निध्य एवं जमीनी लगाव इन गीतों की अनन्य पहचान है। वस्तुपरक रूप से सामाजिक विसंगतियों को चित्रित करना और व्यवस्था के अंतर्विरोधों और विषमताओं को उजागर करना ही इन गीतों का मुख्य उद्देश्य है। वस्तुतः शान्ति सुमन के इन गीतों के शब्द 'लहू के कतरे' की तरह हैं। कविता का वामपक्ष ही नहीं, अन्य पाठकों और समीक्षकों ने भी इनको जनवादी गीतकार के रूप में स्वीकार किया है। डॉ० रेवतीरमण ने इनको महादेवी नहीं, अपितु सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में रखकर इनकी जन-सम्बद्धता को परखने की बात कही है। संघर्षजीवी जनता के दुख को लिखती हुई ये कहती हैं –

सूखी रोट के दुख/हमने बरस जिये
तन का फटा अंगोछा/शीत न घाम सहे

व्यवस्था ने जनता के जीवन को कितना छिन्न-भिन्न किया है और त्रास दिये हैं। उनके लगातार पतनोन्मुख होते जाने का एक चित्र देखिये –

थाली उतनी की उतनी ही/छोटी हो गयी रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की

अपना तो घरा गिरा/दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में/ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी अब दिन-दिन होती छोटी
कहती नवकी भौजी अपने गाँव की

भूख-प्यास, कर्ज, सूदउगाही, बीमारी-बेरोजगारी के साथ पुलिसिया आतंक भी सहने के लिये जनसाधारण विवश है।

शान्ति सुमन व्यवस्था की इन घटिया करतूतों के लिये जनता को आगाह करती हैं और उनके लिये संघर्ष की जमीन भी तैयार करती हैं –

अभी तुमको खूब आया/सही सूरज को फँसाना
हर गलत कानून रचकर/नये शोणित को बहाना
आज तेरे जुल्म तुमसे भी बड़े हैं

इस घिनौनी व्यवस्था के लिए कहीं अफसोस है –

सड़कों पर बनते जुलूस देखूँ जब मेरे बेटे
लगता एक गलत आजादी तेरे हाथ लगी

कहीं भूख से जलती अँतड़ियों में क्रोध उफनता है –

पहले तेरी कुर्सी पर हम फूल चढ़ाते थे
अब तेरी कुर्सी पर हम बारूद बिछा देंगे

कहीं मेहनतकश जन के हौसले बुलन्द होते हैं –

कभी छोटी चिड़िया भी बाज को मरोड़े
कौन है जो रानी के रथ को पीछे मोड़े

और फिर विश्वास का एक सूरज उगता है –

कौन कहता टूटता है नहीं/दारुण लौह पहरा
यह समय होता नहीं है/कभी अंधा और बहरा
हमारा श्रम ही हमारे बंध खोलेगा

'मौसम हुआ कबीर' के बाद शान्ति सुमन का अगला गीतों का संग्रह आता है – 'भीतर-भीतर आग'। इसके गीतों में सहजता है, रागतत्त्व भी है, पर इसकी जनवादिता छिपी नहीं है –

फूटते धानों सरीखे/हम बढ़े, बढ़ते गये
फुनगियों से फसल की/सपने बहुत कढ़ते गये

अपने जैसे तमाम जन को आगाह करते हुए ये कहती हैं –

क्या हुआ कल रात आयी/जोर की आँधी
नीबुओं की पत्तियाँ फिर/रात भर जागीं
समय कम है/कम समय है/हर मुहिम पर दिखो

श्रमजीवी संघर्षरत जन के जीवन में प्रेम ही वह आधार होता है जो भूख-अभाव और तमाम तरह की बेचैनियों के बीच भी लोगों को जोड़कर रखता है –

अबके काट रहा जब मैं खुद/अपने हाथों फसलें
परस तुम्हारे हाथों का भी/कहता मिलकर हँस लें
पीला फूल कनेर एक खिलता/है तो दिन-माह में

बाजूबन्द की जगह रक्तजवा, ट्रेन की छतों पर बैठकर सपनों का गाँवों में लौटना, गीत की पहली पाँती जैसा अपनापन का होना, बिन धुँआते छप्परों के घर की आँखों में अगहन का आँजना, बेटी सी कोमल हरियाली का सामने किलक कर खड़ा होना, कटे धान के खेतों में चिड़िया का दाना चुगने आना, कभी-कभी पोती-पोते का घुंघरू सा घर में बजना, गहना बनने वाले दिन में खेत खरीदना आदि ग्रामीण किसान-जीवन के जीवन्त चित्र हैं और इनमें विस्थापित मजदूरों की पीड़ा भी समायी हुई है।

2006 में शान्ति सुमन का अगला गीत-संग्रह 'एक सूर्य रोटी पर' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के गीतों में उनकी जनवादिता और भी प्रखर होकर सामने आई। इन गीतों की संवेदनशीलता इनको किसान और मजदूरों के श्रम-संघर्ष से जोड़ती है। पूँजीवादी व्यवस्था की पाशविकता को परत-दर-परत खोलते हुए ये गीत क्रांतिकारी परचम लहराते हैं। डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह ने लिखा है कि ''गरीबी और अभाव की आग में जलते भारतीय जीवन का दाह है शान्ति सुमन के गीतों में। गरीबी के ताप में झुलसी युवती का सौन्दर्य जैसे बलुआही मिट्टी पहनकर केसर का बाग जल गया हो। समय से संघर्ष करने के क्रम में शान्ति सुमन ने ईश्वर की चोरी न कर, उसके समानान्तर, उसके सामने खम ठोककर खड़े इंसान की जीवन्त प्रतिमा गढ़ी है।'' इस गीत की कुछ पंक्तियाँ देखने पर उनकी उक्ति शत-प्रतिशत सही लगती है –

मुड़े हुए नाखून/ईख सी गाँठदार उंगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ/खुरपी सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने/केसर का बाग जला
बीड़ी धुकती ऊँघ रही/पथराई शीशम आँखें
लहठी-सना पसीना/मन में चुभती गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा/चाँद नून सा गला

भूख और तमाम संतापों के बीच रहकर भी शान्ति सुमन लोगों के बीच निराशा नहीं बाँटतीं, यथास्थिति का बखान नहीं करतीं। वे पूरे दम-खम के साथ

कहती हैं –

ये इतने चुपचाप दीखने वाले/हल के जोड़े
कहते सीना तान नदी उनकी जो/परबत फोड़े
पेट पीठ से मिले नहीं अब यही लिखेंगे

गीतकर्त्री शोषित-पीड़ित जन को जुटाती हैं और उनको समझाने का काम ही नहीं करती, उन्हें संघर्ष के लिए तैयार भी करती हैं –

चाहे रहो गाँव में भाई/चाहे रहो शहर में
चुप होकर अब नहीं बैठना/अपने टूटे घर में

ये जन के उन दुखों पर उंगली रखती हैं जिनसे हिंस्र व्यवस्था के प्रति उनकी आँखों में गुस्से का सैलाब उमड़ता है –

तीन सेर मडुवे पर दिनभर/खटकर आई माँ
गाँवों के सीवान लाँघ/संसद में हुए जमा
दोनों हाथ जरूरी हैं अब बजती ताली के

शान्ति सुमन ने किसान-मजदूरों के जीवन में गहरे जमे प्रेम को भी खूब लिखा है। आपस के यही प्रेम तो उन्हें संघर्ष करने का साहस और बल देते हैं। किसान-मजदूरों की बहू-बेटियाँ भी श्रम-निरत सौन्दर्य की मूर्त्तियाँ लगती हैं –

फूलों का मौसम होठों पर/ओसों का टीका माथे पर
खेतों की माटी में खूब नहाई लगती हो
गालों पर गेरू की लाली/लाली में खुशबू की जाली
घर में झाँक गयी जैसे पुरवाई लगती हो

'एक सूर्य रोटी पर' के गीतों में शान्ति सुमन के दृश्य बिम्ब उनके नवगीतों के बिम्बों की अगली कड़ी के रूप में आये हैं। नवगीतों में शान्ति सुमन अपने ताजे-टटके कोमल बिम्बों के लिये अधिक जानी गईं। पर उनके जनवादी गीतों के बिम्ब-सृजन-मजदूरों के श्रम के पसीने से धुले अत्यंत आत्मीय और संवेदनाओं से भरे हुए हैं। उनको गाँव के विविध कोने से उठाया गया है। ये बिम्बों को इतनी सहजता और निश्छल आत्मीयता से उठाती हैं कि वे अपने जीवन के ही परिदृश्य लगते हैं –

खेत बटाई के देते हैं/नहीं रात भर सोने
सपने में सपने आते हैं/घर–विवाह–गौने
पाँव रँगे हैं लाल रंग में/खुशियाँ ठहरी हैं

घर, खेत, खलिहान का यह दृश्य मन को इतना छूता है कि लगता है गीतों

को कितना ओढ़-पहन लें –

चारों ओर अँधेरा, बूढ़ी लालटेन है जलती
पुलिस न जाने क्यों आई थी/मन में पीड़ा पलती
गीतों ने कह दिया हवा यह बदलेगी फिर से

विपन्नता का एक बहुत ही मार्मिक चित्र देखने योग्य है –

आँगन की तुलसी सी बढ़ती/घर में बहन कुमारी
आसमान में चिड़िया सी/उड़ती इच्छा सुकुमारी
छोटा भाई दिल्ली जाने का भरता है दम
जाने राम कहाँ से होगी, घर की चिन्ता कम

ऐसे कितने ही चित्रों, बिम्बों और दृश्यों से इस संग्रह के गीत भरे हुए हैं। अंत में शान्ति सुमन इस संग्रह के अंतिम गीत में निर्णय के रूप में आस्था का गीत गाती/लिखती हैं –

नहीं चाहिये आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात
हम गरीब मजदूर भले/हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे

इसके बाद 'धूप रँगे दिन' के नाम से 2007 में शान्ति सुमन का अगला गीत-संग्रह आता है। यह 'एक सूर्य रोटी पर' के गीतों का प्रकर्ष है। इन गीतों में जैसे इन्होंने शब्दों, चित्रों और परिदृश्यों में विपन्न जीवन को मूर्त्त कर दिया है। इसमें घर विपन्न लोगों के घर की तरह है, प्रेम उनके प्रेम की तरह और संघर्ष उनके संघर्ष की तरह ही व्यक्त हुए हैं। मदन कश्यप ने इन गीतों को पढ़कर अपने विचार दिये हैं कि ''उनके पास आज के यथार्थ की आन्तरिक गतिशीलता को परखने की दृष्टि भी है और उसे उद्घाटित करने की कला भी। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समय और समाज की विडम्बनाओं तथा विरूपताओं को बौद्धिक स्तर पर पहचानने की बजाय संवेदना के स्तर पर ग्रहण करने का प्रयास करती हैं। यही कारण है कि वे कई बार कठोर और खुरदरे यथार्थ को भी कोमल शब्दों में बाँधने में सफल होती हैं।''

प्रसिद्ध कवि-समीक्षक मदन कश्यप के इस कथन के आलोक में 'धूप रँगे दिन' के गीतों की परख आसान होगी। शान्ति सुमन ने इन गीतों में अपनी विचार-संवेदनाओं को अनुकूल शिल्प-भाषा, बिम्ब, शब्द-गठन आदि देकर अद्भुत जनवादी गीतों की रचना की है। इसमें धुँआते गाँवों का घुटन और दर्द है तो घर के सीलन और उड़ी हुई छानों का

बेपनाह दुख भी है. बच्चों के होंठों पर रुकी हुई हँसी है और आँखों में भरपेट भात के सपने। कीचड़ में सने हुए उनके हाथों की लकीर पढ़ी नहीं जाती। 'मुनिया के घर का सूरज', 'उदास हँसी', 'बारिश में बच्चे', 'निम्न मध्यवर्ग का गीत', 'बड़े लाल घर में', 'आटे सी पिसती माँ' आदि इस संग्रह के अपूर्व जनवादी गीत हैं। मदन कश्यप के शब्दों में ''ये ऐसी कविताएँ हैं जिन्हें शान्ति सुमन ने गीत के कोमल शिल्प में ढालकर दुर्लभ कुशलता का परिचय दिया है'' –

गाय नहीं कहती अब/वह मुनिया को
लगी समझने फिर से/इस दुनिया को
अपना ही गाँव-घर उसे अब/अपना सा लगने लगा

वे 'आटे सी पिसती माँ' में लिखती हैं –

जब से देखा है माँ को/आटे सी पिसती हुई
बहन कभी तितली सी थी/अब चुभोती हुई सूई
गाँव-वनों-शहरों में फाँके/अपना भाई धूल

भूख और फटेहाली से निजात पाने के लिये अपने पति के साथ घर की स्त्रियाँ भी मजदूरी करने लुधियाना, कोलकाता या अन्य शहरों में जाती हैं। अपने विस्थापन का दुख और ऊपर से नई जगहों का अजनबीपन दोनों ही उन स्त्रियों के लिये क्लेश के कारण हैं। शहर में रहते हुए भी गाँव का अपना 'टटघर' उनकी आँखों से एक क्षण को भी ओझल नहीं होता –

खोज रही है खपरैलों पर/पसर गई लौकी की लतरें
गिरने को दीवार मगर है/थाम रही छानों की सतरें
दूब-धान की जगह जानकी/आँचल में ही पियराई

इन स्त्रियों के घरवाले मजदूर जानते हैं कि वे घर छोड़कर शहर क्यों आए। अब जब आये हैं तो उनको यही करना है –

धूप और तेज बरखा से हम/फैला देंगे अपनी बाँहें
जंगल के कानून काटकर/रोपेंगे अपनी राहें
मिहनत के पाँवों से तब ये छाले जायेंगे
खुशियाँ, नींद, सुबह हम सभी कमा ले आयेंगे

और ये गाँव की मिहनतकश लड़कियाँ हैं जिनके बाहरी रूपों पर भले गरीबी की धूल पड़ी हो, पर अब वे इस रंग में इतनी रंग गयी हैं कि उन्हें दुख से लड़ना आ गया है –

खिलखिलाती बहुत हँसती/गाँव की लड़की
चुनती साग खेत में/करती हुई हवा से बातें

जैसे बड़ी बात को/छोटी खबर बनाकर छापे
टोकती है कभी कातिक/में लगी कड़की

शान्ति सुमन ने गीतों में उस नया 'मेघदूत' को भी लिखा है जिसमें बादल यक्षप्रिया को नहीं अर्थात् मजदूरिनों को नहीं, मजदूरों को ही खोजता है –

सावन के सपने अब तो/बसते हैं लुधियाने में
सारी-सारी रात जगा/करते हैं सिरहाने में
किले नये लगते तम के वन/गहराया सन्देह

और तो फिर गाँव में प्रकृति और प्रकृति में गाँव या जीवन में दुख और दुख में जीवन, संघर्ष में सुख और सुख में संघर्ष इतने एकमेक होते हैं कि भीतर की धरती चिनकती तो जरूर है –

फटी हुई माँ की साड़ी/घर की उदास आँखें
खाँस रहे बाबू के इन/हाथों पर रखी सलाखें
पीठ दिखाई दे भाई की/कई बोझ लिये

पर व्यवस्था का झूठ और छल धीरे-धीरे श्रमजीवी संघर्षरत जन के हौसले के आगे तार-तार हो जाता है –

सफर बड़ा यह लम्बा है/इतिहास बड़ा संगीन
भूमिहीनों को पट्टे पर/है बंजर मिली जमीन,
मूठ हथौड़े-हल की पकड़े/दिये समय को तूल

तभी डॉ० शिवकुमार मिश्र को शान्ति सुमन के जनवादी गीत 'मानवीय चिन्तन के एकात्म से उपजे गीत' लगते हैं। उन्होंने साफ शब्दों में लिखा है कि ''जनधर्मिता और कविताधर्मिता का एकात्म हैं शान्ति सुमन के गीत, जो कविता को उसके वास्तविक आशय में जनचरित्री बनाते हैं, उसे जन की आशाओं-आकांक्षाओं से बेहतर जिन्दगी के उसके स्वप्नों तथा संघर्षों से जोड़ते हैं।'' बस्तुतः शान्ति सुमन के जनवादी गीत जनधर्मी पक्षधरता की पूरी ऊर्जा से भरपूर हैं। अतएव ''इन गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है।''

●

यह गीत की कला है, शोर नहीं

❑ नचिकेता

कच्चे गीतों से अच्छा है
नारा एक लिखो
बँधे हुए द्वीपों से बेहतर
धारा एक दिखो

गीत की ये पंक्तियाँ नवगीत से जनगीत तक की एक लम्बी दूरी तय करते हुए हिन्दी गीत-रचना का एक नया सौन्दर्यशास्त्र गढ़ने को कृतसंकल्प कवयित्री शान्ति सुमन का जनता की अदालत में दायर एक हलफनामा है। अपनी इस उद्घोषणा में शांति सुमन महज अपने रचनात्मक उद्देश्यों का ही उद्घाटन नहीं करती हैं, बल्कि मलार्मे की इस अभ्युक्ति को भी विखंडित करती प्रतीत होती हैं कि कविता शब्दों से बनती है, विचारों से नहीं। हालांकि गीत को रचनाकार की निजी आत्माभिव्यक्ति का सर्वाधिक सघन और सबल माध्यम माना गया है जिसके केन्द्र में आत्मपरक अनुभूतियों, भाव-प्रवणता, रागात्मक तरलता और लयात्मक संगीतात्मकता उपस्थित होती है। जाहिर है कि गीत में विचारधारा की मौजूदगी उसकी अंतर्दृष्टि में मूल्य-चेतना की शक्ल में निहित होती है। फिर भी शांति सुमन को अपने गीतों में मानवीय करुणा, शृंगार और सौन्दर्यानुभूतियों के कच्चे गीत रचने के बनिस्पत विचार प्रधान नारा लिखना अधिक मुनासिब लगता है। उन्हें मध्यवर्ग की यथास्थितिवादी जीवन-स्थितियों में बंधकर रहने में भी विश्वास नहीं है, वह तो श्रम-सौंदर्य की अविरल बहती नदी की उछलती-कूदती और नाचती-गाती धारा बनना चाहती हैं। यही वह प्रमुख संकेत-सूत्र है, जिसकी डोर पकड़कर शान्ति सुमन के गीतों की अंतरंग गहराइयों में उतरा जा सकता है। उतरना भी चाहिए।

किसी भी रचनाकार के रचना-संसार का जायजा लेने के लिए उस कालखण्ड की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश का एक संक्षिप्त परिचय पा लेना निहायत लाजमी होता है, जिसमें रहकर उस रचनाकार ने अपना रचना संघर्ष जारी रखा है। शांति सुमन के रचनाकार-व्यक्तित्व का निर्माण सातवें दशक के आरंभ में होता है। यह हिन्दी कविता का सबसे नाजुक दौर था। दरअसल भारतीय जन-मानस स्वतंत्रता-प्राप्ति के मोहभंग से गुजर रहा था। सारे सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक जीवन-मूल्य परिवर्तन की तरल अवस्था में थे। पुराने मूल्य टूट रहे थे, उनके प्रति लोगों के मन में घोर अनिश्चय और अविश्वास का वातावरण था। अराजक अस्वीकार का बोलबाला

था। नयी समाज-रचना की आकांक्षा थी, मगर स्वरूप स्पष्ट नहीं था। विकल्पहीनता की स्थिति थी। ऐसे समय में, हिन्दी कविता भी घोर अनिर्णय की स्थिति में थी। यह कभी अकविता बनती थी तो कभी युवा कविता। कविता पर व्यक्तिवाद, बुद्धिवाद और कलावाद की चौतरफा मार पड़ रही थी। कविता किसिम-किसिम के नाम और संज्ञा से विभूषित हो रही थी। अनिश्चय के इसी माहौल और अराजक वातावरण में नवगीत की जमीन जोती, कोड़ी और सींची जा रही थी। शांति सुमन ने भी अपनी रचनात्मक ऊर्जा की बदौलत एक-दो बिरार खींचने का प्रयत्न किया था – 'मैंने मुख्यतः गीत रचना की है – नवगीत की रचना। आधुनिक गीतों के साथ नवता का प्रयोग ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा तंत्र की भंगिमा से संबद्ध है। नयी कविता के समानान्तर ही मुझे नवगीत की स्थापना में आस्था है तथा नयी कविता की भाँति गीतों में भी नूतन दृष्टि एवं भावबोध अपनाए जाने के पक्ष में हूँ' (ओ प्रतीक्षित)। स्पष्ट है कि शांति सुमन अपने गीत-सृजन के वास्ते उपयुक्त विधा का चयन करते समय जीवन-जगत को देखने, रचने और अभिव्यक्त करने की पद्धति और दृष्टि का विचारधारात्मक चुनाव ही नहीं करती हैं, वरन् नयी कविता के समानान्तर ही अपने गीतों के भावबोध और जीवन-दृष्टि के रूप में आधुनिकतावाद का प्रश्रय ग्रहण करती हैं।

नयी कविता के समानान्तर ही नवगीत के भावबोध, जीवन दृष्टि और रचना दृष्टि में नवीनता का अन्वेषण करती हुई शांति सुमन के गीत आखिरकार आधुनिकतावादी कुण्ठा, संत्रास, निराशा, हताशा, महानगरीय यांत्रिकता, अस्तित्व संकट, मृत्युबोध, अजनबीपन, संबंध विघटन जैसे नकारात्मक जीवन-मूल्यों के चंगुल में फँस जाते हैं। मध्यवर्गीय जन-जीवन की त्रासदी, विसंगतियाँ, विडम्बनाएँ, यथास्थितिवाद, स्वार्थपरता और ढुलमुलपन शांति सुमन के इस दौर के गीतों (नवगीतों) की केन्द्रीय विषय-वस्तु रही है। अपनी विशेष ग्रहणशीलता के कारण शांति सुमन अपने गीतों में नयी ताजगी, सादगी और कलात्मक वस्तुपरकता के सृजन में संघर्षरत दिखलाई देती हैं – ''भीड़ों की जिन्दगी साथ लिए ऊब/नंगी खामोशी में चैन गया डूब/ताख पर धरे पड़े सारे एहसास/छाते रहे अपने घर फूस/हम चल रहे जुलूस में/हमारे पीछे एक जुलूस'' अथवा ''घुटते संबंधों की/चर्चा बदनाम/धुएँ के छल्लों-सा/जीना नाकाम/मकड़ी के जालों–सी बिछी हुई उलझनें/सतही शर्तों से सब दबे हुए पहर/पत्थरों का शहर/.....सिर्फ औपचारिकता है/परिचय-प्रणाम /चाय पिला जोड़ें सब/चीनी के दाम/अंधी दीवारों से टकरा निरूपाय/लंगड़े सुधारों के कँपसते पहर/पत्थरों का शहर।''

यह सही है कि शांति सुमन के पहले गीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित', जिसका प्रकाशन वर्ष 1970 में हुआ है, के गीतों में मध्यवर्गीय निराशा बोध, दिशाहीनता,

यथास्थितिवाद और ढुलमुलपन की मनःस्थिति का चित्रण हुआ है। ऊब, घुटन, टूटन, आत्मनिर्वासन, तनाव आदि के क्रूर शिकंजे में फंसे शहरी मनुष्यों की यांत्रिकता, हृदयहीनता, बनावटीपन, अजनबीपन और अमानवीय जीवन-स्थितियों को इनके गीतों में व्यापक अभिव्यक्ति मिली है। इसलिए इन गीतों में भावगत अमूर्त्तन के साथ-साथ नकारात्मक क्रियापदों, विशेषणों, उपमा, उपमानों, बिम्बों और प्रतीक-चित्रों का अनोखा आजाबघर निर्मित हुआ है। इसके लिए सिर्फ शांति सुमन को जवाबदेह नहीं ठहराया जा सकता। यह उस दौर के नवगीतों की मुख्य विषय-वस्तु थी। जहाँ यह सच है, वहीं यह भी सच है कि शांति सुमन के गीतों में तत्कालीन नवगीत के दमघोंटू पर्यावरण से शीघ्र निजात पाने की तीव्र छटपटाहट भी परिलक्षित होती है। उनकी रोयेंदार कुहासे से झंपी-झंपी आँखें सोनराई पातों पर ठहरी हुई भोर के आगमन को पहचान जाती हैं – ''ठण्डे लोहे-सा एकांत/कनेरों-सी टुसियाई रात/सूरज ने छिड़के अबीर/दुहरे हैं कुहरी के गात/महकी हैं साँसें/सुधियाँ तपी-तपी/अलसायी पलकों पर ठहरी भोर/रोएँदार कुहासे–/आँखें झँपी-झँपी/सोनराई पातों पर ठहरी भोर।''

ओमप्रकाश ग्रेवाल की दृष्टि में ''नवगीत के नाम से प्रचलित अधिकतर गैर जनवादी गीतों में कस्बों अथवा महानगरों में बसनेवाले मध्यवर्गीय व्यक्ति की बेबसी तथा पराजय-भावना अथवा उसकी कड़वाहट और खीझ ही प्रायः व्यक्त होती है। एक तरफ तो यहाँ हमें एक अकेला व्यक्ति खड़ा नजर आता है और दूसरी ओर उसे खौफजा रखनेवाला महानगरीय परिवेश, जिसमें अजनबी चेहरे हैं और मशीनें हैं, हड़बड़ी है और अस्थिरता है। इन गीतों में व्यक्त होनेवाली मनःस्थिति के अंतर्गत हमें लगता है कि हम एक ऐसे संसार में जी रहे हैं, जिसमें व्यक्ति अपनी मानवीय गरिमा खोकर नगण्य हो गया है और उनकी सभी मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह् लग गया है। दिशाहीन होकर वह अंधकार में भटक रहा है और कदम-कदम पर उसे अप्रत्याशित झटके लगते रहे हैं। अपने छूंछे पड़ गए पारंपरिक मूल्यों की खोखल से बाहर निकलते ही उसे यह समूचा संसार एक हास्यास्पद किन्तु भयभीत कर देनेवाला बेतुका नाटक नजर आने लगता है।'' हिन्दी नवगीत का जो वस्तुनिष्ठ मानचित्र ओम प्रकाश ग्रेवाल ने बनाया है, शांति सुमन के नवगीतों की वस्तुगत दुनिया इससे अलहदा नहीं है। इसके बावजूद वह अपने रचनाकार की आत्मालोचना करती है। कोल्हू के बैल की तरह एक घेरे में एक ही जगह लगातार घूमते रहना उन्हें मंजूर नहीं है। फलतः वह आत्मसंघर्ष करके अपने वैचारिक अंतर्विरोधों पर काबू पाने में कामयाब हो जाती हैं। उनके गीतों से नकारात्मक क्रियापदों और विशेषणों का लोप होने लगता है तथा उनके बिम्ब-प्रतीक और मुहावरे भी सकारात्क होने लगते हैं – ''तुम आये/जैसे पेड़ों में पत्ते आये'' या ''याद तुम्हारी जब भी

आये/ऐसे आये/सन्नाटे में दबी चीख नंगी हो जाये।'' शांति सुमन के गीतों के बिम्बों और प्रतीकों के चुनाव में आया यह सकारात्मक परिवर्तन और प्रयोगशील नयापन जीवन-जगत को देखने, समझने और अभिव्यक्त करने की पद्धति और सोच में आई तब्दीली का द्योतक है।

'परछाई टूटती' के गीतों तक आते-आते शांति सुमन के नवगीतों पर से मध्यवर्गीय निराशाबोध और ढुलमुलपन की काली परछाई भी शनैः-शनैः हटती दिखलाई देती है। 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों में अवस्थित आधुनिकतावादी सम्बन्ध-विघटन की टूटन धीरे–धीरे सामाजिक-पारिवारिक रिश्तों की काव्यात्मक मिठास में घुलने लगती है। शिकवे–गिले आत्मीयता के साँचे में ढलकर एक नये मानवीय रिश्ते का संवेदनशील अनुमोदन बन जाते हैं – 'एक चिड़िया/चोंच में लेकर उड़ी अनबन/भाभियों के खनकते/हाथों हिले कंगन/स्वागतम् गूँथी हथेली/धो गई शिकवा/मुट्ठियों में बन्द कर ली/नागकेसर हवा।' यह सार्थक क्रिया अकारण और अनायास ही घटित नहीं होती। इसके सामाजिक और ऐतिहासिक आधार हैं। निकोलाई अस्त्रोब्स्की ने कहा है कि काम करो, काम करने के दौरान ही तुम्हारा जुकाम ठीक हो जायेगा। शांति सुमन की चेतना का जुकाम भी श्रम-सौंदर्य और उत्पादन-संबंधों के ताप से ठीक हो जाता है। उन्हें फसलों की हरियाली में जीवन-संघर्ष का अक्स दिखलाई देने लगता है – ''गेहुँओं की पत्तियों पर/छपा सारा हाल/फुनगियों पर दूब की/मौसम चढ़ा इस साल/रंग हरे हो गए पीले/बात में मितवा/मुट्ठियों में बन्द कर ली/नागकेसर हवा''

''अजब-अजब भंगिमाएँ गढ़नेवाली' 'पोखर में डूबकियाँ लगाती हुई' उदास, दुखभरी, नीरस और अवसादों में डूबी 'गोरी-दुबली शाम' अब 'माँ की परछाई-सी' दीखने लगी है और दिन पिता की तरह, जिनके श्रमशील माथे से पसीने की बूँदे चूने लगी हैं। यह संवेदनशील श्रम-सौंदर्य दरहकीकत, शांति सुमन के परवर्त्ती नवगीतों का वह प्रस्थान बिन्दु है, जिसका विकसित रूप ही उनके क्रांतिकारी जनगीतों (जनवादी गीतों) की आधारशिला है – ''माँ की परछाई-सी लगती/गोरी-दुबली शाम/पिता सरीखे दिन के माथे चूने लगता घाम।'' ऊपरी सतह से एक सौंदर्य-बिम्ब दिखाई देनेवाले इस वृत्तांत में एक मध्यवर्गीय किसान की त्रासदी भी समाहित हो गई है। क्योंकि उसकी छोटी आमदनी भी उसे गुदगुदाती कम, दुखती ज्यादा है। उसे अपनी पूरी जिन्दगी मिट्टी के प्याले की तरह दरकी हुई महसूस होती है – ''कहीं-कहीं दुखती है/घर की छोटी आमदनी/धुआँ, पहनते चौके बुनते केवल नागफनी/मिट्टी के प्याले-सी दरकी/उमर हुई गुमनाम।''

प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य गीत-रचना की सर्वाधिक उर्वर भूमि होते हैं। प्रेम,

प्रकृति और सौन्दर्य को विषय-वस्तु बनाकर, कदाचित, दुनिया में सर्वाधिक गीत लिखे गए हैं। इसलिए इन विषयों पर गीत लिखना हर रचनाकार के निमित्त एक जोखिम-भरी चुनौती होता है। प्राकृतिक परिवेश पर शांति सुमन ने बहुत ज्यादा गीत नहीं लिखे हैं। **दरअसल उनका प्रकृति-प्रेम उनके गीतों की मूल्य-दृष्टि और टटके बिम्ब-विधान में ही समाहित है। लेकिन उनके सौंदर्य-चित्र पाठकों को बरबस मोह लेते हैं। यह अलग बात है कि शांति सुमन के सौंदर्य-चित्र छायावादी सौंदर्य-चित्रों के मानिन्द वायवी और अतीन्द्रिय, उत्तर छायावाद की मांसल रूमानियत और नयी कविता के अमूर्त्त भाव-लोक के अलम्बरदार नहीं हैं।** यह तो भारत की निम्नवर्गीय मजदूरिनों व मजदूरों के यथार्थवादी चित्र हैं, जिजीविषा और जीवन-संघर्ष की धमनभट्टी में तपकर कुन्दन बन चुके वस्तुवादी सौंदर्य–चित्र हैं – ''यह भी हुआ भला/कथरी ओढ़े ताल–मखाने/चुनती शकुंतला/.....मुड़े हुए नाखून/ईख–सी गाँठदार उँगली/टूटी बेंट, जंग से लथपथ/खुरपी–सी पसली/बलुआही मिट्टी पहने/केसर का बाग जला/बीड़ी धुकती ऊँघ रहीं/पथराई शीशम आँखें/लहठी सना पसीना/मन में चुभती गर्म सलाखें/एक सूर्य रोटी पर औंधा/चाँद नून-सा गला।'' इस गीत के सारे शब्द, बिम्ब, प्रतीक, मुहावरे श्रमिक जनता और किसान जीवन से लिये गये हैं। इस गीत की लय-संरचना के साथ-साथ शब्द-संयोजन में अद्‌भुत वस्तुपरकता है। एक श्रमशील और संघर्षशील ग्राम्य मजदूरिन का यह यथार्थवादी चित्र, असल में, एक अनोखी उपलब्धि है। बेहद संवेदनशील और अर्थपूर्ण भी।

शांति सुमन ने दर्जनों उम्दा प्रेमगीत लिखे हैं। उनके हर प्रेमगीत का अलग सौंदर्य है, अलग अनुभूति है, अलग रंग है, अलग चमक है, अलग खुशबू है। कहीं तो वह परदेशी प्रियतम के विरह से व्याकुल ग्राम्य युवती दिखाई देती है – ''दुख रही है अब नदी की देह/बादल लौट आ/....इंतजार हो गया विदेह/बादल लौट आ/.....उग रहा है मौसमी संदेह/बादल लौट आ'', तो कहीं मीरा की 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई, जैसी क्रान्तिकारी/विद्रोही उद्‌घोषणा के समानान्तर मुक्त और स्वस्थ प्रणयाकांक्षा की उद्‌घोषणा के जरिये आधुनिक स्त्री-विमर्श को आगे बढ़ाती प्रतीत होती है, प्रेम पर लगे सामाजिक प्रतिबन्ध को नकारती हुई/पुरुष-सत्ता के वर्चस्व को चुनौती देती हुई – ''एक हँसी/फेंककर इधर-उधर/दूबों को सहलाना प्यार से/पल्लू को स्वतः खिसकने दिया/माथ झुका/गंधिल आभार से/कसी हुई पसीजती हथेलियाँ/उमड़-घुमड़ गुजरीं बरसातें/हाथों में एक-दो मुंगफलियां/रंगारंग अंतरंग बातें/यादों में तह करके रख लें हम/पार्कों में हुई मुलाकातें।'' शांति सुमन का स्त्री-विमर्श अपने बासम्स से पूरे भूमण्डल को चाँप लेनेवाला कुण्ठित, आत्ममुग्ध और बड़बोला स्त्री-विमर्श नहीं है, न ही 'ब्रा बर्निंग मूवमेंट' जैसा

खोखला, दिखावटी और फैशनेवुल आन्दोलनकारी शगल है। यह तो पुरुषसत्तात्मक समाज के द्वारा स्त्रियों के उन्मुक्त प्रेम के अधिकार पर लगाये गये अमानवीय प्रतिबंधों के विरूद्ध उठा खड़ा हुआ प्रतिरोधी स्वर है। इसलिए उनकी (शांति सुमन की) यह उद्दाम प्रेमाभिव्यक्ति कुण्ठारहित और उदात्त प्रेमाभिव्यक्ति है और मादक भी। इसकी मादकता में माँसलता है, लेकिन अश्लीलता नहीं है। उन्होंने परखनली में ताजमहल गढ़ दिया है, संगमरगर के टुकड़ों से कुलाँचे भरता मृगछौना रच दिया है अथवा शरद पूर्णिमा को लता मंगेशकर का कंठ-स्वर दे दिया है। कहीं अपनी सद्यः सुहागिन बनी पुत्री की ओर महुआई आँखों से देखती और छोह भरे स्वर में आगाह करती हैं कि ''धीरे पांव धरो/आज पितागृह धन्य हुआ है/मंत्र सदृश उचरो/तुम अम्मा के घर की देहरी/बाबूजी की शान/तुम भाभी के जूड़े का पिन/भैया की मुस्कान/पोर-पोर आँगन के/लाल महावर-सी निखरो'' तो कहीं एक प्रौढ़ भारतीय महिला की भांति अपने पोते-पोतियों/नाती-नतनियों की तुतली भाषा में लिखी पाती पर रीझती दृष्टिगोचर होती हैं – ''बाहर की तो बात पता है/तुम घर की लिखना/जाते होंगे बूढ़े बाबा, सुबह रोज टहलने/दादी अम्मा तुलसी चौरा लगी साफ करने/सूरज कैसे उगता है/यह भी जरूर लिखना।'' कहीं वह कच्चे प्रेम की अछूती गंध से मदमाती सद्यः युवा हुई तरूणी के लहालोट प्रेम के रंग से आकंठ सराबोर नजर आती हैं – ''केसर रंग रंगा मन मेरा/सुआपंखिया शाम है/बड़े प्यार से सात रंग में/लिखा तुम्हारा नाम है/.....तन्मय चुम्बनसिक्त अधर पर/लिखा तुम्हारा नाम है।'' वस्तुतः शांति सुमन के इन प्रेमगीतों में रागात्मक बोध का रंग बहुत ही गहरा और चटख है। उनके इन गीतों के अंतर्जगत में सावधानी के साथ प्रवेश करने पर हमें एक संपूर्ण भारतीय नारी का मुकम्मल चित्र देखने को मिल जाता है, जिसमें वह कभी दादी, माँ, बहन, बेटी, पत्नी, प्रेयसी यानी स्त्री के हर रूप में पूरी तन्मयता और रागात्मकता के साथ मौजूद मिलती हैं। रागात्मक तन्मयता इतनी गहरी कि गीत के हर शब्द से अनुभूति का बगूला उठता महसूस होता है।

शांति सुमन स्वयं भी मानती हैं कि ''मेरे ये गीत भाव-भीगे क्षणों के, हल्के-फुलके और भारी भरकम क्षणों के गीत किसी सुग्गे के लिए सेमल के फूल नहीं हैं। इनमें मध्यवर्गीय भाव चेतनाओं का उतार चढ़ाव आपको यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलेगा और धरती की बातों से धरती की गंध मिलते ही आप यह महसूस करेंगे कि इन गीतों में कुछ है, जो आपको बार-बार छू जाता है। इस छुवन के पीछे इन नवगीतों में न केवल मध्यवर्गीय ऊब, कुंठा, घुटन, पीड़ा, विवशता शैथिल्य है, अपितु हृदय और बुद्धि का असामंजस्य, व्यवहार एवं आदर्श का वैषम्य एवं टुकड़े-टुकड़े होकर बँटे व्यकित के बाहरी दबाव भी हैं।' शांति सुमन की इस आत्मस्वीकृति में उनकी आत्मालोचना की बीज-वस्तुएँ भी अंतर्निहित हैं, जो

उन्हें अपनी गीत-रचना के अंतर्विरोधों को हल करने, आत्मसंघर्ष के जरिये इन अंतर्विरोधों पर काबू पाने में मदद करती हैं। तभी वह नवगीत-चेतना के कच्चे गीत लिखने की जगह विचार-प्रधान गीत-संवेदना के नारे लिखना अधिक समीचीन समझती हैं।

'समग्र-चेतना' के नवगीत विशेषांक 'नवगीत और उसका युगबोध' में गीत (मंचगीत), नवगीत और जनगीत की सोच, समझ, पहचान और परख का एक खतरनाक घालमेल पैदा करने का यत्न किया गया है। गीतकार देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' मनोगतवादी ढंग से हिकारत भरे अंदाज में कहते हैं कि 'जनगीत, नवगीत और मंचगीत जैसे शब्दों से बेमानी वितण्डावाद फैलता है। जैसे सी० पी० आई०, सी० पी० एम० और सी० पी० आई० एम० एल० आदि राजनीतिक दल मूलतः एक ही हैं, वैसे ही गीत की उपुर्यक्त संज्ञाएँ भी भिन्न होकर भी अभिन्न हैं।'' देवेन्द्र शर्मा इन्द्र की इस बारीक, वस्तुपरक और वैज्ञानिक समझ के लिए उन्हें 'भारत-रत्न' की उपाधि दी जानी चाहिए। गीत, नवगीत और जनगीत को अभिन्न मानने का यह कुतर्क भी अजीब है। हालांकि 'इन्द्र' जी को अपनी इस अवैज्ञानिक कुतर्क के खोखलेपन का अहसास है। तभी तो वह आगे कहते हैं कि 'जनगीत नाम देने की जरूरत उन गीतकारों को पड़ी, जिन्हें प्रगतिवादी कहलाने से परहेज था और जो नवगीत के द्वार पर प्रवेश वर्जित की पट्टिका टंगी देखकर हताश हो चुके थे।..... एक ही गीत को बच्चन जी पढ़ें तो वह मंचगीत, शंभुनाथ सिंह पढ़ें तो नवगीत और रमेश रंजक पढ़ें तो जनगीत – यह एक कठहुज्जती नहीं है तो और क्या है ?' तात्पर्य है कि जनगीतकार रमेश रंजक गीतकार भी नहीं हैं। किसी गीत-रचना को किसी व्यक्ति, दल और आलोचक विशेष से अनुज्ञा और स्वीकृति पाने के बाद ही नवगीत कहलाने का अधिकार मिलेगा। जनता की इस निर्णय में कोई भूमिका नहीं है। इस वैज्ञानिक समझ पर कौन फिदा नहीं होगा। वास्तविकता इससे भिन्न है। गीत, नवगीत और जनगीत की रचना दृष्टि (वर्गदृष्टि, विश्वदृष्टि और कलादृष्टि तीनों इसमें सम्मिलित हैं), रचनात्मक उद्देश्य, वैचारिक अंतर्वस्तु, प्रभावी अंतर्वस्तु और मूल्य-दृष्टि में गुणात्मक अन्तर होता है। केवल जन-साधारण की जीवन-स्थितियों के अनुगायन मात्र से ही कोई गीत-रचना जनगीत कहलाने का हकदार नहीं हो जाती, प्रत्युत् रचनात्मक उद्देश्य, नीयत और प्रभावान्विति में व्यापक स्तर पर अंतर्दृष्टि के साथ जनपक्षधर होने की अहमियत अक्षुण्ण होती है। एक नवगीतकार समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन के अंतर्विरोधों, विसंगतियों और विडम्बनाओं को उसकी नियति मानकर निष्क्रिय हो जाता है, यानी वह यथास्थितिवाद का पोषण करने लग जाता है। जबकि एक जनगीतकार सामाजिक जीवन के इन अंतर्विरोधों, विडम्बनाओं और विसंगतियों के नकारात्मक तत्त्वों की आलोचना करता है तथा जनता को इन

अमानवीय परिस्थितियों को बदलकर अधिक मानवीय और समाजसापेक्ष बनाने के संघर्ष की खातिर प्रेरित, प्रोत्साहित और सक्रिय बनाने का प्रयास करता है। इसलिए मंचगीत, नवगीत और जनगीत अलग-अलग मानना नहीं, वरन् संबको एक मानना ही कठहुज्जती है।

गीत (मंचगीत), नवगीत और जनगीत के बुनियादी फर्क के अनुशीलन, विश्लेषण और उद्घाटन के वास्ते एक ही गीतकार शान्ति सुमन के गीतों के अंतर्जगत का संक्षिप्त मुआयना किया जा सकता है। शान्ति सुमन के 'ओ प्रतीक्षित' में संकलित गीत शुद्ध रूप से नवगीत हैं, प्रभावी और वैचारिक दोनों अंतर्वस्तुओं के धरातल पर। इन्हें जनगीत का दर्जा नहीं दिया जा सकता। 'परछाई टूटती' के गीत भी मूलतः नवगीत ही हैं। यह बात दीगर है कि इन गीतों के भीतर से जनगीत के अंकुर भी फूटते दृष्टिगत होते हैं। लेकिन 'सुलगते पसीने' और 'मौसम हुआ कबीर' में संकलित गीत पूर्णतः जनगीत हैं। इन्हें नवगीत मानना कठहुज्जती होगी। हालांकि 'सुलगते पसीने' और 'मौसम हुआ कबीर' के गीतों की बनावट, बुनावट और रचाव में काफी अंतर है। इसे सरल, सपाट और इकहरे ढंग से नहीं समझा जा सकता है क्योंकि गीत की रचना-प्रक्रिया सरल, सपाट और इकहरी नहीं होती, अपितु द्वन्द्वात्मक, जटिल, दुहरी, आड़ी, तिरछी, चक्रीय और गझिन होती है।

'नयी कविता के समानान्तर ही नवगीत की स्थापना में आस्था' रखनेवाली और नयी कविता की भांति गीतों में भी नूतन दृष्टि और भावबोध के अपनाये जाने की पक्षधर शांति सुमन भी मानने लगती हैं कि जनगीत की रचना के लिए ''राजनीतिक विचारधारा को ग्रहण किया जाए ताकि कला के साथ विचारों का संतुलन बना रहे, क्योंकि जनवादी कला जीवन को ही अपना स्रोत मानती है और सीधे जीवन से प्राप्त अनुभवों और प्रेरणाओं को महत्व देती है।..... जीवन की भूमिकाओं में गहरी पैठ की जरूरत पड़ती है, न कि अमूर्त्त सामान्यीकरण की'' (मौसम हुआ कबीर)। क्योंकि ''एक ओर तो ये जनवादी गीत (जनगीत) अर्धसामन्ती और अर्धऔपनिवेशिक समाजव्यवस्था और उसके शोषण-तंत्र को बेनकाब करते हैं, तो दूसरी ओर अपनी संघर्षजीवी रणनीति से उन चक्रव्यूहों से निकलने का रास्ता भी ढूंढते हैं'' इसलिए ''जनवादी गीतों की भाषा में मानवीय गरिमा की अर्थसत्ता होती है। अब ये भूख लगने पर रोटी के लिए पथरा जाने की बजाय रोटी छीननेवालों के चेहरों पर आग बरसाने में सक्षम हैं।'' .....जनवादी गीत के शब्द लहू के कतरे हैं, संघर्ष से मिले हुए जन-साधारण की आँख, हाथ, पाँव, पीठ, पेट हैं। जनवादी गीतों की भाषा ने यह विश्वास दिया है कि मेहनतकश इंसान हर वक्त जिंदा रहता है और बंद मुट्ठियाँ जब खुलती हैं, तब कितनी ही स्याह रातों के सर्द अंधेरे समाप्त हो जाते हैं'' (सुलगते पसीने)।

जनकवि कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की दृष्टि में 'एक ओर अपनी जमीन से जुड़कर पूरी संवेदना के साथ रचना में उतर आना और दूसरी ओर पूरे जोश-खरोश के साथ समय में खड़ा होने के अहसास से रचना को कुछ आक्रामक मुहावरे से लैसकर वक्ती माहौल में जबरन सरगर्मी पैदा करना – ये दोनों बिलकुल भिन्न और परस्पर विरोधी स्थितियाँ हैं और कला के अनुशासन-वृत्त में एक यदि रचना की शक्ति के रूप में सामने आती है तो दूसरी उसकी दुर्बलता की ओर संकेत करती है। यह अंतर-रेखा खींचना एक बहुत ही मुश्किल और जोखिम भरा काम है और यह निर्णय करना आसान नहीं कि रचना कहाँ क्रांतिकारी सार को पकड़ने की कोशिश में फिसलकर सरलीकरण और/या रूपवाद की गिरफ्त में पड़ जाती है।'' ''सुलगते पसीने'' में संकलित शांति सुमन के गीतों की भाषा, मुहावरे और तेवर काफी आक्रामक आग उगलते-से, तीक्ष्ण, धारदार और मारक हैं। इन गीतों में वक्ती माहौल में सरगर्मी पैदा करने की कूबत भी है। इसके बावजूद इन्हें क्रांतिकारी सार को पकड़ने की कोशिश में फिसलकर सरलीकरण या रूपवाद की गिरफ्त में फंस जाना नहीं माना जा सकता। **ये गीत, वस्तुतः नक्सलवादी किसान आंदोलन और उसकी क्रांतिकारी सामाजिक चेतना की उपज हैं। इसलिये ये गीत संघर्षशील जन-सामान्य को संघर्ष के निमित्त संगठित, उद्बोधित और प्रेरित करने में हथियार की तरह प्रयुक्त हुए हैं, वक्ती माहौल में जबरन सरगर्मी पैदा करने के उद्देश्य से नहीं** – ''अधभूखे पेटों में जबतक सुलगेगी चिनगारी/आदमखोरों की गफलत में भटकेगी लाचारी/साथी, तब तक निश्चय ही –/संघर्ष रहेगा जारी''/ अथवा ''नहीं चाहिए आधी रोटी और न जूठा भात/यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात/हम गरीब मजदूर भले/हम किसान मजबूर भले/पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे/ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे।'' **शांति सुमन के ये गीत, वास्तव में गुलाब की पंखुड़ियों पर लिखी अग्नि-शलाका हैं, शबनम की लिपि में लिखी क्रान्ति की कारिका हैं।**

जॉर्ज सैण्ड के विचार से 'कला कोई ऐसा कौशल नहीं है जो जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों के ज्ञान के बिना अपने आप विकसित हो सके। इसके लिए जरूरी है कि कलाकार व्यापक अनुभव का संग्रह करे और सत्य की खोज में भाग ले। उसे बहुत कुछ पचाने, बहुत ज्यादा प्यार करने तथा बहुत ज्यादा दुख झेलने और सहने की आवश्यकता है। इस दरम्यान पूरे मनोयोग से रचनात्मक कार्य में भी संलग्न रहना चाहिए। तलवार का प्रयोग करने से पहले चलाना सीखना चाहिए। एक कलाकार यदि कलाकार ही है तो वह पुंसत्वहीन प्राणी है, तात्पर्य यह है कि तब वह या तो अत्यंत साधारण स्तर का कलाकार होगा या फिर अतिवादी व्यक्ति होगा या पागल होगा।' **शांति सुमन गीत-रचना**

के लिए जीवन-जगत की विस्तृत दुनिया से व्यापक अनुभवों का विपुल भण्डार एकत्र करती हैं। इसलिए उनका ग्रामीण परिवेश, प्रकृति प्रेम, किसान-चेतना, लोक जीवन और लोक संस्कृति के तत्व उनके गीतों में घुल मिलकर मूल्य-चेतना की शक्ल धारण कर लेते हैं। उनकी इसी मौलिक विशेषता को ध्यान में रखकर मैनेजर पाण्डेय ने उन्हें ''नयी चेतना को लोक गीत के साँचे में ढालकर मानवीय करुणा, शोषित-पीड़ित जनता की एकता और सहानुभूति तथा यातना और पीड़ा के गीत'' लिखनेवाली कवयित्री माना है। इसलिए शांति सुमन के गीतों में मैथिली संस्कृति और लोकभाषा की मिठास और माधुरी है तो कमला, बागमती और कोसी की वेगवती धारा और उत्ताल तरंगों की क्षिप्रता और आवेग भी है, तालमखाने का झीना उजास है तो हिलिस मछली का लोहरैंधापन भी है जिससे उनके गीतों की प्रभावान्विति अत्यधिक धारदार और मारक हो जाती है – ''थमो सुरूज महाराज/नयन काजर भर लें/बोयें पिया पसीना/फसल सगुन कर लें'' या ''धीरे-धीरे बहे पसीना/धीरे नदी बह रे/ललना रे, आधी रात गए/रनियाँ का मन कँहरे/इधर गजर का बोल/उधर मुनिया जनमे/ललना रे, आँखों रचे सरूप/कि हंसिया हाथ थमे/अगुआरे फूले गेंदा फूल/बीच-बीच अड़हुल रे/ललना रे, बेटी का भाग अमोल/बढ़े दो-दो कुल रे।''

कमला प्रसाद के ख्याल में इधर की कविता में लोक के शब्द उसी तरह आ रहे हैं, जिस तरह लोक जीवन और लोक आ रहा है। क्योंकि सच्चा साहित्य अपनी प्रकृति में लोकधर्मी होता हे। वह न तो लोक जीवन की अवहेलना कर सकता है और न लोक-भाषा की अजस्त्र शक्ति को नजरअंदाज कर सकता है। शांति सुमन ने अपने गीतों में मैथिली लोकभाषा के शब्दों, लोकोक्तियों, छन्दों और धुनों को अंतर्दृष्टि के साथ कलात्मक ढंग से पिरोया है जिससे उनके गीतों की मौलिकता क्षतिग्रस्त और लहूलुहान होने की बजाय निखर गई है। उन्हें ज्ञात है कि लोक शब्दों का आशय केवल लोकभाषा और बोली के शब्दों से नहीं है, उन शब्दों से भी है, जो दैनन्दिन जीवन की आम बोलचाल में व्यवहृत होते हैं। शब्द-प्रयोग में वह इतनी सावधान दृष्टिगोचर होती हैं कि लोक-शब्द और मुहावरे उनके गीतों के अर्थानुषंग और अर्थ-सौन्दर्य को बढ़ाते हैं, उन्हें अमूर्त होने से बचाते हैं। उन्हें पता है कि कहीं ऐसा न हो कि लोक शब्दों की मधुरता में ऐसे और इतने अधिक शब्द एक साथ गीत में न आ जायें, जो अंचल के बाहर के पाठकों के सम्मुख सम्प्रेषण का संकट पैदा कर दें। वह गीत की मूल संवेदना और अनुभूति के ताप को महसूस करने से वंचित हो जाय।

कविता का रचना-कर्म गद्य के रचना-कर्म से अलहदा होता है। उनके विचारों, अनुभूतियों, बिम्बों, प्रतीकों और मुहावरे में वैचारिक निबन्ध की तरह

तार्किक अन्विति नहीं होती। होनी भी नहीं चाहिए। शंभु गुप्त की निष्पत्ति है कि ''कवि या कहानीकार को ज्यादा सचेत या चौकस नहीं होना चाहिए। थोड़ी-सी लापरवाही, थोड़ी-सी विस्मृति, थोड़ी-सी अबोधता या एक फिल्म का नाम लेकर कहूँ तो 'थोड़ी-सी बेवफाई' उसमें होनी चाहिए। यह ठीक है। यह हो सकती है, लेकिन इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि उसमें थोड़ी-सी सामाजिकता, थोड़ी-सी प्रतिबद्धता, थोड़ी-सी बेचैनी और थोड़ी-सी ईमानदारी भी हो।'' शांति सुमन में ये सारी विशेषताएँ हैं। **ऐसा लगता है कि शंभु गुप्त ने ये सारी बातें शांति सुमन को लक्ष्य करके कही हैं। अभिप्राय है कि शांति सुमन के गीतों में थोड़ी-सी लापरवाही, थोड़ी-सी विस्मृति, थोड़ी-सी अबोधता और थोड़ी-सी बेवफाई के साथ-साथ समृद्ध सामाजिकता, निर्द्वन्द्व प्रतिबद्धता, भरपूर बेचैनी और व्यवहारकुशल ईमानदारी है। यही कारण है कि लगभग तीस वर्ष पूर्व लिखा गया गीत भी आज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों, असमानताओं, विडम्बनाओं और अंतर्विरोधों का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते नजर आते हैं।** एक निम्न वर्गीय (छोटे या मंझोले) किसान की आशा-आकांक्षा, परिस्थितियों और शोषक-शासक वर्ग की लूट-खसोट की भेंट चढ़ जाती है, इसका काव्यात्मक चित्रण यहाँ देखा जा सकता है – ''काटेंगे खेत गई फरवरी/बीतेगी कैसे अब यह घड़ी/चलो, कहीं जा कीमत बूझें/हँसी और नींद हम खरीदें/चीजों के दाम जंगली/नदियों के शोर हो गए/रोशनियाँ बर्फ हो गईं/बादल कागज के कोर हो गए/सूखे और बाढ़ में गई/नदियों की मछलियाँ खोजें/हँसी और नींद हम खरीदें।'' इन पंक्तियों में अंतर्निहित अर्थ तक पहुंचने में कोई कष्ट नहीं होता। यथार्थ रागात्मक चेतना के साथ घुल-मिलकर व्यक्त हुआ है, जिसके अनुगूंजात्मक प्रभाव से इस गीत की लय-संचरना का बिखराव, छंद-विन्यास की असावधानी, संगीत-प्रवाह की रुकावट तथा तुक-संयोजन और अन्त्यानुप्रास की शिथिलता जैसी स्थूल त्रुटियाँ भी छिप-सी जाती हैं। वस्तुओं और मनुष्यों के घात-प्रतिघात से ही शांति सुमन के गीतों का लोक-संसार बना है। वह अपने गीतों की भाषा में स्वयं को इस कदर विलीन कर देती हैं कि उनकी उपस्थिति का आभास तक नहीं होता और भाषा का अपना स्वर, लय और संगीत-गीत की समस्त शिराओं में रक्त की भाँति प्रवाहित होने लगते हैं और उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँजने लगती है। पाब्लो नेरूदा के स्वर में सुर मिलाकर कहें तो यह वह कविता है, ''जिसकी तलाश हम करते हैं। तेजाब की तरह हाथों के भार से घिसी, पसीने और धुएँ से भीगी, वेला और पेशाब की गंध लिए, उन पेशों की विविध रंगों से रंगी, जिनसे हम जीवन-यापन करते हैं, कानून के अंदर या बाहर। ऐसी कविता जो हमारे पहने गए कपड़ों की तरह अशुद्ध हो, दाल के धब्बे लगे, लज्जाजनक आचरण से गंदे

हमारे शरीरों की तरह, हमारी झुर्रियों और रतजगों और सपनों, निरीक्षणों और भविष्यवाणियों, प्यार और नफरत की घोषणाओं, दृश्यावलियों और पशुओं, मुठभेड़ों के धक्कों, राजनीतिक प्रतिबद्धताओं, इन्कारों और संदेहों, समर्थनों और करों की तरह अशुद्ध।''

आकारगत संक्षिप्तता गीत-रचना की अनिवार्य शर्त्त होती है। गीत में रचनाकार के पास स्थितियों के विवरणात्मक अनुशीलन और ब्योरेबार विश्लेषण मे जाने का अवकाश (गुंजाइश) बहुत ही कम होता है। यहाँ वह स्थितियों और घटनाओं का संकेत भर देता है। इन संकेतों की डोर पकड़कर अर्थ और वास्तविकता की तह तक पहुँचना भावक और/या पाठक का काम होता है। जाहिर है कि गीत का अर्थ जितना प्रत्यक्ष होता है, उससे कहीं अधिक प्रच्छन्न या छिपा हुआ होता है, स्थितियों, घटनाओं और यथार्थ की पृष्ठभूमि में अंतर्निहित होता है। शांति सुमन के उपुर्यक्त गीत में खरीफ फसल-धान की मुख्य फसल-की बजाय रबी फसल के तैयार होने की खुशी, उल्लास, आशा-आकांक्षा, सपने और उमंग के भावातिरेक के प्रति, सामान्य अवस्था में, अविश्वास-सा होने लगता है। लेकिन मिथिला जनपद की भौगोलिक स्थिति और जलवायु पर ध्यान दें तो मालूम हो जायेगा कि उक्त जनपद में खरीफ फसलें तो अक्सरहां बाढ़ के खूंखार उदर में समा जाती हैं, अतएव वहाँ के किसानों की जीविका रबी फसल पर ही निर्भर रहती है। भौगोलिक, प्राकृतिक और ऋत्विक परिस्थितियों के खुलासा से इसगीत के भावातिरेक की मार्मिकता अत्यधिक बढ़ जाती है, व्यावहारिक और विश्वसनीय हो जाती है। इसी प्रकार की संवेदना की अनुभूति ''चम्पा का पेड़ नहीं बाबा/महुआ के पेड़ लगाना'' जैसे गीत-रचना की पृष्ठभूमि में सक्रिय है। एक भूमिहीन किसान मजदूर के पास, जिसे अधिकांश समय मिहनत-मजदूरी करने के लिए काम भी मिलना संभव नहीं होता, वहाँ चम्पा के पेड़ के बनिस्पत महुआ के पेड़ की उपयोगिता और जरूरत अधिक होती है। मतलब कि शांति सुमन के गीतों के मर्म तक पहुँचने की खातिर उनके गीतों के सांस्कृतिक परिवेश सामाजिक पृष्ठभूमि और भौगोलिक परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित करना नितांत लाजमी होगा अन्यथा मूलार्थ का मर्म पकड़ में आने से वंचित हो जायेगा।

शांति सुमन के गीतों के अनुभवों का पाट बहुत ही चौड़ा है और जमीन उर्वर। इसके अनेक रंग और खुशबू हैं। इसमें रंग-बिरंगे पेड़-पौधे, लता-वनस्पतियाँ, फल-फूल, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, फसलें, मनुष्यों की जीवन-स्थितियों, जीवन-संघर्ष और मुक्ति-संघर्ष की अत्यंत ही रंगीन दुनिया हैं। सभी अपने रंग में पहचान और खुशबू के साथ विद्यमान हैं। कहने का आशय है कि शांति सुमन के गीतों का अनुभव-संसार अत्यंत ही वस्तुपरक और समृद्ध है जिसका कला

से परहेज नहीं है, कलावाद का निषेध जरूर है।

अन्त में शांति सुमन के गीतों का रचना-कौशल, कला-सौष्ठव, बनावट और बुनावट, प्रभावी और वैचारिक अंतर्वस्तु की द्वन्द्वात्मकता और तनाव की अनौपचारिक जाँच-पड़ताल के लिए उसके साथ एक संक्षिप्त अंतर्क्रिया की जा सकती है। उनका बहुत ही लोकप्रिय और कलात्मक गीत है, जिसकी रचना आज से लगभग बीस साल पहले संपन्न हुई थी – ''थाली उतनी की उतनी ही/छोटी हो गयी रोटी/कहती बूढ़ी दादी मेरे गाँव की/सबसे बूढ़ी दादी मेरे गाँव की।'' यह कलात्मक अभिव्यक्ति इस गीत का मुखड़ा यानी टेक की आरंभिक पंक्तियाँ हैं। इस गीत में कुल तीन बन्द हैं। हर बंद की अन्तरा में समान तुकांत या अन्त्यानुप्रासवाली दो पंक्तियों के बाद टेक की तीन पंक्तियाँ आती हैं। अंतरा की दो पंक्तियों में एक ही अनुभूति और विचार की सघनता को बढ़ाने की खातिर जीवन-स्थितियों, जीवन-संघर्षों और मुक्ति संघर्षों के सांकेतिक ब्योरे आते हैं जो गीत के अर्थ और भाव-संहिति को क्रमानुसार विस्तार देते हैं। हर टेक की प्रथम पंक्तियों के जरिये ही पूरे गीत के संगीत-प्रवाह को नियंत्रित, लय-संगठन को अनुकूलित और अंत्यानुप्रास को अनुशासित किया जाता है। इसे टेक की 'उड़ान' भी कह सकते हैं। शेष दो पंक्तियाँ पुनरावृत्तियाँ हैं (गजल की भाषा में कहें तो रदीफ हैं), जो गीत के लयात्मक प्रवाह को गतिशील, प्रभविष्णु और आघातपूर्ण बनाती हैं। इस गीत के टेक में लोकगीत की कहन शैली और भंगिमा का कलात्मक इस्तेमाल किया गया है। इन पंक्तियों के संबोधनों और विशेषणों में मामूली परिवर्तन करके पूरे गीत की प्रभावान्विति और अर्थ-विस्तार को एक नयी अर्थच्छटा प्रदान की गई है, नई जीवनी और गति दी गई है। इस पद्धति की बदौलत ही शांति सुमन अपनी नयी और क्रांतिकारी सामाजिक चेतना को लोकगीत के संवेदनशील साँचे में ढालकर अभिव्यक्त करने में सफल हो जाती हैं।

इस गीत में, यहाँ अनायास ही, कुछ ऐसे तत्त्व समाहित हो जाते हैं, जिनके सकारात्मक योग से इस गीत का रचना-विन्यास पूरा हो जाता है। वैचारिक अंतर्वस्तु के अंतर्गत भूख, गरीबी और उसके विरूद्ध संघर्ष है तथा आंतरिक संघटन और विकास की सहज परिणति इज्जत-आबरू, हक, हैसियत और आजादी की दीर्घकालीन लड़ाई में शामिल दादी, काकी, भौजी और बहना अर्थात् समाज का एक पूरा वर्ग है, जो अतीत से भविष्य तक की एक लम्बी यात्रा पूरी करता है। साथ ही अंतिम जीत के संकल्प और विश्वास को ऊर्जस्वित करती है। अंतरा में आई 'भूख हुई अजगर-सी', 'अपना तो घर गिरा, दरोगा के घर नये उठे', 'पेट और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे', 'सिर से पाँवों तक की दिन-प्रतिदिन छोटी होती दूरी', 'लापरवाह व्यवस्था के खूँटे में बँधकर

रहने की बेबसी', 'फेन-फूल-से उठे सपनों का राखों के ढेर में तब्दील होना', अंततः 'कर्ज उगाही, सूद और लहना' की अमानवीयता के खिलाफ दादी, काकी, भौजी और बहना का लामबन्द होकर 'मुठभेड़' में तब्दील हो जाना, वे स्थिति-चित्र हैं, जिनसे गीत के केन्द्रीय भावों को आवश्यक विस्तार और पुष्टि मिलती है तथा जीवन-संघर्ष को मुक्ति-संघर्ष में रूपान्तरण की वैज्ञानिक (कार्य-कारण-निदान की) सम्बन्धों की संपुष्टि हो जाती है। इससे गीत के अर्थ–विस्तार का फलक लगातार विस्तृत होता जाता है और विश्वसनीय भी। 'थाली उतनी की उतनी ही/छोटी हो गयी रोटी' तथा 'सिर से पांवों की दूरी अब/दिन-दिन होती छोटी' जैसे बिम्ब जो अपनी मौलिकता और अर्थपूर्ण सांकेतिकता के जरिये गीत के तात्कालिक प्रभाव में रूपांतरित कर देते हैं। इस दरम्यान उनके गीतों के लय-संयोजन, छंद-विन्यास, संगीत-प्रवाह और तुक (अन्त्यानुप्रास) संघटन में गतिरोध और शिथिलता भी आती है जिसे दादी-सबसे बूढ़ी दादी, काकी-सबसे सुन्नर काकी, नवकी भौजी – सबसे गोरी भौजी तथा रानी बहना – सबसे प्यारी बहना जैसे सम्बोधन और सम्बोधनों के दुहराव से उत्पन्न संवेदनशील आत्मीयता और गहरे रागात्मक बोध का जो वातावरण बनता है, वह गीत में आये गतिरोध और फाँक को ढँक देता हैं। **इन्हीं खूबियों के मद्देनजर कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह का मानना है कि "उनके (शांति सुमन के) गीतों की कला में शोर नहीं है, न ही केवल उबाल और उद्‌गार है, वह बल्कि उन्हें एक विशिष्ट अर्थ और पहचान देकर मनुष्यों को हमबद्ध सारगर्भिता की ओर अग्रसर करने की सबसे विश्वसनीय प्रक्रिया है।"** कलात्मक उद्देश्यों के इसी प्रभामण्डल की गिरफ्त में आकर उनके गीतों में उत्पन्न त्रुटियों को सामान्य पाठक और श्रोता पहचान-पकड़ की मनोदशा में ही नहीं रह पाता।

इस प्रकार सामाजिक सरोकार से गहरे स्तर पर जुड़ी एक सफल गीत-रचना की-जनवाद की ठोस और खुरदरी धरती पर खड़ी गीत-रचना की-रचना-प्रक्रिया पूरी होती है। यह एक कला है, जिसके पीछे कोई सचेत प्रयास नहीं है। जिसमें अर्थ-संघटन से लेकर रूप-विन्यास तक के सौष्ठव की सार्थक क्रिया बिल्कुल ही सहज और स्वाभाविक ढंग से परवान चढ़ती है। यह रचनाकार के अपने समय और समाज से गहरे सरोकार तथा विधागत दायित्वबोध और संबद्ध प्रतिबद्धता का नतीजा है, सचेत प्रयास का नहीं। शांति सुमन के गीतो की यही शक्ति, सौन्दर्य और अर्थ-संकुल सार्थकता है। फिलहाल इतना ही।

●

नवगीतीय जनवादी स्वर : शान्ति सुमन

❑ डॉ० सुरेश गौतम

नवगीत की परम्परा में जनवादी स्वर की सुगबुगाहट लेकर शान्ति सुमन का सौमनस व्यक्तित्व उभर कर सामने आया है। नवगीत जिस अंगड़ाई की नजाकत लेकर आया था उस समय शान्ति सुमन ने सुमन जैसे सुरभित गीत लिखे। कवयित्री का रचना संसार प्रदर्शनप्रिय ओढ़ी हुई भावुकता के प्रति साग्रह नहीं है। इनकी रचनाशीलता में एक परिमार्जित और सुपठित प्रतिभा के दर्शन होते हैं। जो रचनाकार अध्ययन और साधना में लगा रहता है उसके लेखन में सर्वकालीन चेतना के अंकुर देर-सवेर जरूर जन्मते हैं। अध्ययन और साधना की रचना-पीठिका पर शान्ति सुमन ने अपने व्यक्तित्व को निखारा है। इसमें दूर तक कोई शक नहीं कि शान्ति सुमन एक शिक्षित और सम्भ्रान्त व्यक्तित्व की धनी महिला साहित्यकार हैं। इन्होंने मात्र गीतों की रचना ही नहीं की अपितु समीक्षा-क्षेत्र में भी अपने अध्ययन को चिंतन-मानक पर कसा है। इनके संग्रहों की भूमिकाओं में नवगीत एवं उससे आगे जनवादी गीत के व्यक्तित्व पर इनके वैचारिक बोध ने अनेक सवाल खड़े किए हैं। नवगीत के प्रारंभिक स्वरों में कवयित्री का स्वर अपना एक अलग आभा मंडल तैयार करता रहा है। नवगीत की आत्मा में छायावादी शिल्प की अनुगूंज है। इसका एक विशिष्ट कारण राग रंजित प्रकृति है जिसके गर्भ से नवगीत अंकुराया है। प्रकृति के अनुभव संसार का अभिव्यक्त दर्शन नवगीत में बड़ी सजधज से हुआ – शान्ति सुमन का नवगीत स्वर फूटता है तो सुबह यों शुरू होती है –

"ठंड ने उगाये हैं जंगल कुहरों के
मंदिर के कलशों पर सुबह हुई
देहों पर टूटन बेवजह हुई
देखे हैं सांझ गये हंसे रंग लहरों के...."

(परछाई टूटती : पृ० 23)

इसी के साथ – 'जंगल-दरवाजों में आलस दुपहरों के...।' (पृ० 23), यह प्रकृति की शब्दमय रसात्मक अनुभव-सृष्टि है।

अपने रचनाकर्म की देहरी पर खड़ी रचयित्री शान्ति सुमन उन वीथियों और गलियारों को चिन्तन-झरोखों से देखती हुई कहती हैं कि – "जब नवगीत लिखना शुरू किया था, तब मन में अनेकानेक जिज्ञासाएं थीं। धीरे-धीरे जाना कि वह मन नहीं रहा जिसको धूप से चोट लगती थी। रंग-बिम्ब धीरे-धीरे रंगहीन होते चले गए। इन गीतों में सर्जक मन की समस्त उत्साहजन्य बाध्यताएं

भरी पड़ी हैं। इन गीतों के प्रकाशन में इनसे जुड़े हुए क्षणों के मोह और अपनत्व ही मुखर हैं। दैनदिन जीवन के तनाव, उन तनावों से मिली हुई छटपटाहट, घर-बाहर के संघर्ष और उन संघर्षों के बीच पारिवारिक राग-संदर्भों की हरियाली – इन सबों ने मुझे रचने की प्रेरणा दी है। जिन्होंने मुझे दुखाया है, उन्होंने भी मुझे रचा है। वातावरण की घुटन अलग से एक चुनौती है मेरे लिये। निरन्तर अपने विरूद्ध हवाओं को झेलना, रचनाहीन स्थितियों को जीना मेरे जीवन का एक हिस्सा हो गया है। आजीविका इस हिस्से का मूल बिन्दु है। मुझे हमेशा लगता रहा है कि आर्थिक सुविधा के लिए जीवन का उतना सारा समय मैंने अपने विरूद्ध जिया है।'' (पृ० 3)

चिनगी सुलगाते पछुआ-पुरवा गीत

अपने विरूद्ध जीने का विवशता-बोध और रचनाहीन स्थितियों के टकराव का द्वन्द्वात्मक संघर्ष जनबोध से सीधे जुड़ जाता है, जब घुटनशील चुनौतियां दैनंदिन तनावों को बारूदी शक्ल देने लगती हैं। कवयित्री के रचना मानस में 'टूटती परछाईयां', 'मौसम हुआ कबीर' की भूमि को खेत की तरह जोतती हैं। 'सुलगते पसीने' की गंध 'प्रतीक्षित' बीजों के इन्तजार में विद्रोही मुद्रा अपना लेती है। कवयित्री के तेवर बिल्कुल अलग रूप में सामने आते हैं। भाषा जीवन की तल्खियों और मरोड़ को तरखान का रंदा बना कर घिसने लगती है, कामगार की फौलादी छैनी की भांति काटने लगती है। रचयित्री की चाह श्रम को नमन करती है और सामाजिक वैषम्य के प्रतिकार के लिए कुशल दर्जी की नुकीली सुई नोंक से समाज की बुनावट उधेड़ कर बारीक सिलाई की आड़ में उस सुन्दरता का विरोध करती है जो जीवन को शोषित और असुन्दर बनाने के घिनौने षड्यंत्र हैं। क्षण-क्षण जीते हुए भी मरती अधिकांश मानवता, मध्यवर्गीय दुम हिलाऊ स्थितियां, जीने के लिए बूंद-बूंद आशा-निराशा, तनावग्रस्त मानसिकता के बीच निर्णय लेने की लड़खड़ाती मजबूरियां, पतंग होती बहन-बेटियों की चुनरिया, पसीने चूती गंदमी देहों की अंग-फुटन, शोषण की गिद्ध नजरें, दाम्पत्य संबंधों की जवान मौत, रिश्तों की बेनामी जकड़न, बंधक आत्मा का लिजलिजापन, हल की फाल-नोंक सा धंसता नुकीला दर्द, झूमती फसल-फुनगियों पर सरसराता पसीना, दाने-दाने पर लिखा पीढ़ी-दर पीढ़ी कर्ज, सूखी हड्डियों से निचुड़ा फासफोरस, खपरैल के नीचे कसमसाती कुनमुनी देह, चूल्हे की बुझी आग, पेट की मरोड़दार सुलगन, रोटी का सवाल, अजगरी भूख, सूखी रोटियों से रोज मुठभेड़, फटे अंगोछों में झिरझिराती खिड़कियों से झांकती काली मटीली बोटियां, दुख को आंचर करते अगुआरे-पिछुवारे चिनगी सुलगाते पछुआ-पुरवा गीत, महुओं सी चूती मस्ती, साहूकारों, पुलिस-कचहरी में गरीबी के अपराध में आजीवन कैद काटते दाने, धूप-बरखा से होली खेलते कामगार,

किसान-मजदूर, आहिस्ता-आहिस्ता हलाल कर खून पीती सत्ता-व्यवस्था, आक्रोश-विद्रोह की कुंडली में कसी ज्वालामुखी नजरें, तीर-कमान बाँहें, नंगी देह, इस्पाती तन, फौलादी सपने, आँधी की आशा में फूटता सैलाब, क्रान्ति संवाद, महलों से उतरती रोशनी, कुर्सी के नीचे बिछा बारूद, जंगली राज, आम चुनाव, सदियों के नंगेपन पर बारूदी चीर आदि सुलगती चटकनों को कवयित्री आस्था, विश्वास, श्रम, संघर्ष के खेत में बीजती और फसल सा पकाती हैं। रचयित्री का यही रचनात्मक बोध सिर चढ़ कर बोलता है जब वह शोषण की काली आंधियों के बीच खेत में जलती फसल-सी जिन्दगी को नया रचनाशास्त्र देती हैं –

''नया समाज गढ़ा जायेगा
मिट्टी-श्रम-पानी से
मुक्त करेंगे जन-जन को
सत्ता की मनमानी से
पत्थर की दहलीज नहीं हम; समझ मुनाफाखोर...''

(मौसम हुआ कबीर, पृ० 51)

इसी विश्वास के बल पर वह घोषणा करती हैं –

''रचो समय को माथे पर
अब लाना है बदलाव
पानी पर अब चल न सकेगी
यह कागज की नाव''

(पृ० 53)

कवयित्री के विश्वास का आस्था-फलक धरती-आकाश के फासले को पाट देता है जब रचयित्री शब्दों को गीत-फौलाद की अग्नि में ढाल का इस्पात बना देती हैं –

''आग तपे लोहे फौलाद बनेंगे
जन की मुक्ति के संवाद बनेंगे''

(पृ० 67)

कवयित्री के रूप में शान्ति सुमन की पहचान सन् 60 के बाद बनी हालांकि शैशव से ही कविता के प्रति उनकी अभिरूचि रही। रचयित्री की दृष्टि में किसी भी कला संस्कृति का मूलाधार अर्थव्यवस्था होती है। जाहिर है मूलाधार में परिलक्षित होने वाले परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब कमोबेश कला-संस्कृति में अवश्य होता है। इसलिए इनकी रचनाओं में भी समाज-व्यवस्था में आने वाली तब्दीलियों का कालानुसार प्रक्षेपण होता रहा है। वैचारिक अन्तर्वस्तु में आने

वाले परिवर्तन के समानान्तर ही इनके गीतों में भी बदलाव आये हैं। रूप और वस्तु की द्वन्द्वात्मक एकता में कवयित्री का विश्वास है।

कवयित्री का मिज़ाज मूलतः गीतधर्मी है। वह स्वीकारती है कि गीत मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता और उपयोगिता अक्षुण्ण है। यह श्रम-शक्ति को संघटित और गतिशील करने तथा श्रम शक्ति के ह्रास से उत्पन्न तनाव और थकान को कम करने का सबसे कारगर हथियार है। इस कारगर हथियार का इस्तेमाल कवि की रचनात्मक मजबूरी है। इसलिए अपने विचारों और भावों को गीत के माध्यम से व्यक्त करने में वह सहूलियत महसूस करती हैं। हर रचनाकार अपनी सुविधा और अन्तर्निष्ठा के अनुसार ही अभिव्यक्ति का माध्यम (विधा) चुनता है लेकिन गीत रचना में शब्दों की ध्वनि और ध्वनि के अनुगुंजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व है। कवयित्री की मान्यता है कि हर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। हर समय प्रगतिशील और प्रतिगामी तथा जनवादी और जनविरोधी विचारधाराओं में तीव्र हिंस्र संघर्ष होता है। इसी तीव्र संघर्ष और विचारधारा के द्वन्द्व की फांकों को जोड़ने के लिए कवयित्री गीत माध्यम से सामाजिक चेतना के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करती है। *(प्रेषित परिपत्र के उत्तर में स्फुट टिप्पणियां : दिनांक 2 अगस्त 1986)*

सुलगते पसीने की चुअन

'सुलगते पसीने' की भूमिका में भी कवयित्री के मानसिक संघर्ष को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि इसी रचनाभूमि से ठोस रूप में रचयित्री ने जनवादी सोच को एक अनुष्ठान के रूप में ग्रहण किया। नवगीतकार कहलाने की अपेक्षा कवयित्री अपने को जनवादी गीतकार क्यों कहलवाना पसन्द करती हैं, इसके अपने तर्क हैं। कवयित्री ने महसूस किया कि उसे नवगीत में अक्सर ऐसा अहसास होने लगा था कि उसकी लड़ाई सामंती पूंजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध लड़ी जा कर भी वैयक्तिक है और कई-कई गीत एक साथ मिला कर देखने पर एक ही गीतकार द्वारा रचित लगते थे, पर जनवादी गीत की लड़ाई समूह की लड़ाई है, उसकी चीख जनसाधारण की चीख है, उसका क्रोध जनता का क्रोध है। ऐसी स्थिति में उसकी चुनौतियां भी जनता की चुनौतियों के समानान्तर ही हैं। जन संघर्ष के लिए नवगीत और उसकी प्रकृति कवयित्री को नाकाफी लगी। सामाजिक रचनात्मकता से नवगीत हालांकि पूरी तरह जुड़ा रहा फिर भी उसकी शक्ति छीज गई ऐसा रचयित्री का विचार है। नवगीत के विषय में कवयित्री ने 'परछाई टूटती' की भूमिका में

अलग वकालत की है। नयी कविता व्यक्तिगत अनुभव की आंतरिक सामाजिकता का दावा करती थी। नवगीत ने माना कि आंतरिक सामाजिकता नाम की चीज नहीं होती है। हमारे अनुभव के पीछे सामाजिकता मूलभूत है। नवगीत ने पहली बार अनुभव को यथारूप व्यक्त किया। अपना लक्षण खुद जाहिर करने दिया। सामाजिकता का प्रमाण देने के लिए रचनाकारों ने खुलकर लोकसंस्कृति, ग्रामीण परिवेश के अनुभव, शैली तत्त्व आदि ग्रहण किए। सामाजिकता का लिबास उतार कर नवगीत कभी नंगा नहीं हुआ, नयी कविता हो भी गई। *(द्रष्टव्य : परछाई टूटती : प्रसंगवश : पृ० 4)* नवगीत ने सब कुछ किया पर जनवादी गीतों की तरह उसमें शोषण के खिलाफ सक्रियता के लक्षण नहीं थे। संघर्ष के लिए कटिबद्ध जनता का पूरा मनोवेग वहां नहीं था। जनवादी गीतकार आत्मकेन्द्रण से मुक्त हैं, इसीलिये शोषण-उत्पीड़न को नियति मान कर जीने के वे खिलाफ हैं। जनवादी गीतकार का तनाव यह है कि आज वह जिस मोड़ पर खड़ा है, वहां संघर्ष ही संघर्ष है। सम्बन्धहीनता को जीना हमारी नियति है। दोबारा-तिबारा मोह भंग की स्थिति को जीते हुए जनमानस ऊब रहा है। फर्क यह है कि इस ऊब से जनवादी गीतकार के मन में आत्मनिर्वासन या आत्महन्ता आस्थाएं नहीं आतीं। वे अपने को इन प्रतिकूल परिस्थितियों के विरूद्ध युद्ध के लिए तैयार करते हैं और तब तक युद्ध करने को कृत-संकल्प हैं, जब तक सर्वहारा क्रान्ति सफल नहीं हो जाय। आदमखोर इरादों के प्रति वे सतर्क हैं और सदियों से छीन लिए गए अपने हिस्सों एवं अधिकारों को वापस लेने के लिए कृतसंकल्प भी। इस मनोबल के आगे सफेदपोश काली व्यवस्था को झुकना ही है। *(द्रष्टव्य : सुलगते पसीने : पृ० 42–43)* सर्वहारा क्रान्ति और सत्ता-व्यवस्था के उन्मूलन का मकसद वैषम्य और शोषण को जड़ से समाप्त करना है। कवयित्री का स्वर बुलन्द आवाज में विश्वास गाता और बोता है –

"सूर्य मुख जब शाम होती है
कट गये लम्बे दमन के हाथ होते हैं" (पृ० 47)

हरिजन जैसे दिनों को याद करते हुए कवयित्री कहती है –

"यह कपास सी सुबह
रात खादी कुरते-सी
कटी फसल की महक
लगे सब लिखे पते-सी
चांदी सी हंसुली यों तोड़ गये
हरिजन जैसे दिन"

(पृ० 49)

ये हरिजन स्मृतियां कहीं पथभ्रष्ट न कर दें इसलिए कवयित्री कदम-कदम साथ चलने की गुजारिश करती हैं –

"पसीने फूले
अलग थे, अब साथ चल कर
पथ चुनें पहले"

(पृ० 50)

'वक्त का पैगाम' (पृ० 50), थमाते हुए कवयित्री कहीं, 'चुप्पी का गीत' (पृ० 51) गाती है तो कहीं 'हमसफल हथेलियों' (पृ० 54) को 'गर्म हवाओं' (पृ० 52) से बचाने के लिए 'तनी हुई आंखें' (पृ० 59) तरेरती हैं। 'बीज आग का बोती' (पृ० 66) हैं, 'गीत आस्था का' गाती हैं –

"नहीं चाहिए आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नई बटोर क्रांति के बीच उगायेंगे"

(पृ० 67)

'सुलगते पसीने' (पृ० 71) को चंदन बनाने की ख्वाहिश निराधार नहीं है। कवयित्री के लिये ये गीत मुक्ति के श्रम-मंत्र हैं जो शोषण के सघन तम की छाती पर भैरव नृत्य करने को उत्सुक हैं। कवयित्री सुगलते पसीने की चुअन को 'हंसिये की चमकीली धार' (पृ० 68) बना कर 'निर्णय गीत' (पृ० 69) सुनाती है –

"अधभूखे पेटों में जब तक सुलगेगी चिनगारी
आदमखोरों की गफलत में भटकेगी बेकारी
साथी तब तक निश्चय ही – संघर्ष रहेगा जारी"

(सुलगते पसीने : पृ०)

मुट्ठियों में बंद नागकेसर कस्तूरी

इस जनवादी संघर्ष को जारी रखने और ताकत देने के लिए नवगीत के पल बहुत महत्वपूर्ण हैं। हर समय संघर्ष के लिए प्रतिबद्धता अलग चीज है, भुजाओं और विचारों में बजते नुपुरों की खनक बिल्कुल अलग। भुजाओं का नूपुर-खनक से मेल ही वस्तुतः वे आत्मचेता स्थितियां हैं जो आदमखोर हवाओं को भी बांध लेती हैं। अतः भुजबन्द में लिपटे नूपुर शोषण के ताप को कम करते हैं और शक्ति और प्रतिरोध क्षमता को दुगुना, तिगना, चौगुना मेरू-संकल्प देते हैं। मुट्ठियों में बंद नागकेसर हवाएं

ऐसे में सभी शिकवे दूर कर देती हैं और जीवन खनखनाने लगता है –

"एक चिड़िया चोंच भर/लेकर उड़ी अनबन
भाभियों के खनकते/हाथों हिले कंगन
स्वागतम् गूंथी हथेली/धो गयी शिकवा"

(परछाई टूटती : पृ० 9)

शोषण के जंगल में कैद एक कतरा सुख पावस की पहली फुहार सा रोमांच पैदा कर देता है। आंधियों में कैद जिन्दगी जीने का भी एक अलग मजा है –

"पन्नियों-सा उड़ गया दिन/राख सा मौसम
और अपनी आंधियों में कैद हैं हम-तुम"

(पृ० 11)

सांपों भरे जंगल में चीखों के पहरे देता लूला समाजवाद गूंगे चौराहों पर ठहर ठिठक कर गांठ बंधी हल्दी का रंग भी सोख लेता है। टूटती परछाईयां हल्दी के अंगों से उबटन-सी छूट जाती हैं, लेकिन ऐसे में भी दूर अंधेरे में गीत की टेक कोंपल की तरह फूट पड़ती है –

"परछाई टूटती/हल्दी के अंगों से उबटन-सी छूटती
हवा-हवा एक हुई/गीतों की टेक हुई...
दूर अंधेरे में कोई कोंपल फूटती..."

(पृ० 19)

खुद को टेरते हुए दिन रेंगने लगते हैं, शामें फड़फड़ाने लगती हैं, नाव सी इच्छाएं नदी का साथ पाने को मचलने लगती हैं, किरण-डार से टूट कर धूप-हंसी के सूत्र बिखरने लगते हैं और तुलसी चौरे पर उमंगों के फूल झर जाते हैं। दिन के मुख पर चुम्बन छुअन दाग बन जाते हैं, नदी में बहता जल थम जाता है और फूलों के मौसम में 'करोटन' सूख जाता है। लेकिन दूरी ओर बेगमबेलिया फूलने लगती है, आंखों में स्मिति का आकाश तन जाता है, छोटी-छोटी डारियां चिड़ियाओं को लेकर झूलने लगती हैं। पुरवा बजने लगती है –

"बाजूबंद खुले बूंदों के/शहर तुम्हारा गीत हो गया
परछाईं में यादें गमकीं/कस्तूरी मनमीत हो गया"

(पृ० 32)

पाखी दिन, गजरीली बाहें, अंकुर फूटती देही, हिम शीत के साथ होठों-सी जुड़ी महीन पत्तियां, हल्दी-देह की चुभन-खुशबू में सन गई और हरे-पीले पातों ने सुख-दुख की रचाव मुद्राएं अपना लीं। गुनगुनी आहटों ने दोपहरियों को भी सनसनीखेज बना दिया, परदों से ढँकी खिड़कियां हथेली हो गईं, थरथराती

उंगलियों ने अलग-अलग क्षणों में न जाने कितने किस्से रच दिए, नींद बैरिन हो गई, चट्टान टूटी, शहद-छत्ते औंधे हुए ही पंखरी-पंखरी इतिहास लिखने लगे। ऐसे में दुखती देह बादल की आहट पाने को बेसब्र हो जाती है –

"बह चली है बैजनी नदियां/खोल कर कत्थई हवा के पाल
लिखे गेरू से नयन के गीत/छपे कोंपल पर सुरभि के हाल
खेत के पतले हुए हैं रेह/बादल लौट आ..."

(पृ० 52)

कसी हुई पसीजती हथेलियां, उमड़-घुमड़ गुजरी बरसातें, थोड़ी सी अनबन, आंगन भर कचनार, टहनियों-पातों पर अंकित चुम्बन, सांसों में विद्युतगंधी ज्वार, होठों के दस्तखत, सुविधा के नाम पर चांदनी का जहर बन गया। पथरीली तपती तारकोल पर चलते खेत की मेड़ रो पड़ी –

"सुविधा के नाम पर जहर चांदनी का
पीते हैं लोग इस पराये शहर में
खंड-खंड स्वप्नों की त्रासदी समेट कर
जलती विश्वासों की दुहरी शहतीरें
विवशता में बार-बार क्षरित हुए क्षण का
हिलता है मुखौटा मनुहारे शहर में"

(पृ० 56)

अपने आप से बात करते हुए मन चाहता है गांव को फिर जीने लगें। बतियाती सुबह-सांझ, बोलती चौपालें, हुक्कों की गुड़गुड़ाहट, मोरों के नृत्य, कच्चे कोयले का छौंक लगा मट्ठा, मक्की-बाजरे की रोटी, भुने सत्तू, खनखनाती बैलों की घण्टियां, झूम झूम रगड़ाती फुनगियां, शहद से भर गए छत्ते, समूची झंकारती देही, भौजी का परिहास, उसकी कनखियां, घूंघट से झांकता सम्मोहन, कजरारी पलकों पर झुकी हया, बीच में मर्यादाओं की दहलीज, सूर्य-गति का थिर जानाआदि सब कुछ टूट-टूट कर अंग-अंग को चिकनी मिट्टी का खेत बना गया। अन्दर की दरकनें चटक गयीं, इसका एक ही इलाज है –

"कुछ न सुनें, कुछ न कहें
आओ ! कुछ देर यूं ही घास पर बैठे रहें"

(पृ० 63)

रिश्तों की बारूदी हवा में सुबह-शाम जलने-सुलगने लगी। तिरते सपने खंड-खंड बिखर गए। गंध लिखी देहरी हंसी-हंसी में होठ-आखरों की मूकवाणी बोलने लगी। पूर्ण विराम लगे होंठ थर-थर सौ-सौ आमंत्रण देने लगे –

"केसर रंग-रंगा मन मेरा/सुआ पंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में/लिखा तुम्हारा नाम है"

(पृ० 69)

नवीय रचना शास्त्र

गीत-रचना के अपने नियम होते हैं, अपना अनुशासन होता है। गीत रचना में रूप और वस्तु की द्वन्द्वात्मक एकता अगर नहीं है तो वह कम से कम गीत नहीं है, कोई और चीज है। गीत रचना को लोकप्रिय और संवेदनात्मक बनाने के वास्ते संगीत, लोकधुनों, लोक मुहावरों और लोक शब्दावलियों का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। लेकिन इन सामग्रियों का व्यवहार सावधानीपूर्वक आन्तरिक जरूरत के तहत होना चाहिए अन्यथा गीत का रूपवाद और सरलीकरण की गिरफ्त में आ जाने का खतरा हमेशा मौजूद रहता है। रचनाकार की जनजीवन में पैठ जितनी गहरी होगी, रचना उतनी ही दुहरी और भाव-प्रवण होगी तथा रचना के लिए कच्चे माल का भी प्राचुर्य होगा। जन-जीवन से रचनाकार की दूरी वैचारिक रिक्तता का कारण होती है। ऐसी स्थिति में रचनाकार अपनी रिक्तता को ढ़ँकने के लिए कला का अतिरिक्त सहारा लेता है। नतीजतन रचना रूपवाद के शिकंजे में फंस कर अमूर्तन का शिकार हो जाती है। *(परिपत्र के उत्तर में कवयित्री का उत्तर : दिनांक 2 अगस्त 1986)* कवयित्री के अधिकांश नवगीत रूपवाद के इस शिकंजे से मुक्त है लेकिन जनवादी गीतों के विषय में यह दावा अनुचित है।

इसका संकेत पहले भी दिया जा चुका है कि गीत मनःस्थितियों का काव्य है और कविता परिस्थितियों का तथा गीत में शब्दों के ध्वन्यात्मक सौन्दर्य और अनुगुंजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व होता है, जबकि कविता में शब्दों के अर्थानुभवों, अर्थों की लय और अर्थ विश्लेषण की अपूर्व शक्ति अन्तर्निहित होती है। तात्पर्य यह है कि गीत और कविता परस्पर विरोधी नहीं प्रत्युत एक-दूसरे की पूरक विधाएं हैं। जिस तरह अच्छी कविता के लिए गहरी भाव-प्रवणता, सघन अनुभूति, सहज काव्य-भाषा और सम्प्रेषण में सहायक बिम्ब-प्रतीकों की मौजूदगी अनिवार्य है उसी तरह अच्छे और कालजयी गीतों के लिए विचारधारात्मक, सौन्दर्यात्मक और संधानात्मक होना निहायत जरूरी है। कवयित्री गीतों के मौजूदा दौर का वैचारिक आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और जनवादी विचारधारा को मानती है। कवयित्री का यह दावा पूर्णतः सत्य नहीं है, किसी अंचल विशेष में इस प्रकार की वैचारिक धारा केन्द्र में हो तो वह संपूर्ण साहित्य पर नहीं लागू होती लेकिन जनवादिता नवगीत की एक प्रवृत्ति विशेष जरूर है। जहां तक रचयित्री के बिम्ब प्रतीकों का सवाल है उसका दावा बिल्कुल सही है कि उसके प्रतीक-बिम्ब विचारधारा की मांग यानी जरूरत के

मुताबिक व्यवहृत होते हैं। जैसी वस्तु वैसा रूप। व्यापक जनसमुदाय तक अपनी रचनाओं को पहुंचाने के वास्ते कवयित्री हर किस्म के प्रचार माध्यमों के इस्तेमाल पर विश्वास करती हैं। उनका उद्देश्य रचना को जनसामान्य तक कारगर तरीके से पहुंचाना है, माध्यम चाहे जो हो।

कवयित्री का एक दावा और है कि वह नवगीत से जनवादी गीत की ओर प्रस्थान कर चुकी हैं, जबकि कवयित्री की असली पहचान नवगीत है जनवादी गीत नहीं। रचयित्री नवगीत और जनवादी गीत में अंतर स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि – नवगीत रचना का मुख्य वैचारिक आधार आधुनिकतावाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद है, जब्रकि समकालीन जनवादी गीत-रचना का वैचारिक आधार वैज्ञानिक समाज शास्त्रीय जीवन-दृष्टि और सर्वहारा विश्व-दृष्टिकोण से लैस समाजवादी यथार्थवाद है। नवगीत मूलतः मध्यवर्गीय जनजीवन की निराशा और ढुलमुलपन का दस्तावेज है और जनवादी गीत संघर्षशील मेहनतकश अवाम की मुक्ति-कामना का शंखनाद। नवगीत को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों और विघटन का अहसास भर है, मगर जनवादी गीत इनकी उत्पत्ति के कारणों की सुनिश्चित तलाश करता है और इनसे मुक्ति के मुक्कमल उपाय ढूंढता है। वैचारिक अन्तर्वस्तु की इस भिन्नता के अनुरूप जनवादी गीतों के शिल्प, रूप, तेवर और भंगिमा में भी परम्परित गीतों से गुणात्मकअंतर है। नवगीत के अधिकांश क्रियापद नकारात्मक और विशेषण निषेधात्मक हैं जबकि जनवादी गीत के क्रियापद सकारात्मक और विशेषण ओजगुण को उद्भासित करने वाले होते हैं। नवगीत के बिम्ब-प्रतीक एक सीमा तक अमूर्त्तन के शिकार हैं और जनवादी गीत के बिम्ब-प्रतीक जाने-पहचाने और जनसंघर्ष के बीच होते हैं। *(प्रेषित परिपत्र के उत्तर में : दिनांक 2 अगस्त 1986)*

जनवादी गीत का नेतृत्व हथियाने की साहित्यिक उठा-पटक में कवयित्री स्वयं ही अपने नवगीतों को जनवादी गीतों के समक्ष बौना बना देती हैं जबकि इनके नवगीत व्यक्ति और समाज के जीवन्त बिम्ब बन कर उभरे हैं। नवगीत की मानक कसौटी पर इनके अधिकांश गीत खरे हैं। जिस संघर्ष और सर्वहारा क्रांति की बात कवयित्री जनवाद का नारा देकर करती है वह नवगीत की भी रचनात्मक शक्ति है और कवयित्री ने इस शक्ति का सफलता से बखूबी प्रयोग किया है। इसलिए मार्क्सीय सिद्धांतों को दिमाग में रखकर पोटली को कुछ खास शब्दों के माध्यम से इधर-उधर करते रहने से गीत प्रभावशली नहीं हो जाते। उसे जनवादी गीत कहने का संतोष यदि कवयित्री को सुकून देता है तो और बात है। सैद्धान्तिक दुराग्रह की चौखटों में कैद इस प्रकार की दृष्टि ने कवयित्री की रचनात्मकता

को बाधित किया है। कवयित्री जो कार्य जनवाद का खोखला-थोथा नारा देकर करना चाहती हैं वह खुला आकाश रचयित्री अपने नवगीतों के जरिये भी समाज को दे सकती हैं। इसलिए जनवादी गीत संज्ञा देकर नवगीत का नकार कवयित्री का रचनात्मक बोध नहीं अपितु दुराग्रह की अतिवादिता है। कवयित्री की मूल चेतना नवगीत ही है और इसी भूमि पर उनका गीत-व्यक्तित्व विकसा है। जनवादिता का बनावटी खोल कवयित्री की रचनात्मक भाव प्रवणता को गहरी घटाओं की ओट में घेरे हुए है। कवयित्री का यह असली रूप है भी नहीं। तमाम असहजता और यथार्थ के बावजूद जहां कहीं वह अपना जनवादी तेवर दिखाती हैं वहां वह नारे उगलती भीड़ का हिस्सा भर बन जाती हैं। अतिरिक्त इसके जनवादिता के प्रति बेमन समर्पण उसके साहित्यिक ग्राफ को उंचा नहीं उठने देता। शब्दों की कटान निश्चित रूप से भारी एवं हंसिये-हथौड़े की शक्ल अख्तियार करती है, मुट्ठियों में बंद आक्रोश विद्रोह की धधकन में तब्दील होने को कसमसाता है लेकिन परिस्थितियों का सच उसे नंगा कर उथला कर देता है। गीत रूप मे शाब्दिक सहानुभूति जनवाद का नारा रह जाती है, उससे आगे नहीं बढ़ती है। उसका असर एक खास तबके और खास समय का मोहताज बनकर रह जाता है, उत्सव के समाप्त होने के बाद के माहौल जैसा। भीड़ गुजर जाने पर जनवादी गीत नारा भी नहीं रहता एक फुसफुसे पटाके की तरह फूट जाता है, मानस का हिस्सा नहीं बनता। आक्रोशी मुद्राओं में अंगार उगलने का भ्रम पैदा करना ही जनवादी गीतों की रचना-मानसिकता है। इन गीतों से सृजन दृष्टि की उम्मीद करना अपने आप से छल करने के सिवा कुछ नहीं है। कवयित्री का अतिरिक्त विश्वास, आस्था और समाज को बदल डालने के जितने भी मेरु संकल्प हैं, वे इन तथाकथित जनवादी गीतों से साकार होने वाले नहीं हैं, जो विध्वंस में अधिक विश्वास करते हैं रचनात्मक आस्था में कम। जहाँ कहीं रचयित्री इन जनवादी गीतों के माध्यम से सृजन और रचनात्मकता की बात करती हैं वहाँ वह साहित्यिक छद्म की ढाल लेकर किसान, मजदूर, कामगारों में जनप्रिय होने का ढोंग रचती हैं। आज का कामगार, किसान, मजदूर इतना बेवकूफ नहीं है कि उसे इन तथाकथित गीत-नारों से बहकाया जा सके, वह अब नारों और शोषण-गीतों के फर्क को जानता भी है, महसूस भी करता है। इसलिए जनवादिता के नाम पर गीत का दोहन कवयित्री की मानसिक व्यथा का रागनहीं प्रत्युत साहित्यिक जगत में अपने आप को आसानी से प्रतिष्ठित करने की सोची-समझी चिन्तन मुद्राएं हैं। इन बहकी, सतही और साजिशी चालों से शंभूनाथ सिंह जैसे गीत-व्यक्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह है फिर शान्ति सुमन तो उनके सामने कहीं भी नहीं ठहरतीं। शंभूनाथ ने नवगीत का नारा दिया और शान्ति सुमन ने जनवादी गीत का। गुटपरस्ती, शिविर मोह दोनों जगह है। एक

ही कथ्य, एक ही विषय, एक ही वृत्त, एक ही वस्तु और बार-बार उसी की गाहे-बगाहे दोहराहट ने कवयित्री के तथाकथित जनवादी गीतों को एकरस, थिर एवं ऊबीला बना दिया है। गतिहीनता तो अपने आप में मृत्यु है। यही गतिहीनता और थिरता की कोल्हू मानसिकता कवयित्री के जनवादी गीतों की खासियत है। रचयित्री के नवगीत जनवादी गीतों की तुलना में बिल्कुल उलट है। नवगीतों में जीवन की आंच भी है, गतिशीलता भी। व्यक्ति और समाज की अन्तर्लय पर थिरकते ये नवगीत कवयित्री की मूलभूमि हैं, रचयित्री इससे हट कर जनवादी पीठिका पर अधिष्ठित होने का कितना ही दावा करें देर-सवेर उसकी कलई पीतल हो जाती है। लेखक के विचार में उसे अपनी मूलभूमि पर लौट आना चाहिए। अपनी भूमि से जुड़कर ही बीज वट-बरगद बनता है। शंभूनाथ सिंह ने नवगीत दशकों में इनके प्रदेय को नकार कर इनके साथ बहुत बड़ा साहित्यिक अन्याय किया है और वही अन्याय कवयित्री स्वयं अपने नवगीत रूप को जनवाद से ढँककर कर रही हैं। **नवगीत दशकों में संकलित अनेक नवगीतकार तो कवयित्री का पासंग भी नहीं हैं। नवगीत की विकास चेतना में रचयित्री शान्ति सुमन की गीत-पदचापें अंकित होनी चाहिए। इनका नकार गुटपरस्त साहित्यिक राजनीति का हिस्सा तो हो सकता है, नवगीत के साथ निष्पक्ष व्यवहार-न्याय नहीं। अतः शान्ति सुमन का नाम लिए बिना नवगीत का इतिहास अधूरा एवं अपंग होगा। तमाम वैचारिक मतभेदों एवं प्रस्थान बिन्दुओं के बाद भी आलोचक ऐसा महसूस करता है कि नवगीत की पृष्ठभूमि एवं उसके विकास में शान्ति सुमन का भी महत्वपूर्ण योगदान है जिसे उल्लिखित करना कोई अहसान नहीं आलोचक, शोधार्थी का दायित्व है।**

लोक रंग

इस सुसंस्कृत और सुपठित गीत कवयित्री ने अपने नवगीतों में लोकरंग और लोक गीतात्मक तत्वों को पर्याप्त महत्व दिया है। नवगीतकार प्रायः लोकधुनों से ही अधिक प्रसिद्ध हुए। कमोबेश सभी नवगीतकार लोकधुनों से सम्पृक्त हैं। लोकधुन की मिठास में ऐसा जादू है कि इसके प्रभामंडल में आये बिना गीतकार रह ही नहीं सकता। कवयित्री स्वीकार करती है कि – ''लोक सांस्कृतिक और ग्राम्य जीवन से सम्बद्ध तत्त्व, अनुभव, छन्द-लय और समृद्ध वैचारिकता'' (परछाई टूटती : पृ० 4) नवगीत की साहित्यिक उपलब्धियां हैं।

शान्ति सुमन नवगीत को कस्बों, उपनगरों, नगरों, महानगरों में, खेतिहर, मजदूर और किसान (छोटे) के जीवन और क्रियाशैली में, वेतन भोगी कामगार, मध्यम वर्ग के श्रमजीवी में गुंजित देखना चाहती हैं। 'परछाई टूटती' की कविताएं भी नवगीतगर्भा हैं। प्रकृति के माध्यम से व्यक्त व्यंग्य की मीठी

सुगन्ध ताजगी के साथ हृदय को छूती है। नवगीत मात्र रोमानी स्पर्श नहीं है। कवयित्री प्रारंभ से ही व्यक्ति की अपेक्षा समाज के दुर्बल पक्ष पर प्रहार करती आ रही हैं। नवगीत आज की विसंगितयों को यों व्यक्त करता है –

''चाटते आये ओस जितनी / उतना ही कंठ जला
हर सुविधा नंगी / बेहद सुन्दर शकुन्तला''

(पृ० 36)

हमारे सांस्कृतिक पतन को संकेतित करती ये गीत-पंक्तियां सुमन के गंभीर चिन्तन और एक नवोन्मेष शालिनी प्रकृति का परिचय देती हैं। 'ओ प्रतीक्षित', 'परछाई टूटती' की कविताएं और नवगीत डॉ० सुमन को प्रगतिशीलता की तथाकथित परम्परा तक ले जाते हैं जहाँ नवगीत की सुगन्ध है पर कोई सांस तड़प उठती है।

अन्तर्दृष्टि : मार्क्सीय दृष्टि का उथला आवेश

जनवाद के तथाकथित लीलाधर्मी प्रच्छन्न आवेश ने बहुत से गीतकारों की सहजता और प्रतिभा को नष्ट किया है। कवयित्री की भाव छवियां इन नारों की मोहताज बन गई हैं। वैचारिक चिन्तन के स्तर पर भावनाएं जब अपना प्रसार पाने लगती हैं, पता नहीं कहाँ से कवयित्री का गीत-मानस जनवाद के आकर्षक नारों को उछालने लगता है। कवयित्री के भाव और चिन्तन मिल कर यद्यपि सामाजिक असंगतियों – वैषम्य पर भरपूर चोट करते हैं फिर भी जनवादी स्वर का मोह उनकी संतुलित गीत-शक्ति की लयबद्धता को बिखराव की सीमा तक बाधित कर देता है। वही साहित्यिक कुर्सियां पाने का रोग लग जाता है और रोग लगने की प्रकृति में भी अन्तर आ जाता है। 'सुलगते पसीने' और 'मौसम हुआ कबीर' में कवयित्री वैज्ञानिक जीवन दृष्टि, सचेतन पक्षधरता और प्रगतिशील अन्तर्वस्तु की वजह से नवगीत को जनवादिता से जोड़ देती है। पूंजीवाद की समस्या को प्रमुखता देने वाले प्रगतिशील विचार मार्क्सवाद के साहित्यिक संस्करण हैं। नवगीत के क्षेत्र में भी एक ऐसा नवयुवा सम्प्रदाय था जो अपनी अस्मिता को पंचायत में घोषित कराना चाहता था। इनमें नवयुवक अधिक थे। नवयुवती के नाम पर विश्व विद्यालय की हिन्दी छात्राएं थीं जो नवगीत की अपेक्षा नयी कविता अधिक लिखती थीं। नयी कविता के क्षेत्र में थोड़ी सरलता रहती है क्योंकि उसमें छन्द और मात्रा-गणना का सिर दर्द नहीं होता। उसमें साधनाकी अपेक्षा वर्त्तमानीय चमत्कार होना चाहिए। **शान्ति सुमन की नयी कविताओं में क्रान्ति की ऐसी ही सुलग है और नवगीतों में क्रान्ति के ज्वलित क्षण हैं। इसलिए डॉ० सुमन नवगीत का तरल आंगन छोड़कर जनवादी चेतना की मरूभूमि पर यात्रा कर रही हैं। नवगीत का**

प्रगतिशीलीकरण कर देने से वह जनवादी गीत हो जाता है। इस क्षेत्र में तथाकथित जनवादी गुट ने सुमन के नाम को अत्यधिक उछाला है।

नवगीतीय इन जनवादी गीतों में कवयित्री की भाषा अलाव की तरह जलती है। घूम-फिर कर वही प्रगतिवादी शाब्दिक संरचना रचयित्री की प्रतिभा को सीमित कर देती है। **नवगीतों में कवयित्री अधिक सहज और मुखर है। डॉ० शंभूनाथ सिंह द्वारा नवगीत दशकों में सम्मिलित न किया जाना शिविरबद्धता और गुटपरस्ती की जीती जागती मिसाल है। नवगीत दशकों में शामिल अग्रणी गीतकारों के समकक्ष शान्ति सुमन को आसानी से खड़ा किया जा सकता है। इनके नवगीत नवगीत-विकास की महत्वपूर्ण कड़ियां है।** वैचारिक मतभेद अपनी जगह हैं लेकिन किसी भी सूरत में रचयित्री के प्रदेय को नहीं नकारा जाना चाहिए। हालांकि शंभूनाथ सिंह की नेतृत्व-लिप्सा का असर यहाँ भी दिखाई देता है। वही मसीहाई होड़ जो नवगीत को लेकर राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शंभूनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र आदि में हैं, जनवादी गीत को लेकर शान्ति सुमन में है। अपने-अपने गुटों के गीतकार संरक्षकों को स्थापित करने की सुनियोजित साहित्यिक खेमेबाजी की ये अगड़ी-पिछड़ी जातियां हैं। चौखट का घुन लगा एक हिस्सा यदि राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शंभूनाथ सिंह हैं तो दूसरा शान्ति सुमन – नचिकेता हैं। इनको सावन के सूरदास की तरह सभी तरफ जनवादिता की हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। सप्रयास शब्दों की गढ़न, घूम-फिर कर वही मार्क्सीय दुराग्रह कवयित्री की गीत-चेतना को एक खास दायरे में ले आता है। इसे मार्क्सीय दृष्टि का उथला आवेश भी कहा जा सकता है। किसान, मजदूर, कामगारों के शोषण का विरोध करने के लिए मार्क्सीय सिद्धांतों का गीत-चोला धारण करना आवश्यक नहीं है। उसका प्रतिरोध-विरोध किसी पार्टी विशेष का राजनीतिक कवच ओढ़ कर करना एक साहित्यकार के लिए अनुचित है। व्यक्ति रूप में व्यक्ति विशेष कुछ भी करने को स्वतंत्र है लेकिन एक साहित्यकार के नाते किन्हीं सिद्धांतों, घोषणा पत्रों का प्रसार न केवल गलत है बल्कि असाहित्यिक भी। साहित्यकार को राजनीतिक दुकानदारी, खेमेबाजी, गुटपरस्ती से अलग रहना चाहिए तभी वह ईमानदारी से अपनी बात जन-जन के पास पहुंचा सकता है। प्रगतिवादी साहित्य की अपनी सीमाएं हैं, उन सीमाओं का स्वीकरण कवयित्री के लिए अभिशाप है क्योंकि रचयित्री की रचनाएं खुली संभावनाओं का आकाश है। यदि वह सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता में बंध कर इसी प्रकार रचनाकर्म करती रहीं तो वह दिन दूर नहीं जब शान्ति सुमन पर लगा मार्क्सीय ठप्पा लाल झण्डों की भीड़ में गुम हो जाएगा और उनके गीत नारे की शक्ल अख्तियार कर लेंगे।

●

शान्ति सुमन की गीतधर्मिता

❑ कुमार रवीन्द्र

'गोबर-माटी सने हाथ में
भाषा जीने की'
यानी
शान्ति सुमन की गीतधर्मिता

नवता और गीतात्मकता की संयुति से जो काव्य-विधा पिछली सदी के मध्याह्न में उपजी, उसका नाम है नवगीत। निराला की 'नवगति, नव लय, तालछंद नव' की परिकल्पना वाला कविता का अधुनातन संज्ञान नवगीत में ही अपनी समूची आकृति पा सका। कविता मनुष्य होने की पहली और आखिरी शर्त है। इससे एकात्म होना पूरे और अंतिम रूप में मनुष्य होना है। नवगीत इसी समूची मानुषिकता का काव्य है। मानुषी अवचेतना में परिव्याप्त रागात्मकता ही नवगीत की मुख्य भावभूमि है। आज का समय प्रखर बौद्धिकता का है। शुष्क बौद्धिकता मनुष्य को पदार्थिक बनाती है, जिससे तमाम अमानुषिक आग्रह उपजते हैं। कविता का प्रयोजन है इस बौद्धिकता का भावात्मक संस्कार कर उसे अमानुषिक होने की नियति से बचाना। अस्तु, नवगीत जो कविता की रागात्मकता को अक्षुण्ण रखने की प्रविधि का आग्रही है, एक ओर तो भावात्मक है और दूसरी ओर सहज बौद्धिक भी। आज के बौद्धिक-भौतिक आग्रह वाले समय में हमारी सांस्कृतिक संचेतना ही हमारी मनुष्यता की एकमात्र पहचान रह गयी है। नवगीत इस सांस्कृतिक संचेतना का भी काव्य है। हमारा जातीय बोध इस सांस्कृतिक चेतना का आधार है। जाति-बोध उपजता है प्रखर जन-बोध से। नवगीत इसीलिए जनबोध से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। नवगीत की आन्तरिक ऊर्जा इसी प्रखर जनबोध से उपजती है। लोक-चेतना की सहज उपलब्धि जितनी शिद्दत से नवगीत में आज हो रही है, उतनी संभवतः तथाकथित 'कविता' में नहीं। इस दृष्टि से नवगीत आज का प्रतिनिधि काव्य-रूप है। और इसके जो प्रमुख हस्ताक्षर हैं, उनमें सुश्री शान्ति सुमन का नाम शामिल करना निहायत जरूरी है।

डॉ० शान्ति सुमन एक ऐसी गीतकवि हैं जिनका अधिकांश सृजन 'जनगीत' और 'जनवादी गीत' संज्ञाओं से परिभाषित किया जाता रहा है। उनकी गीत-क्षमताओं का विस्तार उससे कहीं अधिक है। निश्चित ही जनबोध उनकी रचनाओं का मूलभाव है। किंतु 'जनगीत' और 'जनवादी गीत' की परिधियों से बाहर भी जनबोध है, जिसे तमाम अन्य काव्य-विधाओं में भी अभिव्यक्ति मिली है। 'जनगीत' एक विशेष कालखंड

के राजनैतिक-आर्थिक दबावों के तहत उपजा एक काव्यांदोलन था, जिसकी अपनी एक काल-सापेक्ष भूमिका रही। साहित्यिक दृष्टि से उसकी शर्त्तें और कसौटियां वही थीं, जो नवगीत की थीं। वस्तुतः वह नवगीत का ही एक जनबोधी प्रारूप था, जिसमें जन-आक्रोश की सारस्वत भंगिमा उपलब्ध हुई थी। शान्ति सुमन जी की गीत-यात्रा का एक समृद्ध कालखंड उसी स्थानिक युगबोध से व्याख्यायित हुआ। सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में उपजे 'जनगीत' की वे एक सशक्त हस्ताक्षर रहीं, किन्तु शीघ्र ही वे उस परिधि से बाहर आ गईं। उनकी रचनाओं का जनाग्रह बना रहा, किन्तु डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह के शब्दों में 'आरम्भिक जनवादी गीतों की नारेबाजी से शीघ्र ही निकल कर 'एक सूर्य रोटी पर' जैसे कालजयी गीत की रचना वे कर जाती हैं।' इसे उन्होंने शान्ति जी की विकसनशील प्रतिभा की पहचान माना है। उस कालजयी गीत की बिंबात्मकता तो जनबोधीय है, किन्तु उसमें आक्रोश का स्थान सहानुभूति और एक सर्वव्यापी करुणा-भाव ने ले लिया है। देखें उस गीत के कुछ अंश –

'यही भी हुआ भला
कथरी ओढ़े तालमखाने/चुनती शकुन्तला
मुड़े हुए नाखून/ईख सी गाँठदार उँगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ/खुरपी-सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने केसर का बाग जला
बीड़ी धुकती ऊँघ रही/पथराई शीशम आँखें
लहठी-सना पसीना/मन में चुभती गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा/चाँद नून-सा गला'

आज के समय में कालिदास की शुकन्तला की यह नियति, सच में, मर्मान्तक है। 'यह भी हुआ भला' से गीत का प्रारम्भ एक मारक व्यंग्य की सृष्टि करता है और पूरे गीत को एक नई व्यंजना–क्षमता प्रदान करता है। लोक-जीवन से सीधे लिये सहज बिंब पूरी कविता को एक परोक्ष मर्मभेदी पीर से आप्लावित कर देते हैं और गीत की पंक्ति 'एक सूर्य रोटी पर औंधा/चाँद नून-सा गला' प्रतीक-कहन से हमारी सामाजिक विसंगति को उजागर कर देती है। मेरी राय में यह गीत नवगीत की जनबोधी भंगिमा का एक सशक्त उदाहरण है।

ईसवी सन् 1970 में 'ओ प्रतीक्षित' का आना नवगीत के एक नये युवा हस्ताक्षर का सर्वश्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शम्भुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, उमाकान्त मालवीय, रमेश रंजक जैसे सशक्त नवगीतकारों की जमात में शामिल होना था। यह एक अनूठी उपलब्धि थी अट्ठाईस वर्षीय शांति सुमन के लिए। 1978 में प्रकाशित हुआ उनका दूसरा नवगीत संग्रह 'परछाईं टूटती'। इन संग्रहों ने नवगीत के क्षेत्र में इस युवा कवयित्री को

एक अलग पहचान दी। इनमें 'घर के परिचय और प्रणाम' है; 'मुट्ठियों में बंद नागकेसर हवा' और 'भाभियों के खनकते हाथों/हिले कंगन/स्वागतम् गूँथी हथेली' है; 'काँपती शिराओं की बैंजनी नदी', 'सुबह के मुँड़ेरे पर पंख खोल गौरैया' की बतियाहट, 'मौसम की देहलगी हल्दी', 'पेड़ की फुनगियों से सूर्य बँधा/रोशनी किनारे की झील', 'नींदों के पाँव लगी मेंहदी/सिहरे दो पल' हैं। 'गुजरती फ्राक पहन ऋतुएँ', 'नावों पर शीशे चमकाती... आँखें', 'सातरंग झरने/वासवी नदियाँ इंगुर की/...शीशमहल-सा कौंधे जलमयंक', 'केसर रंग रंगा मन.../सुआपंखियाँ शाम', 'पंख लगे दर्पण के/चन्दन-वन की छाँहें अलसीं', 'तन्मय चुम्बनसिक्त अधर पर/लिखा तुम्हारा नाम', 'पार्कों में हुई मुलाकातें', 'पल्लू को स्वतः खिसकने दिया/माथ झुका/गंधिल आभार से/कसी हुई पसीजती हथेलियाँ', 'नदी में इत्र का झरना' जैसी मादक एवं सम्मोहक बिंबाकृतियाँ हैं एक ओर, तो दूसरी ओर 'रात एक स्वप्न-कलश/फूट गया', 'टूट गई टिकुली – से मौसम के हाशिए', 'गालों पर/सूख गए आँसू के दाग', 'थके हुए फूलों की खुशबू के गीत', 'अकेला गुलाब का उगना', 'पंख-कटे पक्षी का जीवित अहसास', 'सिसकती हुई आवाजें/पीती प्यालियाँ', 'माँ ने जहाँ पूरे थे चौक/झड़ आए मकड़ी के जाले', 'पानी पर तेल-सा पसरा क्षण' जैसे मारक-दाहक एहसास भी हैं। किंतु ये सभी एक वैयक्तिक-पारिवारिक मन के विविधरंगी प्रक्षेपण हैं। इनमें गृह से और उससे उपजे सुख-दुख के प्रसंग ही आख्यायित हुए हैं। इनमें जो सामाजिकता है, वह मात्र घर से जुड़ी है। किंतु ये गीत अपनी कोमलता, अपनी मृदुलता और सहज-सरल ऋजुता से हमें निश्चय ही लुभाते हैं। कवयित्री शांति सुमन की गीत–यात्रा का यह चित्ताकर्षक पहला पड़ाव हमें उन लोकप्रसंगों से परोक्ष रूप से जोड़ता है, जिनकी परिणति जनवादी गीत सह संकलनों 'सुलगते पसीने' (1979) एवं 'पसीने के रिश्ते' (1980) से होते हुए उनके अपने एकल संग्रह 'मौसम हुआ कबीर' (1985) के प्रखर जनबोधी तेवर में होती है।

शांति सुमन की कवयित्री का यह आतुर जनबोध एक ओर सत्तर के दशक में उपजी राजनैतिक-सामाजिक अनिवार्यताओं से प्रेरित हुआ, तो दूसरी ओर उसके स्वयं के मोहभंग से। सत्तर का दशक वस्तुस्थिति से मोहभंग और उसके प्रतिरोध का कालखंड था। जे० पी० की समग्र क्रांति की गुहार ने समूचे देश के युवा वर्ग को उद्वेलित किया, हालाँकि वह उद्वेलन शीघ्र ही एक राजनैतिक साजिश के तहत हाशिए पर धकेल दिया गया। बिहार तो इस जनान्दोलन का केन्द्रबिन्दु रहा। अस्तु, वहाँ के बुद्धिजीवी, चिंतक, लेखक, कलाकार उस क्रांति से सीधे-सीधे जुड़े और उसके प्रखर प्रवक्ता भी बने। बाद में राजनीतिज्ञों के हाथों इसका क्या हश्र हुआ, इसका इतिहास साक्षी है। मोहभंग के एक कातर

अपाहिज दौर में इसकी परिसमाप्ति हुई। किंतु जो चिंतक-सर्जक था, विशेष रूप से संवेदनशील कवि, वह इस असफल क्रांति से उपजे शोषण-तंत्र से जूझने को अभिशप्त था। यह जूझना उसकी ग्रंथि बन गया, हालाँकि उसे इस जूझने की निरर्थकता का एहसास भी बार-बार होता रहा। इससे कविता में जनबोधीय चिंतन एक ओर मुखर हुआ, तो दूसरी ओर उसने इसकी अभिव्यक्ति को छिछला भी बनाया। किंतु इसका एक महत्वपूर्ण योगदान रहा। **जनबोधीय स्वर धीरे-धीरे कविता के अवचेतन में समाहित हो गया। साथ ही जो कवि-सर्जक समर्थ थे, उनमें यह गहरा कर एक ऐसी लोकोन्मुखी मुद्रा में परिवर्तित हो गया, जो एक मौन शान्त सामजिक बदलाव की भावभूमि बनी। शान्ति सुमन एक ऐसी ही सामर्थ्यवान कवि सर्जक हैं, जिनके गीतों में जनगीतीय आक्रोश गहरा कर एक सार्थक जनबोध की परिवर्तनकामी भाव-मुद्रा बन गया। यही है सार्थकता जनवादी गीत से उनके जुड़ाव की।**

'मौसम हुआ कबीर' का प्रथम संस्करण आया सन् 1985 में और फिर 1999 में आया इसका दूसरा संस्करण। चौदह साल के इस अंतराल में समाज की संरचना काफी कुछ बदल गई थी, किन्तु जो उपेक्षित वर्ग था समाज का, उसकी यथास्थिति जस-की-तस बनी रही थी। इसी से 'मौसम हुआ कबीर' के गीतों की सार्थकता बनी रही। संग्रह के अपने प्राक्कथन में डॉ० रेवतीरमण ने मैथिल संस्कृति और राग संतप्तता को शांति सुमन के गीतों की दो विशिष्टताएँ बताया है। 'जनपक्ष में आवेगपूर्ण और आक्रामक' उनके इस संग्रह के गीतों के तेवर को डॉ० रेवती रमण ने 'साथ की भीड़ और समय' की उकसाहट से उपजा बताया है। साथ ही, यह भी रेखायित किया है कि इनमें 'अनुभूति के साथ यथार्थ के अनुभव बोलने लगे हैं।' मेरी राय में, अनुभूति और यथार्थ का सही संयोजन, यही तो कसौटी है आज के गीतकवि की सामर्थ्य की। नवगीत में इसी संयोजन की तलाश बराबर बनी रही है। संग्रह का शीर्षक-गीत, मेरी दृष्टि में इस संग्रह का प्रतिनिधि और सबसे सशक्त गीत है। देखें कुछ पंक्तियाँ –

'इतना साहस भरा हवा में/मौसम हुआ कबीर
नजरें ज्वालामुखी हुईं/ औ' बाँहें तीर-कमान
सुनते हैं ललकार समय की/महल हुए हैरान
हम आने वाले कल, हमको/समझो नहीं फकीर'

कविता एक जिज्ञासा होती है अपने समय को जानने की, उसके साक्षी होने की और अंततः फिलवक्त के अन्तर्विरोधों को युगानुयुगीन अर्थवत्ता से जोड़कर एक आस्तिक भाव में उनकी परिणति करने की। यह जो समय का साक्षी होकर आस्तिक होना है, यही है मूल कवि-कर्म। भविष्योन्मुखी इस गीत में कविता के

इसी मर्म की अभिव्यक्ति हुई है। 'दुख ही हमें बड़ा करता है' जैसे सिद्धवाक्य को उजागर करता यह संग्रह उस आस्था से उपजा है, जिसमें संघर्ष, अनवरत संघर्ष ही जीने, जीते रहने की एकमात्र कसौटी है। 'नया समाज गढ़ा जायेगा/ मिट्टी-श्रम-पानी से/मुक्त करेंगे जन-जन को/सत्ता की मनमानी से/पत्थर की दहलीज नहीं हम/समझ मुनाफाखोर' जैसी पंक्तियाँ इसी सात्त्विक आस्था से उपजी हैं। 'पत्थर की दहलीज नहीं हम' पंक्ति इसे कोरी नारेबाजी और सपाटबयानी से बचाती है, वरना ये पंक्तियाँ किसी 'लेबर यूनियन' का ऐलान बन जातीं।

जनगीत की इस ऐलानमुखी मुद्रा से उबर कर शांति सुमन का गीतकार 'भीतर-भीतर आग' की अवचेतनीय जनबोधी मुद्रा अपनाता है। यही उसके विकास के लिए श्रेयस्कर भी था। वह आग जो बाहर धधक रही थी, भितरा कर एक ज्योतिपुंज बन गई है। उसमें ऊष्मा है, किन्तु जलन नहीं। 'उस शिवाले के शिखर पर/मेघ फूँके बंसरी' पंक्ति में निहित है कवयित्री का शिव-संकल्प और कहन में बंसरी का माधुर्य। मनोरम है यह बिंब। नवगीतात्मक हो गई है इन गीतों की भंगिमा। देखें –

'अवतरण होगा बहेगी धार/गंगा की नई
गाँव की पगडंडियों में/राजपथ होंगे कई
छाप नंगे पाँव की/अब शहर में लगती बड़ी'

जनबोध अब भी जिंदा है, किन्तु वह अब रक्त-शिराओं में प्रवेश कर गया है, अस्तु उसका प्रवाह गहरी नदी की तरह शांत और संपोषक हो गया है –

'शिराओं में बज रहे जो/रात-दिन के शंख
देखते बच्चे किताबों में/बया के पंख
कौन यह हँसते हुए/सुख का खजाना लूटता है'

प्रश्न अब भी हैं, किन्तु उनके उत्तर अब कवयित्री अवचेतन के रागानुराग में खोजती हैं। इनमें फिर से 'दूब का कनखियों से देखना', 'भाल पर खिंची सगुन रेखा', 'नदी-घाट सूखते अंगोछे', 'हल्दी नहाया सूप', 'फूल की कनखियों पर/हामी भरती टहनी', 'रूप-नखत लिये गगन', 'घूँघट के बीच हँसते कोहबर के दीप', 'स्नेह-सने नीलनयन' जैसे मोहक आदिम बिंब उभरने लगे हैं। यह एक स्वस्थ विकास है। एक सकारात्मक संवेदना इन गीतों में नई प्राणवत्ता लेकर उपस्थित हुई है। ये गीत जिज्ञासु हैं घर के हालचाल के प्रति। देखें तो जरा एक मोहक बिंब-रचना –

'बाहर की तो बात पता है/तुम घर की लिखना
जाते होंगे बूढ़े बाबा/सुबह रोज टहलने

दादी अम्मा तुलसी चौरा/लगी साफ करने
सूरज कैसे उगता है/यह भी जरूर लिखना...
स्याही सनी हुई उंगली/का हालचाल लिखना'

हाँ, यह है वापसी भाव-जगत की ओर। 'मेड़ों से पिछले गीत को उठाकर/चिड़िया आकाश को निहारे' की यह कोमल भावयात्रा एक नई गीत उड़ान की संकेतक है। संघर्ष-प्रतिरोध का यह भी एक तरीका है। भाव-जगत की समृद्धि से ही तो हम भौतिक जगत की सीमाओं को लाँघ सकते हैं। सकारात्मक संवेदना की उपेक्षा से ही तो तमाम अनाचार उपजते हैं। 'जितनी तपेगी मरुस्थल की रेत/दुहरेगा मौसम का छल' कह कर कवयित्री ने इसी ओर तो संकेत किया है।

सन् 2006 में आये संग्रह 'एक सूर्य रोटी पर' के एक गीत में शान्ति सुमन ने इसी संतुलित दृष्टि का गीताख्यान किया है –

चीजों के दाम जंगली/नदियों के शोर हो गये
रोशनियाँ बर्फ हो गईं/बादल कागज-कोर हो गये
सूखे और बाढ़ में गई/नदियों की मछलियाँ खोजें
हँसी और नींद हम खरीदें

आज के तनाव भरे जीवन से हँसी और नींद ही तो गायब हो गई है। उन्हें वापस लाने की गीत की यह कोशिश बेमानी नहीं है। क्योंकि –

एक-एक कर बनती जाती/कितनी कुतुबमीनारें
हाथ जहाँ तक पहुँच नहीं/पाते वैसी दीवारें
हँसी, नींद, सपने सब कुछ कितने घबड़ाये हैं

'एक सूर्य रोटी पर' एक दृष्टि से, कवयित्री का सबसे प्रतिनिधि संकलन है, इसमें उसकी गीत-यात्रा के सभी स्वर जैसे समेकित हो गये हैं। फिलवक्त की तमाम चिंताएँ, मसलन, 'बेटा कैद शहर में', 'सूखे खलिहानों की छाया', 'ढेरों बन्द लिफाफे लाना/शहरों से पंजाब के' (संदर्भ : सुदूर पंजाब में बिहारी श्रमिक), 'गंध ऐसी आ रही बारूद की', 'पिता किसान, अनपढ़ माँ/बेरोजगार हैं हम', 'आँगन की तुलसी सी बढ़ती/घर में बहन कुमारी', 'बाध-बधार खेत सब जैसे/सहमी आँख लिये', 'खाली हथेली औ' 'खाली चंगेरियाँ', माँ का सूना ललाट', 'हाथों से होते हुए पेटों तक/बुना हुआ एक मकड़जाला', 'घर की चिड़िया नोंच रही है पाँखें', 'थके पाँव-सा/झुकी छाँव-सा/अपना गाँव हुआ', 'फूटे अलमुनियम के तसले/वाले दिन' आदि इन गीतों में हैं। साथ ही इनमें 'पुरइन के पत्तों पर जैसे बूँद', 'कुश की नोंक पर ओसायी धूप', बिन सँवरा यह रूप तुम्हारा/इस घर का सिंगार', 'हवा-धूप इस घर की जैसे/हँसती

सुबह जगे', 'मन के कोने–कोने गूँजे/मीरा और कबीर', 'गोबर लिपे हुए आँगन में/पूज देव-पितरों को/घर से निकलीं खिल-खिल हँसिया/रख 'कनिया पुतरों को/जी-तोड़ कमाई कर आये/सुखद लगे', 'गूँजे श्रम के गीत उठे/फिर बिरहा की तानें/मौसम की धड़कन में जागे/सोये सुख पहिचाने' जैसे सुखद एहसासों की भी खबरें हैं। संघर्ष और चेतावनी के स्वर भी इस संग्रह के कई गीतों में उपस्थित है। मसलन, 'जब हवा के पंख खुलते हैं/काट कर चट्टान हम तब बीज बोते हैं', 'चाहे रहो गाँव में भाई/चाहे रहो शहर में/चुप होकर अब नहीं बैठना/अपने टूटे घर में'/कसी हुई मुट्ठीवालों की/लम्बी आज कतारें/काले शोषण के खिलाफ/आँखों में आग उतारें/जोर-जुल्म पर जीने वाले/दिखते तहस-नहस हैं', 'साथ-साथ टूटेंगे--/लोहे की जंजीरें/सोने के सिंहासन' आदि। **तात्पर्य यह है कि संग्रह ने पकड़ा दी है – 'गोबर-माटी सने हाथ में' भाषा जीने की'। इसी से तो उपजा है यह क्रांति का तेवर – 'अपना घर पक्का बनवा/तूफान उड़ाते जो/उनके अगुआरे बोएँगे/गरम आग का बीज।' यह 'गरम आग का बीज' बोना आज भी उतना ही जरूरी है, जितना कभी पहले रहा होगा, क्योंकि हाँफ रहा जन-गन-मन/राजकुँवर सोया है' की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। शब्द की सामर्थ्य में यकीन – हाँ, 'गोबर-माटी सने हाथ में भाषा जीने की' का होना – यही है कवयित्री की नई क्रांति-दृष्टि।** उसे विश्वास है कि 'हँसी बच्चों की हँसेंगे शब्द/नहीं जालों में फँसेंगे शब्द' और क्यों न हो यह, क्योंकि अब 'चाक पर श्रम के मढ़ेंगे शब्द।'

यही है सुश्री शान्ति सुमन का रचना-संसार, जिसमें 'दुख से मंजी हुई यह धरती' और उसकी विविध छवियाँ हैं, 'यह सदी रोने न देगी', का त्रासक एहसास है, 'अग्निपंख लेकर उड़े थे हम' की स्मृतियाँ हैं, 'ईख-ईख मन/हवा मछलियों जैसी, 'धो देती मन हँसी तुम्हारी/करुणा नेह पगी' की सुखानुभूतियाँ हैं। 2007 में आये उनके अधुनातन संकलन 'धूप रँगे दिन' के गीत साक्षी हैं उस रागात्मक संचेतना के विविधवर्णी रूपाकारों के, जिनका पर्याय हैं सुश्री शान्ति सुमन।

अन्त में इतना ही कि लोकोन्मुखी कवयित्री शान्ति सुमन का यह गीत अभियान नित नये आयाम दे कविता के वर्तमान संदर्भ को। काल-सापेक्ष से काल-निपरपेक्ष होती उनकी गीत-भंगिमा सहज रहे, निराग्रह रहे, समृद्ध रहे और उसमें भाषा का जुड़ाव माटी से बना रहे! साधुवाद उनकी अब तक की काव्य-यात्रा को और यह यात्रा अनन्त हो, इसकी अमित शुभकामना।

●

शान्ति सुमन की गीत-यात्रा

❑ डॉ० माधुरी वर्मा

अपने प्रथम गीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' (प्रकाशन वर्ष 1970, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद) के प्रकाशन के पूर्व ही शांति सुमन ने नवगीत के फलक पर अपनी उपस्थिति बना ली थी। सन् '60 से ही इनके नवगीत पत्रिकाओं में छपने लगे थे। इनका पहला गीत 'रश्मि' नामक पत्रिका में छपा था। उन दिनों ही कई गीतकारों और समीक्षकों ने इनके गीतों के धरातल की पहचान की थी। उनकी अपेक्षाओं के अनुकूल शान्ति सुमन की रचनात्मकता का विकास हुआ।

जिन दिनों 'ओ प्रतीक्षित' का प्रकाशन हुआ था, नवगीत को अपने पंख पसारे दस-बारह वर्ष ही बीते थे। राजेन्द्र प्रसाद सिंह के द्वारा सम्पादित 'गीतांगिनी' 1958 में प्रकाशित हुई थी। समस्त बहसों-विवादों के बाद नवगीत का उद्‌भव 1958 में मान लिया गया। नवगीत की दावेदारी में बिहार और उत्तर प्रदेश पूरी तरह उलझे। उसको जन्म देने, प्रथम नामकरण करने का श्रेय लेने के लिए पत्रिकायें रँगी गईं। यह मान लिया गया कि नवगीत शब्द के प्रथम प्रयोक्ता, उसके जनक राजेन्द्र प्रसाद सिंह हैं। एक शहर में रहने के कारण शान्ति सुमन को नवगीत की रचना-प्रक्रिया, उसकी प्रवृत्तियों और शिल्पपक्ष को जानने का अवसर मिला। इससे इनकी रचना में धार आई। उसका क्रमिक विकास हुआ।

यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि जिन दिनों 'ओ प्रतिक्षित' का प्रकाशन हुआ, कुछ जाने-माने नवगीतकारों के नवगीत-संग्रह ही प्रकाशित हुए थे। ठाकुर प्रसाद सिंह, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शम्भुनाथ सिंह, उमाकांत मालवीय, ओम प्रभाकर आदि इने-गिने नवगीतकारों के नवगीत-संग्रह ही लोकार्पित हुए थे। माहेश्वर तिवारी, बुद्धिनाथ मिश्र, श्रीकृष्ण तिवारी, उमाशंकर तिवारी, नईम, नचिकेता, सत्यनारायण आदि के नवगीत-संग्रह तब छपे नहीं थे। वे पत्रिकाओं में लिख रहे थे और अपनी पहचान बना रहे थे। नवगीत के इतिहास में इन सबके पहले ही शान्ति सुमन का नवगीत-संग्रह प्रकाशित हुआ और इस दृष्टि से इन्होंने इस रूप में इनसे पूर्व ही अपना रचनात्मक साक्ष्य देकर नवगीत के पक्ष को मजबूत किया।

शान्ति सुमन की रचना-भूमि मुजफ्फरपुर है। यह उत्तर बिहार का एक जिला है जो आज भी रचना की दृष्टि से चाहे जितना उर्वर हो, प्रकाशन व्यवस्था की दृष्टि से एकदम पिछड़ा है। '60 के दशक में तो इस शहर में प्रकाशन के नाम पर कुछ नहीं था। सोचा जा सकता है कि तब शान्ति सुमन

ने किस प्रकार अपने नवगीत-संग्रह को प्रकाशन की दिशा में अग्रसर किया होगा। यह इनकी गीत-चेतना का ही अदम्य दबाव रहा होगा जिससे यह कार्य संभव हुआ।

'80-'90 के दशक में कवि-सम्मेलन बहुत होते थे। आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री ने एक बार इनके बारे में लिखा कि 'शान्ति सुमन एक सुरीली गीत कवयित्री हैं।' मंचों पर इनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। '60 से '90 के दशक में शहर-दर-शहर के मंचों पर गीतों का सस्वर पाठ इनकी दिनचर्या में शामिल था। देश का एकाध हिस्सा ही होगा जहाँ वे भविष्य में जाने को सोचने लगीं और तब इन्होंने कवि-सम्मेलन के मंचों से गीत-पाठ करना बन्द कर दिया। शान्ति सुमन वृत्ति से प्राध्यापक थीं। वे व्याख्याता से रीडर और फिर प्रोफेसर बनीं। किन्तु इनके जीवन में प्रोफेसर से अधिक एक गीतकार का रूप ही अधिक प्रखर रहा। इनका पूरा व्यक्तित्व इनकी रचनात्मकता का प्रतिबिम्ब है।

छोटे शहर में रहने के कारण और बड़े शहरों के घात-प्रतिघात सहने के कारण शान्ति सुमन की रचना के प्रकाशन-पक्ष में बड़ी असुविधाएँ थीं जिनको इन्होंने बड़ी गंभीरता और शालीनता से जिया और धीरे-धीरे इन बाधाओं से ऊपर आईं।

इसलिये शान्ति सुमन की रचनात्मकता को लिखते हुए उनकी उन असुविधाओं को भी दृष्टिपथ में रखना होगा। बिहार की स्त्री के लिये आज भी प्रगति का रास्ता सुगम नहीं है। उन दिनों तो प्रगति की ऐसी एषणायें करना भी एक कठिन स्वप्न की तरह था। शान्ति सुमन ने उस कठिन स्वप्न को देखते हुए रचनात्मक जीवन के सौ जंगल पार किये बिना किसी अवलम्ब के।

मुजफ्फरपुर में तब जितने रचनाकार थे, उतनी संस्थायें थीं। सबके अपने-अपने अहम थे। कोई किसी में विलय नहीं होना चाहता था। इसलिए साहित्य में नवागन्तुकों के लिये वह समय दुविधाओं से भरा था। पहले तो यूनिवर्सिटी के अन्दर और बाहर के दो साहित्य-संसार थे। कुछ ही रचनाकार थे जिनकी दोनों संसार में आवाजाही थी। शांति सुमन वैसी अकेली गीतकार थीं जिनकी पूछ दोनों जगहों पर थी। एक तो पहले यूनिवर्सिटी में छात्र होने के कारण, फिर यूनिवर्सिटी में ही कार्यरत हो जाने के कारण और शहर की रचनाकार तो थीं ही। राजेन्द्र प्रसाद सिंह दोनों स्थानों पर समादृत थे। उन दिनों मुजफ्फरपुर की गोष्ठियों में जाने के लिए शांति सुमन अकेली गीतकार थीं। बाद में कुछ कवयित्रियों-गीतकारों का आगमन इस क्षेत्र में हुआ। अनामिका पहले अपने पिता प्रसिद्ध कवि डॉ० श्यामनंदन किशोर के साथ गोष्ठियों में आती थीं। फिर

तो पूनम सिंह, इन्दु सिन्हा आदि का रचनात्मक अवदान इस शहर को मिला।

शांति सुमन ने नवगीत के क्षेत्र में बहुत प्रतिष्ठा अर्जित करने के बाद हिन्दी के गीत साहित्य में अपनी जगह बनाई। 'ओ प्रतीक्षित' के बाद इनके अन्य नवगीत संग्रह भी आ गये। 'परछाईं टूटती' प्रकाशित होने के बाद बहुत चर्चित हुई। इसके कुछ गीत मंचों से प्रसारित होकर श्रोताओं और पाठकों के गलहार बन गये थे। शांति सुमन के गीतों में प्रारम्भ से ही सामाजिक सरोकार के स्वर सुनाई देने लगे थे। 'ओ प्रतीक्षित' में ही उन्होंने –

रही खटकाती सपन के द्वार/
सारी रात, सारी रात
एक भटकी रोशनी के लिये

लिखा तो यह भी लिखा –

सिर्फ औपचारिक हैं/परिचय-प्रणाम
चाय पिला जोड़ें सब चीनी के दाम

'परछाईं टूटती' के नवगीत अपने रचना-शिल्प में अधिक निखरे और प्रांजल सिद्ध हुए। कुछ गीतों ने तो नवगीत में अपनी पहचान की मुहर लगा दी थी। नवगीत के विकास का ये गीत प्रमाण ही नहीं, आइना बन गये थे। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

मुट्ठियों में बन्द कर ली नागकेसर हवा

और

दुख रही है अब नदी की देह, बादल लौट आ

और यह भी

जब कभी कोई लड़की वर्षा में नहाती है
घर की याद आती है

और भी

सिरहाने इन्द्रधनुष टूट गया
खुली हुई हथेली है और कुछ बहाना
ओ रे, सागर-सुख मैंने भी जाना

और कितने उदाहरण दूँ। वस्तुतः 'परछाईं टूटती' शांति सुमन ही नहीं नवगीत का भी अप्रतिम प्रतिमान थी और है। इतने कोमल शब्द-बिम्ब पहले नवगीत में बहुत कम रचे गये। कुछ कोमल बिम्ब तो पहली बार इन्होंने ही रचे।

'67 में घटित नक्सलवाद की गूँज अब साहित्य में स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी थी। शांति सुमन के गीतों की भी दिशा बदली। वे जनवादी गीत लिखने लगीं। महेश्वर, नचिकेता, गोरख पांडेय आदि के साथ ये इंडियन पीपल्स फ्रंट की

स्थापना की भी साक्षी थीं। नव जनवादी सांस्कृतिक मोर्चा के स्थापनाकाल से ही उससे जुड़ी रहीं। कई वर्षों के बाद कतिपय अंतर्विरोधों के कारण इन्होंने उससे अपना संबंध अलग कर लिया। मगर अब ये एक प्रखर प्रतिष्ठित जनवादी गीतकार हो गयी थीं। इनका यह रूपान्तरण कई परिजनों, समीक्षकों और आलोचकों को पसंद नहीं आया। इन्होंने शांति सुमन की आलोचना की। यह भी कहा कि जनवादी गीतकार के रूप में इनका नवगीत-पक्ष तिरोहित नहीं हो सकता। यह भी कहा कि नवगीत ने इनकी रचना को ऊँचाई दी थी, जनवादी गीत में इन्होंने अपने बिम्ब को खंडित किया है, अपनी पहचान तोड़ी है। कुछ लोगों ने तो इसीलिये इन पर बाद में लिखना भी छोड़ दिया। उनके इस विरोध को ही शांति सुमन ने सकारात्मक रूप में लिया। इनकी रचनात्मक धार और तेज हुई। इसी क्रम में 'सुलगते पसीने', 'पसीने के रिश्ते' और 'मौसम हुआ कबीर' छपकर आ गये। इसकी प्रतिक्रिया यहाँ तक हुई कि बनारस से डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने नवगीत दशक-1 में उमाकांत मालवीय, रवीन्द्र भ्रमर, ओमप्रभाकर आदि के साथ इनके दस नवगीत, चित्र और सहयोग राशि शामिल करने पर भी कुछ दिनों के बाद उनको लौटा दिये क्योंकि अब शांति सुमन उनकी दृष्टि में नवगीतकार नहीं रहीं, बल्कि एक जनवादी गीतकार हो गई थीं। जनवादी गीत लिखने के कारण नवगीत दशक-1 में इनकी रचनायें नहीं छापी गईं। डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने उसकी भूमिका में इस प्रसंग की चर्चा भी की है।

शान्ति सुमन की जनवादिता दिन-दिन निखरती गई। सुदूर गाँवों में जाकर इन्होंने अपने गीतों का पाठ किया। इस प्रकार इनके गीत जनता के कंठों में भी बस गये। कई जनवादी सम्मेलनों-अधिवेशनों में इनके गीत टेप के द्वारा बजाये गये जहाँ ये नहीं जा सकीं। डॉ० कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, डॉ० चन्द्रभूषण तिवारी, रामनिहाल गुंजन आदि को इनके जनवादी गीत अत्यंत प्रिय लगे। इन गीतों के द्वारा शान्ति सुमन ने सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किया, किसान-मजदूरों के शोषण-दमन के खिलाफ लिखा, सामाजिक बदलाव की बात की और अपने गीतों से सामाजिक क्रांति और विद्रोह के द्वारा यथास्थिति को तोड़ने में सार्थक हस्तक्षेप किया।

शान्ति सुमन को हिन्दी साहित्य के नवगीत की एकमात्र कवयित्री कहा जाता है। उन्होंने शोषित-पीड़ित जनता के दुख-दर्द को अपने गीतों में व्यक्त किया है। 'सुलगते पसीने' ने ही उनको एक सशक्त जनवादी गीतकार की पहचान दे दी थी। 'मौसम हुआ कबीर' में उनकी जनवादिता खुलकर सामने आई। शान्ति सुमन ने मेहनतकश जनता के जीवन-संघर्ष के लिये अपनी पक्षधरता स्थापित की। 'मौसम हुआ कबीर' के जनगीत श्रमजीवी जनता तक पहुँचने में कामयाब हुए हैं। जनवादी गीत की ऊबड़-खाबड़ राह को इन्होंने

सुगम बनाया है। डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह तो मानते है कि 'श्रम और जन के घात-प्रतिघात से ये गीत बने हैं।' शान्ति सुमन के गीतों में निर्धन की पीड़ा और अमानवीय व्यवस्था के प्रतिरोध का स्वर है –

कोड़ों के पीठ पर निशान लगे दुखने
पेटों की आग लगी आँख में उतरने

और

कैसे बेघर हुए घरों से/कैसे किया गुजारा
वासगीत भी गया करज में/मिली भूख की कारा
बाबू तेरे बिके शहर के/दाने कहाँ गये

'मौसम हुआ कबीर' के बाद शान्ति सुमन के कितने ही गीत-संग्रह आये जिनमें 'भीतर-भीतर आग' के गीतों पर कमोवेश नवगीत का बिम्ब-विन्यास भले दिखाई देता है, पर इसके अनेक गीतों के कथ्य में जनवाद की ध्वनियाँ व्यंजित हैं। मगर इसके बाद के संग्रह पूर्णरूपेण सशक्त जनवादी गीतों के संग्रह हैं। इनमें 'एक सूर्य रोटी पर' और 'धूप रँगे दिन' के गीत उनकी रचनात्मकता की सारी ऊष्मा और ऊर्जा से भरे हुए गीत हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि ''उनके ये गीत हमारे समय का आइना भी हैं और उसमें एक सार्थक हस्तक्षेप भी'' –

चारों ओर अँधेरा बूढ़ी
लालटेन है जलती
पुलिस न जाने क्यों आई थी
मन में पीड़ा पलती
गीतों ने कह दिया हवा यह बदलेगी फिर से

(एक सूर्य रोटी पर)

और

दीवारों के विरवों सी/मजदूरी जब रोती
रेलों की छत पर करते/हम सपनों की खेती
कभी असम, पंजाब कभी हम
हुए यही जिये (धूप रँगे दिन)

शान्ति सुमन को देखने और उनके गीतों को पढ़ने से ही लगता है कि वे एक अंतर्वाह्य रूप से जनता की रचनाकार हैं। अपने पाँव के नीचे की जमीन को उन्होंने कभी अपने से हटने नहीं दिया। आकाश उनके लिए सिर्फ छत है, उड़ने की कोई जगह नहीं। मौन आत्मपरक होता है। इसलिये इनके गीत में मौन के लिये कोई जगह नहीं है। मुखर साहस,

जनकर्मी संघर्षजीविता इनके गीतों की पूँजी है। मेरी दृष्टि में शांति सुमन के लिये कहा गया उमाकांत मालवीय का यह कथन – 'शांति सुमन–नवगीत की एकमात्र कवयित्री' जितना सच है, उतना ही सच है – डॉ० शिवकुमार मिश्र का यह अभिमत कि ''इन गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है...'' –

कल बाजार बन्द था/टिन में आटे नहीं पड़े
भूखे सो जायेंगे बच्चे/बाबा नहीं फिरे
दिन के पन्नों पर धीरे स्याही हुई जमा
एक उदास हँसी हँसती रहती है माँ

(धूप रँगे दिन)

अंत में मैं डॉ० मैनेजर पाण्डेय के उस विचार को उद्धृत करना चाहती हूँ जिसमें उन्होंने शान्ति सुमन के गीतों पर अपनी बेबाक टिप्पणी देते हुए इनके गीतों के वस्तु-सत्य से परिचित कराया है – **'शान्ति सुमन गीत की सीमा और शक्ति जानती हैं। जो रचनाकार अपनी विधा की सीमा नहीं जानता वह उसकी शक्ति को भी नहीं पहचान पाता।.. खुशी की बात है कि कई दूसरे गीतकारों की तरह शान्ति सुमन की संवेदनशीलता विचारधारा की आँच से सूख नहीं गई है, इसलिये उनके गीतों में विभिन्न मानवीय जन कठिन जीवन जीते हुए भी अपनी मानवीयता की रक्षा करता है। विचारधारा की सारी लड़ाई समाज को सचमुच मानवीय बनाने की ही लड़ाई है।'**

●

डॉ० शान्ति सुमन : हिन्दी गीत की उत्सव-भंगिमा

❑ यश मालवीय

डॉ० शान्ति सुमन के गीतों से बचपन से ही एक अपनापा रहा है, बल्कि कह सकते हैं कि उन जैसे गीत कवियों को सुनता हुआ ही बड़ा हुआ हूँ। **छोटे मगर दिल की तरह धड़कते महाबीरन गली के उस छोटे से कमरे में कवि पिता उमाकांत मालवीय के गीतों के साथ माहेश्वर तिवारी, रमेश रंजक और शान्ति सुमन के गीत भी गूँजा करते थे।** यह गीत वह होते थे जो जाने अनजाने प्रकारान्तर से मुझे गीत के ही संस्कार दे रहे थे। उस समय काव्य मंचों पर धूम मचाने वाला शांति जी का एक गीत इस समय भी याद आ रहा है –

केसर रंग रंगा मन मेरा, सुआपंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में, लिखा तुम्हारा नाम है।

या

हाथों में एक दो मूँगफली
और कुछ अंतरंग बातें
साँसों में तह करके रख लें हम
पार्कों में हुई मुलाकातें।

हम यानी मैं और छोटा भाई वसु कहते, 'हाँ! वही मूँगफली वाला गीत सुनाइए।' और बस सहज भाव से शांति जी हम बच्चों की फरमाइश पूरी करतीं, सुरीले कण्ठ में पूरा गीत हमारे सामने होता। उस समय शांति सुमन ही हमलोगों के लिए लता मंगेशकर थीं। आकर चली जातीं तब भी बहुत दिन तक पूरा घर उनके गीत गुनगुनाया करता।

आज भी वह कमरा बहुत याद आता है, जहाँ भवानी प्रसाद मिश्र, मुकुट बिहारी सरोज, वीरेन्द्र मिश्र, भारतभूषण, सोमठाकुर, अमरनाथ श्रीवास्तव, नचिकेता, सत्यनारायण, गोपी बल्लभ सहाय, कैलाश गौतम, बुद्धिनाथ मिश्र सरीखों की बैठक होती थी। छतफाड़ ठहाकों के बीच कोई संजीदा गीत या कविता जब उभरते थे तो बेसुरा समय भी जैसे लय में बँध जाया करता था। सत्तर का दशक था। नया गीत अथवा नवगीत अपनी पूरी शक्ल अख्तियार कर चुका था। नवगीत के बीच ही से जनगीत की स्पष्ट आहट सुनायी देने लगी थी। नवगीत बनाम जनगीत की गरमागरम बहसों का वह पुराना किराए का मकान आज भी साक्षी है। **पिता, शांति जी को नवगीत की अकेली कवयित्री मानते थे, पर**

समय का तकाजा था सो सुमन जी के गीतों में जनवाद का संवादी स्वर भी दिखने लगा था, हालांकि यह संवादी स्वर कभी-कभी विवादी स्वर की सीमा तक भी पहुँचता था। उस वक्त तक शान्ति सुमन जी की तीन किताबें घर पर थीं। नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' साहित्यिक परिदृश्य पर एक सार्थक उपस्थिति दर्ज करा चुका था। नचिकेता जी के साथ 'सुलगते पसीने' नाम से भी एक संग्रह मंजरे आम पर था। एक उपन्यास 'जल झुका हिरन' भी उन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ था, जिसका नायक मेरी ही नामराशि का है। 'यश' नाम के नायक वाला वह उपन्यास मुझे आज भी प्रिय है, जिसे शांति जी ने पिता जी को 'प्रिय मालव के लिए' लिखकर भेंट किया था। ये लोग गंभीर साहित्य लेखन के साथ कवि सम्मेलन के मंचों पर जाना भी बेहद जरूरी समझते थे, कुछ तो आर्थिक जरूरतों के चलते और कुछ इस तर्क से भी कि काव्य मंचों से आम आदमी से सीधा संवाद स्थापित होता है। जनवाद का सामान्य जन वहीं सीधा टकराता था। **शांति जी के गीत सैकड़ों कंठों में जीने जागने लगे थे, वह अपने अर्थगर्भित गीतों के साथ स्वर माधुर्य जोड़कर मणिकांचन योग उपस्थित कर देती थीं। उनके गीतों में आज की कविता का कथ्य शामिल हो रहा था। वह नवगीत को एक नयी भाषिक संरचना दे रही थीं। वह गीत को केवल गाए जाने की जकड़बंदी से भी बाहर ला रही थीं। उनके सरोकार व्यापक हो रहे थे।** जनान्दोलनों में भी उनकी भागीदारी बढ़ रही थी सो गीत का कथ्य भी अर्थ विस्तार ले रहा था। गीत के मजबूत कथ्य के साथ उनका शिल्प भी कहीं से शिथिल नहीं पड़ रहा था यद्यपि कविता की जरूरत के मद्देनजर वह नए-नए छंद भी आविष्कृत करती चली जा रही थीं। गीत अपना पूरा चोला बदल रहा था। गीत कवि तमाम षड्यंत्रों के बाद भी अपनी लेखकीय निष्ठा पर अडिग थे तो शायद इसलिए कि गीत आत्मविश्वास की कविता हो चला था। गीत कवि किसी हीन ग्रन्थि के शिकार नहीं थे क्योंकि उन्हें जनता का प्यार मिल रहा था। गीत वस्तुतः जनता की कविता हो गए थे। आपात स्थिति के काले दिनों में इनकी भूमिका अलग से भी चिह्नित की जा सकती है। जनसभाओं, नुक्कड़ सम्मेलनों में यह गीत ही थे जो विरोध का स्वर मुखरित कर रहे थे। बाबा नागार्जुन के साथ डफली पर जीवन राग के गीत गाए जा रहे थे। प्रतिरोध की कविता से वातावरण बदलने लगा था। **इसी प्रतिरोध की संस्कृति के एक विनम्र किंतु दृढ़ स्वर के रूप में डॉ० शान्ति सुमन एक सांस्कृतिक हस्तक्षेप कर रही थीं। भीड़ का आदमी ही उनकी रचना का सच निर्धारित कर रहा था। वह प्रतिबद्ध रचना मानसिकता से उन बिंदुओं की तलाश कर रही थीं, कालांतर में जहाँ से गीत के प्रस्थान**

बिंदुओं की शिनाख्त हो सकी। उनकी भाषा पर्याप्त खुरदुरी हो चुकी थी, उनमें आम आदमी का दर्द व्यक्त हो रहा था।

आज गीत-नवगीत-जनगीत की इस जययात्रा को देखता हूँ तो गर्व का अनुभव होता है। कंकड़ीली-पथरीली-रपटीली राहों और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से होता हुआ हिन्दी गीत आज जहाँ पहुँचा है उस यात्रा में डॉ० शान्ति सुमन की अनथक रचनात्मक जिजीविषा भी शामिल है, जिसने आलोचकों–समीक्षकों की किंचित भी परवाह किये बिना गीत की लौ जगाए रखी, छंदधर्मी चेतना से आत्मा के अंधकार में भी उजाला किया। वह 'गमले के कटोरन' के प्रतीक से एक बड़ी बात कहती है –

बहुत खुश हूँ
खुश बहुत हूँ
हाल अपना लिखो
क्या हुआ कल रात आयी
जोर की आँधी
नीबुओं की पत्तियाँ फिर
रात भर जागीं
समय कम है
कम समय है
हर मुहिम पर दिखो।
एक गमला करोटन का
ले गया कोई
अंधेरे में पत्थरों को
बो गया कोई

'नींबूओं की पत्तियों का रात भर जागना' कोई मामूली बात नहीं है। यह एक गंभीर अर्थ संकेत है। समय का टोटा है इसलिए प्रतिक्षण मुस्तैद रहने की गहरी आवश्यकता कवि द्वारा रेखांकित की गयी है ताकि हर मुहिम पर न केवल दिखायी पड़ा जाए बल्कि संघर्ष को एक सार्थक एवं दिशाबोधी अंजाम भी दिया जा सके जिससे मनुष्य की जिजीविषा की जय पताका धरती के वक्ष पर खड़ी होकर खुले आसमान में अबाध गति से लहरा सके।

रागात्मकता शांति सुमन के गीतों का रीढ़ तत्त्व है। यह व्यक्ति का राग तो है ही, वृहत्तर सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अनुनाद भी है। वह काव्य रूढ़ियों से समझौता नहीं करतीं। वह कविता को एक बड़ा फलक देने

की पक्षधर हैं। इसलिए सामान्य बिम्ब एवं प्रतीक उठाकर भी उन्हें एक वैशिष्ट्य दे देती हैं। सामने की देखी हुई चीज भी लगता है जैसे पहली बार देख रहे हैं, वह अपनी कविता की आँख से वह कोण उपलब्ध कराती हैं, जो सामान्य आँखों से प्रायः नजरअंदाज हो जाया करते हैं।

कभी-कभी तो सहज अभिव्यक्ति से चमत्कृत हो जाना पड़ता है। गीत का मुखड़ा ही जैसे सब कुछ बयान कर देता है, वह कहती हैं –

तुम मिले तो बोझ है कम
बहुत हल्की पीठ की गठरी
फूटते धानों सरीखे
हम बढ़े, बढ़ते गए
फुनगियों से फसल की
सपने बहुत कढ़ते गए
दिनों की बारिश गयी थम
तुम हँसी से हो गयी दुहरी।

किसी के मिल जाने पर पीठ की गठरी का बोझ कम लगने लगना अपने आप में वह जीवन-क्षण है जहाँ आकर कविता भी अपने आप को धन्य अनुभव करने लगती होगी। यह गीत पढ़ते हुए शान्ति सुमन का वह प्रसिद्ध गीत भी बरबस याद आता है, जहाँ वह कहती हैं –

तुम आए
जैसे पेड़ों में पत्ते आए

ऐसी सर्जनाशील, स्त्री स्वाभिमान से जुड़ी गीत कवयित्री डॉ० शान्ति सुमन के दीर्घ सुखी एवं कर्मनिष्ठ जीवन की मैं कामना करता हूँ ताकि नवगीत के उत्तर नवगीत और जनगीत के उत्तर जनगीत तक की एक और सृजन यात्रा संभव हो सके। आज का हिन्दी गीत इसी प्रतीक्षा में है।

●

शान्ति सुमन का रचना-संसार

❑ डॉ० चेतना वर्मा

शान्ति सुमन का जन्म एक किसान-परिवार में हुआ। उनका पालन-पोषण उसी तरह से हुआ जिस तरह एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में एक लड़की का होता है। कासीमपुर जहाँ इनका जन्म हुआ, वह उत्तर बिहार के सहरसा जिला का एक अत्यंत पिछड़ा गाँव था। था इसलिए कि एक सीधी पगडंडी भी उस गाँव में चलने के लिए नहीं थी। थी तो सब जगह पसरी हुई घोर गरीबी, अभाव और अंधविश्वास की काली परतें। शिक्षा नाम की कोई सुगबुगाहट ही नहीं थी। उस पूरे इलाके में दस-पंद्रह गाँवों में पाँच-दस लोग ही पढ़े-लिखे थे जिनमें इनके पिता भी एक थे/हैं। चचेरे दादा घर के मालिक थे। वे तहसीलदार थे, गाँव में उनकी प्रतिष्ठा थी। इसलिये इनके घर में पिता और काका पढ़-लिख सके। इलाके के अधिकांश पढ़े-लिखे लोग अंग्रेजों की नौकरी करते थे। तहसीलदारी के साथ खेती-बाड़ी सहित पूरी गृहस्थी दादा के हवाले थी। इसलिए इनके पिता भी अंग्रेजी शासन में डिफेन्स में काम करते थे। बाद में नौकरी छोड़कर ये भी खेती का काम संभालने में लग गये। जैसा कि उन दिनों गाँव में होता था एक शुभ दिन देखकर गुरुजी ने सरस्वती की मूर्ति पर फूल-मिठाई रखकर अपने छोटे भाई के साथ इनका भी अक्षरारम्भ कराया था। गाँव में कोई विद्यालय नहीं था। सो टोले के बच्चों के साथ दरवाजे पर बनाये गये बाँस के फट्ठे की बेंच के स्कूल में इनकी पहली पढ़ाई हुई।

उपर्युक्त बातों के कहने का प्रसंग यह बनता है कि शान्ति सुमन के जीवन की बड़ी साधारण शुरूआत रही। संयोग ही था कि बुद्धि और संवेदना दोनों की नैसर्गिक आभा इनको जन्म से ही प्राप्त थी। इसलिए गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, विरोध, विद्रोह के साथ हवा में झूलती फसलों के रंग भी इन्होंने बचपन से ही देखा, जाना और समझा। गाँव के दुख-दर्द और सारे संघर्ष जो तब इन्होंने देखे, आजतक इनके मन में अमिट हैं। गाँव के वे सारे लोग जिनमें लालबाबा, सिरिया, पुरना, नत्थू, रामजी, कैला, घुरना के साथ दीवान जी की पत्नी (जो इनके घर में खाना बनाने का काम करती थी), घुरना के साथ रामजी की माँ, फूलकाकी, कृष्णा आदि के जीवन की तकलीफें और उन तकलीफों में जीकर भी फगुआ, दीवाली, दशहरा मनाने का हौसला शान्ति सुमन की रचनाओं में बुने हुए हैं।

गाँव के अभावों के बीच पलते हुए प्राथमिक कक्षा के बाद पाँव-पैदल गाँव के बच्चों के साथ एक डेढ़ कोस (पुराने नाप के अनुसार) की दूरी तय कर सुखपुर स्कूल जाना, उस जाने में सर्दी-घाम-वर्षा का संकट झेलना, पाँव और

पसीने की बगावत के बीच जीना और पढ़ाई करना दिनचर्या में शामिल था। उन्हीं दिनों संघर्ष की नींव मन में पड़ने लगी थी। सुभद्रा कुमारी चौहान की तरह शान्ति सुमन को भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की कार्यकर्त्ता होने का श्रेय तो नहीं मिला क्योंकि उतने अल्पवय में इस तरह का काम तो हो नहीं सकता था, पर जिन असुविधाओं, विसंगतियों को झेलकर इनको जीवन जीना पड़ा, वह किसी स्वातंत्र्य युद्ध से कम नहीं था। शान्ति सुमन को लग गया था कि अपने अंधकारों से निकलने के लिए उनको वे अग्निपरीक्षायें देनी ही हैं। शिक्षा को त्यागकर सुभद्रा जी की तरह इनको जेल तो नहीं जाना पड़ा, पर मैट्रिक पास करने के बाद आर्थिक और रूढ़िवादिता के कारण विवाह हो जाने पर उच्च शिक्षा के लिए संघर्ष करती हुई शान्ति सुमन ने कम पीड़ा नहीं झेली। विवाह के उपरान्त पढ़ाई तो चलती रही, पर असुविधाओं के झंझावत कभी कम नहीं हुए। उन्हीं दिनों पति का अस्वस्थ होना, दो बच्चों की परवरिश और अध्ययन – बड़े कठिन दिन थे वे।

इन्हीं परिस्थितियों में '60 में 'रश्मि' में शान्ति सुमन की पहली गीत रचना छपी। उन दिनों बल्कि स्कूल के दिनों में ही छायावाद की कविताओं से इनका परिचय हुआ। विशेषकर महादेवी के गीतों का प्रभाव भी इन पर पड़ा। परन्तु धीरे-धीरे इनकी रचना की जमीन को इनकी संवेदना, इनके अनुभव, विचार और शिल्प मिलने लगे। 'रश्मि' में प्रकाशित गीत में कहीं छायावाद का प्रभाव नहीं था। खेत के मेड़, फसल की हरियाली, चिड़िया, धूप, बादल, नदी, दुख-ताप सभी गीत में आने लगे थे।

'ओ प्रतीक्षित' में जब उन्होंने लिखा – 'सुधियों की भँवर गई डोल/हाथों में काँपता गुलाब रह गया' तो ऐसे कई गीतों में शान्ति सुमन ने विवशता भरी परिस्थितियों और मानसिकता का चित्रण किया है जिनमें यह दीखता है कि बढ़ी हुई जिम्मेदारी के कारण कैसे उनकी उम्र की लड़कियों के मन में प्रेम के अनेक अनुभव बिना जिये रह जाते थे। जिम्मेदारियाँ उनको कर्त्तव्य के पठार पर पहुँचा देती थीं। फिर पत्थरों के शहर में सुबह-शाम को भी गड्ड-मड्ड होते उन्होंने देखा। मन की भीतरी सतह पर जन्म लेती अजस्र अनुभूतियाँ गीतों में बुनकर आती रहीं।

'परछाईं टूटती' के इस गीत 'दुख रही है अब नदी की देह बादल लौट आ'-में कई पाठकों-समीक्षकों ने रूमानियत देखी, पर इस गीत की रचयित्री से मैंने जाना कि लगातार विपर्यय को जीते हुए मन ही कहाँ मन रह जाता है। वह देह हो जाता है। दीखने लगती हैं उसकी पीड़ायें, वे निशान जो समय लगाते हैं। किसान-जीवन के वे परिताप इसमें व्यक्त हुए हैं जो बादल के नहीं बरसने पर फटी हुई धरती अनुभव

करती है। बादल के बरसने से ही धरती अन्नमयी होती है। शान्ति सुमन समकालीन जनवादी गीत की प्रतिनिधि रचनाकार हैं। लोकोन्मुखता इनकी रचना में गुँथी हुई है। बिना गहन मानवीय करूणा के ऐसी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इस देश में किसान-मजदूर बेहद सताये हुए लोग हैं। उनके जीवन में जिन रचनाकारों की पैठ होती है उन रचनाकारों की रचनाओं में ही शान्ति सुमन जैसी संघर्षप्रियता, उदात्त सौन्दर्य-बोध और जनवादिता होती है। व्यापक अर्थ में जीवन-संदर्भों में जुड़कर शान्ति सुमन के गीत नये मूल्य और अर्थ प्राप्त करते हैं।

शान्ति सुमन के गीतों का रचना-संसार बड़ा है। उनकी संवेदनाओं की नदी का पाट भी बहुत चौड़ा है। उनमें आस्था-अनास्था, जीवन-मरण, लोक-अलोक सभी हैं, पर आस्था, जीवन और लोक का महत्व अपेक्षाकृत अधिक है। संबंध के जिस सौन्दर्य को लिखते हुए गीतकार की कलम नहीं थकती, वहीं थोड़ा भी अजनबीपन आया तो वह चिरपरिचित जैसा ही लगा है –

अपनी अनुपस्थिति में भी तुम/इतनी पास लगी
जैसे कोई किरण अकेली/देहरी पास उगी

तब अपना घर-आंगन आत्मीय संबंध के गुलाल से लाल-लाल हो उठता है जब ये लिखती हैं –

'सारा घर-आंगन लिखवा लो/भामी यह दलान लिखवा लो
पर अपने हिस्से भैया का प्यार/नहीं दूँगा'

शान्ति सुमन के रचना-संसार में केवल मनुष्य के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा नहीं हैं, मानवेतर भी उनकी संवेदनाओं से ओत-प्रोत होकर व्यक्त हुए हैं। डॉ० शिव कुमार मिश्र ने लिखा है ''उनके गीतों में नर-जीवन ही नहीं, नरेतर वाह्य प्रकृति भी नर जीवन की सहभागिता में अपनी जनधर्मी भंगिमाओं की समूची सुषमा के साथ चित्रित हुई है।''

मनुष्य के मन की अभिलाषाओं के अधूरेपन से मर्माहत होती हुई गीतकर्त्री लिखती हैं –

खिलते ही सूर्यमुखी गहनाई, मूक हुई
फसलें हस्ताक्षर की स्याही सी सूख गई

'धुंध ऐसी सोखती जाये बदन की ताजगी', 'सुबह की मुँडेर पर पाँख खोल गौरैया फिर बतियाती होगी', 'पेड़ की फुनगियों से सूर्य बँधा, रोशनी किनारे की झील बनी', 'छपे कोंपल पर सुरभि के हाल', 'मरी हुई तितली के तन सा सागर-तट', 'यहाँ से गुजरती फ्राक पहन ऋतुयें, नावों पर शीशे चमकातीं', 'धूप सा तुम्हारा मन', 'रोशनी का पुल नदी में इत्र का झरना', 'चाँदनी की लतर काँपे',

'उस नदी में पाँव धोती/हिरनियों सी कुलाँचें भरतीं', 'हुई अनमनी छाँहों वाली/गुमसुम लाल जवा', 'आँख मलते धुँआये खपरैल', 'बाढ़ चढ़ी गंडक के हौसले', 'धूप, हवा, पानी इस घर के घूमे भली सलाह में', 'तुम आये जैसे पेड़ों में पत्ते आये', 'अपने घर नागफनी रोकती उजाले', 'आँख खुलते ही सूरज उगे/नील झीने चँदोवे तले/एक सुकमार टहनी जुही/लोरियों के सहारे हिले', 'पड़ी औंधी नाव/रेती को पसीना छूटता है', 'उदासी जैसे सिहरते पाँव पानी के', 'जिद में डूबी खनकती हँसी चौदह साल की', 'सुबह रची माथे पर माँ के आशीषों सी/दुपहरी पिता की प्रतीक्षा में कासों सी', 'चाँदी की थाली में दूब-धान से, याद घर लगते उजले मखान से', 'आँख खुली पाजेब बजा के', 'मोर पंख सी खुली हवायें', 'भीग रही वर्षा में कच्ची हँसी बहुत बेघर है', 'हँसी जैसे सूखते कपड़े छतों पर', 'रोशनदान बाँटते ढेर उजाले', 'मछली की रूनझुन बजती पोखर के पाजेबों में', 'उगी किरणें रोटियों वाली', 'कभी छोटी चिड़िया भी बाज को मरोड़े', 'भूख हुई अजगर सी सूखी तन की बोटी-बोटी', 'रक्तहीन हुआ जाता कैसे गोदी का पालना', 'क्रांति का संवाद आँधी चल रही है', 'कच्चे घर से वर्षा में भी तने हुए जो हाथ यहाँ', 'हवा घूमती बन शहजादी', 'ये इतने चुपचाप दीखनेवाले हल के जोड़े', 'बहुत दिनों पर बेटी जैसी/घर आई हो खुशीभली सी', 'साँझ उदासी भरने लगती, हरियाये नीम बबूलों में', 'ईख सी गाँठदार उँगली', 'बहनेवाली हवा दुखों के संग सरकती है', 'होते साँझ सुरंग अंधेरों की बनने लगती/आते-जाते पाँवों की आवाज पहनने लगती', 'सन्नाटे में दबी चीख नंगी हो जाये', 'धानों सी फूटी किलकारी', 'झोपड़ियों की धूप गुनगुनी कुछ अधमैली सी', 'दुबक गई चिड़िया पत्तों की फटी रजाई में', 'पछिया बात नहीं माने', 'दुखती हैं टहनी की बाँहें', 'आँगन की तुलसी सी बढ़ती घर में बहन कुमारी', 'नीड़ों में दुबकी है चिड़िया आग बचा अपनी आँखों में', 'कब से पेड़-पखेरू करते हैं मुठभेड़ हवा से', 'खेत बटाई के देते हैं नहीं रात भर सोने', 'बूढ़ी लालटेन है जलती', 'टीन की छत रो पड़ी जैसे', 'छोटी मड़ई की आँखों से खुशियाँ झरती छलक-छलक के', 'चिड़िया नोंच रही हैं पाँखें', 'सूरज चोला पहन लड़ाकू हो गया', 'बेटी सी सुन्दर हरियाली पकड़ उँगलियाँ चलती', 'खेत हमारे हाथ मेड़ जैसे कि शिरायें हैं', 'एक सवाल हाँफता दौड़े', 'आग भड़काती हवा', 'पीले पालोंवाली नावों/बातें करे नदी से', 'फसल पसलियों जैसी', 'हँसने लगी हवायें', 'बेलगाम मौसम की आँखें सूरज पर ठहरीं', 'हँसी जेल की दीवारें', 'खेत उगी पत्थर की देह हस्ताक्षरों से पठार के', 'धान की बाली जहाँ अखबार हो जाए', 'दीवारों के विरवों सी मजदूरी जब रोती', 'घूमकर खलिहान से लौट जाएगी हवा', 'बासी मुँह लगते से दिन-दिन भर सपने', 'फसलें अंगराई ले जागीं', 'टूटे नहीं पेड़ों के मन इसलिये खड़ी हैं

पत्तियाँ', 'जैसे हिरनी रखे पाँव/जल में अपने गिन-गिन के', 'पोखर नहीं जानता/कोमल भाषा पुरइन की', 'पंख अपने सुखाती है धूप में बैठी हुई, गा रही सुख से बया है चैन से लेटी हुई', 'तालाबों में आँख मलती जग रही हैं मछलियाँ', 'हथेली पर सुबह रचती हवा सपनाने लगी', 'हवा लौटकर घर आई होते ही अहले शाम', 'उड़ते सारस की चोंचों में छटपट सी बेचैन मछलियाँ', 'भर-भर आँख नदी रोती है, देख रहा मौसम', 'सुख पहनकर नाचती थी रात में कजरी', 'टहनी पकड़े हवा जहाँ गाती थी हरदम कजरी', 'पत्तियों की छुअनभर से पेड़ भर सिहरा', 'पहरेदारी करती है गर्म हवा/छूटेगी मौसम की मनमानी', 'ताल ठोंककर दौड़े सूरज जब घाटी में', 'झउआ का हो फूल रेत में पानी-पानी को भी तरसा', 'शिशु की पहली गर्म साँस जैसी अगहन की धूप', 'हवा भी जब आलपिन बनती', 'धानी खेतों में नचना चिड़िया की आँखों का', 'लालिमा पहन घर की अब सूरज निकले' – ये कुछ चित्र हैं शान्ति सुमन के गीतों से जिनमें 'नरेतर बाह्य प्रकृति भी नर जीवन की सहभागिता में अपनी जनधर्मी भंगिमाओं की समूची सुषमा के साथ चित्रित हुई हैं।'

शान्ति सुमन के गीतों के रचना-संसार में रंग-बिरंगे रंगों की संरचना हुई है। लाल-पीले-नीले-हरे-कत्थई-गुलाबी-बैंगनी, फालसाई, गाजरी, पियाजी और उनके फ्यूजन से बने अजस्र रंगों का प्रसार है। मेरा मन कभी-कभी यह मानता है कि इतने रंगों का प्रयोग नवगीत और जनवादी गीतों में किसी रचनाकार ने नहीं किया है। कुछ गीत पंक्तियों को देखकर इसका अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि विस्तार में जाने से एक अलग आलेख की संगति ही बन सकती है।

'उजले-पीले कई-कई संदर्भ सलोने से', 'रंग हरे हो गये पीले बात में मितवा', 'बलुआही मिट्टी पहने केसर का बाग जला', 'बह चली है बैगनी नदियाँ/खोलकर कत्थई हवा के पाल', 'फूलते पीले पलाशों में', 'वासवी नदियाँ इंगुर की', 'केसर रंग रंगा मन मेरा/सुआपंखिया शाम है', 'उजले मन के कपास से रेशे', 'पीत कनेर हिले', 'धुआँये खपरैल', 'दूधिया दाँत ऐसे लगे', 'उजले धूप-गीत की वंशी', 'लाल ईंट सी पकाती है', 'धुआँ भरे सँवलाये कमरों के कोने', 'लाल फूल गेंदा के', 'लगा डाल छूते ही उड़ी लाल तितली', 'मूँगों की फलियाँ पहने गाये उजले-हरे खेत-वन', 'सोनराये पातों पर ठहरी भोर', 'उजले-काले हुए अँधेरे भागे आहट दाब', 'औंधे कजरौटे सा आसमान', 'जरद किनारीदार पहनकर साड़ी पूजाघर में, 'आतप में रक्तपलाश खिले', 'नीले जल के तालों पर सौ-सौ बारूद बिछाते', 'स्याह व्यवस्था को अपने मासूम खून से रंगता', 'प्यार बाँधकर उड़ती चिड़िया नीली पाँखों में', 'साँझ उदासी भरने लगती हरियाये नीम बबूलों में', 'धूप-छाँह रंग करे कितनी मनमानी', 'सोन-

चम्पई तितलियाँ', 'हरे-पीले पातों ने रचे सुख', 'जामुनी कुहरी हवा में झूलती झूले', 'फासलाई हुए उड़ते रेत के बगूले', 'आँख मलते धुँआये खपरैल', 'नीले-पीले दिन के साये', 'उजले मन के कपास से रेशे', 'ऊसर धरती पर स्याह सी लकीरें', 'मेघ से रूपहले', 'धूप आबनूस सी हुई', 'बैजनी कत्थई उदासी साथ बोलेगी', 'प्राण का अमलतास पीला', 'सावनी दुपहरी', 'गोरी-दुबली शाम', 'गाल पर उंगली रखे पीले-हरे दिन', 'बहुत काले मलिन बादल', 'रंगों का पुड़िया उड़ा हवा लाल हुई', 'एक हल्की गुलाबी मिठास', 'लाल स्याही ढरकती पूरे खेतों पर', 'कई सीपिया घुंघरवाली', 'आँचल में छपी लाल मछली', 'चिड़ियों की पाँख से हरे कनेरों से दिन', 'माथे लाल सिनूर फूल ये अड़हुल के', 'मिट्टी हुई मुलायम पीकर अपने श्वेत पसीने', 'आते फागुन पीले होंगे हाथ सयानी सी बहिना के', 'नारंगी था अभी मन सहजन सा हो गया', 'तीन बरस के बाद सिला कुरता एकरंगा', 'हाट खरीदी टह-टह लहठी', 'बलुआही मिट्टी पहने केसर का बाग जला'/'जलती सिन्दूरी मशाल', 'आँचल में हम फूल-गीत ईंगुर की लाली के', 'ऐसी छोटी बदरंग धरा', 'तेवरों में रंग लाल-पीले हैं', 'छन्द जोड़ती पाँखें सोनल', 'काले शोषण के खिलाफ आँखों में आग उतारें', 'धूपों की उजली चिड़िया', 'पहला दूध उगे जैसे धानों की बाली में', 'बैल के गले में भी लाल कौड़ी का होना निखार', 'बहनों की अंगिया मटमैली', 'साँझ लपेटे लाली अपनी छोटी मालकिन', 'काले धागों को लोगों से छिपा रही अपनी बाँहों में', 'पीले पालोंवाली नावें बातें करे नदी से', 'दूधिया कटोरे सी लगे वे आनेवाली सुबहें', 'उजली रोटी ने जैसे', 'हरी टहनी में लहरती ताजगी फूटी', 'काले धुएँ चिमनियों में', 'लाल ओहारों में सजती उसकी दुनिया सारी', 'पीली मिट्टी में शेष अभी', 'गेहुँआ तन लिपटते फसल की खुशबू से', 'पथराई काली पाटी के आखर से', 'देश का भूगोल लिखती बर्फ की उजली उंगलियाँ', 'हरा पान, पोखर-मखान', 'रंगी खुशी से आँखें', 'आँखों की परती से चम्पई अंकुर फूटे', 'हरी दूब की साँसे' और कई स्थानों पर तो रंग विरंगे शब्दों से भी अपना रंग-विन्यास किया है।

शान्ति सुमन के गीतों में चुनमुनी चिड़ियाओं की चर्चा भी अत्यंत बिम्बात्मक और सुखद है। विशेषकर छोटी बया का चित्र बहुत बार आया है। चिड़िया को लेकर झूलती हुई टहनी, कटे हुए खेतों में चिड़िया का आना, खोंता में चिड़ियों के झिन-झिन स्वर का बजना, हरी चिड़िया की उपस्थिति से मन की उदासी का कमना आदि विशेष उल्लेखनीय हैं – 'चिड़िया के पंखों पर जो सावन लिखता', 'नोंच-नोंच कर गिरा गई चिड़ियों की पाँखें', 'पंख अपने सुखाती है धूप में बैठी हुई/गा रही सुख से बया है/चैन से लेटी हुई, 'चिड़ियों से बातें करें/रात भर की रही थकी', 'आँखें खोल गोरैया

गुनती अपनी खुशहाली', 'फूटते गीत सुरीले कंठों में चिड़ियाओं के', 'रहना दिनभर गुमसुम पंख कटी चिड़िया सी' – आदि के साथ चील, बाज, सारस के बिम्ब भी कई बार आये हैं और एकाध बार कौवा का बिम्ब भी देखने को मिलता है –

'कभी छोटी चिड़िया भी बाज को मरोड़े', सारस का चित्र देती यह पंक्ति द्रष्टव्य है – 'उड़ते सारस की चोंचों में छटपट सी बेचैन मछलियाँ', तितली के बिम्ब भी अत्यंत सुंदर एवं सुखद आसंगों को व्यक्त करने वाले हैं 'हरे बाग-वन, ईख-ईख मन, धूप तितलियों जैसी।'

शान्ति सुमन के गीतों में पशुओं के चित्र बहुत कम आये हैं। व्यवस्था के जघन्य रूपों का चित्रण करते हुए उन्होंने कभी बाघ का चित्रण किया है, कभी बघनखा का संदर्भ भी दिया है, पर अन्य हिंस्र पशुओं के चित्रण से ये बची हैं। खूनी पंजों की बात करने पर भी इन्होंने सिंह, सियार, भालू या अन्य बनैले जानवरों का नाम नहीं लिया है परन्तु हिरन के बिम्ब कई बार आये हैं। इन्होंने गाय और बछड़ों के चित्र भी वात्सल्य और घरेलू लगाव के लिये खींचे हैं – 'गाय नहीं कहती अब वह मुनिया को', 'खूँटे पर रंभाती गायें/देखकर बछड़े दिन को' – जैसे चित्र अपने कथन के प्रमाण में रखती हूँ। अपनी घृणा, गुस्सा और विद्रोह को दिखाते हुए कुत्ता का एक बिम्ब भी अत्यंत सार्थक है – 'कुत्ते की पहरेदारी में हुए भात बेगाने।' शान्ति सुमन ने हिंस्र और कठोर संदर्भों को भी अपनी संवेदनाओं के रंग में रंगकर लयात्मक परिदृश्यों में बदल दिया है और कोमल परिदृश्य तो कोमल हैं ही –

'हिरनी जैसे जल में रखे पाँव गिन-गिन के' या
'छाँह में भी भागती हिरन की जोड़ी'

शान्ति सुमन के गीतों के संसार में उपमानों के चित्र भी खूब सजे हैं। उपमाओं और रूपकों की तो रंग-बिरंगी दुनिया ही सजी है। 'मरी हुई तितली के तन सा सागर-तट', 'सूती कुरते सी सूख जाती', 'शीशमहल सा कौंधे जलमयंक मेघना', 'पन्नियों सा उड़ गया दिन/राख सा मौसम', 'गाँठ बंधी हल्दी से रंग छूटे उम्मीद के', 'फसलें हस्ताक्षर की स्याही सी सूख गईं', 'सूख रहे धूपों के टुकड़े फटे अंगोछे से', 'लगती सब परिभाषा झूठी/कच्चे पीतल की अंगूठी', 'मीठी-मीठी बात सुई सी', 'नाव सी इच्छा नदी का साथ', 'मोम तिनकों सी नरम रातें', 'लगते हैं वे दिन चुम्बन के दाग से', 'कन्धे तक झुकी रात बेरोजगार माँ सी', 'लगते हैं दिन लम्बे से पुराने मुहावरे', 'कामगार के पाँव सा आकाश फटता खुरदुरा', 'दुख रही है अब नदी की देह', 'दिन थके कहार सा हुआ', 'टिनही थाली रखी आध टूक रोटी का स्वाद हो गया/चंद्रमा विवाद

हो गया', 'माँ की परछाईं सी लगती गोरी-दुबली शाम/पिता सरीखे दिन के माथे चूने लगता घाम', 'तुतली जिद पर गुस्से लगते काँच खिलौने के', 'मिट्टी के प्याले सी दरकी उमर हुई गुमनाम', 'कटे हुए पंखों से उड़ते मेघों के टुकड़े', 'टूट गई पायल सी लगतीं मेड़ों की सतरें', 'याद घर लगते उजले मखान से', 'सुबह रची माथे पर माँ के आशीषों सी/दुपहरी पिता की प्रतीक्षा में कासों सी', 'घटनायें दुखतीं जैसे कटी हुई हाथ की उंगलियाँ', 'बार-बार छूता वह धूप सा तुम्हारा मन', 'परछाईं सी छोटी सड़कें इस जलती दुपहर की', 'परछाईं टूटती', 'फेन-फूल से उठे', 'भूख हुई अजगरसी', 'अभी समय को खेतों में पौधों सा रोप रहा', 'बहते हुए पसीने को हम तमगों से पहने', 'सपने गड़ते से हाथों में जैसे तालमखाने', 'कच्चे घर से वर्षा में भी तने हुए जो हाथ यहाँ', 'रोप समय को पौधों सा', 'तेरी माँ धरती सी सपना बुनती खुशहाली का', 'खुशियों की ताबीज गले में बच्चों की मुस्कान सी', 'गीले कपड़ों सा फैला रहना छत पर', 'बैल बिन बेकार हल सी जिन्दगी', 'फसल जैसे आइना हो निरखते थे रूप', 'हाथों को मशीन-सा करके/बच्चों की हँसियों से भर के', 'मौसम हुआ कबीर', 'नदी घाट सूखते अंगोछे से', 'रोटियों सी सेंकती है/प्यार से फिर पलटती है', 'रख गई धुनकर रूई सा', 'मुस्कानों का एक अदद मौसम/सामने पलासों सा दहका', ''खेत में फसलों सा दिन-दिन पको', 'बहुत दिनों पर बेटी जैसी/घर आई हो खुशी भली सी', 'हँसी जैसे सूखते कपड़े छतों पर', 'नया दिन उगा भींगी आँख में/बच्चे की हँसी की तरह', 'सरसों की अँकुरी देहों पर गीत-बुनी दो मछली आँखें', 'कास के टूसे सी गड़ती सड़कों वाली धूल', 'मोर पंख सी खुली हवाएँ', 'सुलझाने लगे जूड़े सा मन', 'दोहे जैसी लगती सुबहें, रूबाई सी लिखी दुपहरी', 'तुम पूरी पृथ्वी हो माँ सपनों में रोज सुलगती', 'फूटते धानों सरीखे', 'बिरवे से हम सब तुलसी के/जलते ही जाते चौरों में', 'वर्षा में भींगी ज्यों नदिया', 'चिड़ियों की पाँख से हरे कनेरों से दिन', 'कभी-कभी बजते घर में घुँघरू से पोती-पोते', 'अपनी बेटी सी कोमल हरियाली किलकती खड़ी', 'दरवाजे पर साँकल माँ के आशीषों से भरी उंगलियाँ', 'पिता कि जैसे बाग-फूटती एक स्वप्न में सौ-सौ कलियाँ', 'झील सा ठहरा हुआ बचपन', 'हिलते हुए से ईख जैसे दिन', 'बेलपत्र पर चन्दन जैसे लगे अपूरब तुतली बानी', 'आशीषों में ढले अक्षत से अक्षर', 'एक बीज लाने गये काका पेड़ की तरह रहे अनगाये', 'काठ के बुरादे सी ढह गई', 'गीत की पहली पाँती जैसा यह अपनापन', 'शरद ऋतु का यह आकाश तुम्हारी आँखें सा सुन्दर है', 'रुकता नहीं प्यार-प्यार यह नदी-झील-परबत सा', 'गीतों में जलतरंग बजता है मिट्टी के घड़ों में जैसे पानी', 'आज पिता-गृह धन्य हुआ है/मंत्र-सदृश उचरो' 'भीतर-भीतर आग', 'कोड़े से बरसे दिन', 'ईख सी गाँठदार उंगली', 'जंग से लथपथ खुरपी सी

पसली', 'एक सूर्य रोटी पर औंधा चाँद नून-सा गला', 'डोल रहा मन तेज हवा में जैसे दूकानें टिन की', 'मगर भूख-रोटी में जैसे महायुद्ध घिर आये/ऊँघ रही आँखों पर गर्म सलाखें भिड़ जायें', 'पीतल की अंगूठी भी तो मानिक-लाल लगे', 'घर में झाँक गई जैसे पुरवाई लगती हो', 'धानों सी फूटी किलकारी', 'हरी टहनियों सी ये दसों दिशायें फैली सी', 'चित्र लिखे से गाछ और घर', 'यह कपास सी सुबह रात खादी कुरते सी', 'आंगन की तुलसी सी बढ़ती घर में बहन कुमारी', 'अलमुनियम के तसलों में पकते भातों सा उबले', 'सामने है हवा कितनी तेज/दिखती जैसे कठिन अंगरेज', 'दूबों से हम उगे हुए खेतों की कड़ी सतह से', 'फूटे कोंपल सी भोर', 'मन की अभिलाषा लगती कमजोर कलाई सी', 'ये खेत हमारे हाथ, मेड़ जैसे कि शिरायें हैं', 'बेटी सी सुन्दर हरियाली पकड़ उंगलियाँ चलती', 'साँझ गये धुओं के छल्ले आँत सरीखे हैं', 'ब्लैक बोर्ड सा टँगा पड़ा यह मेघ भरा आकाश', 'एक उदासी बुनी हुई है जैसे भाई हुआ लापता', 'झरने भी बन जाते पल में जैसे औढ़रदानी', 'साँझ लपेटे लाली अपनी छोटी मालकिन', 'नये सूर्य के स्वागत में फसलों से हम झुक लें', 'एक सूर्य रोटी पर' आदि उपमानों और रूपकों के विरल चित्र हैं।

'धूप रंगे दिन में शान्ति सुमन द्वारा लिखित उपमान रोचक तो हैं ही समाज और समय के अनुकूल भी हैं।' 'रूइयों के फाहे लगते सूरज झुकते तालों में', 'धूप तितलियों जैसी', 'सूरज का मुँह लगता काँच की तरह तीखा', 'मंद मुस्कानों सरीखी लगतीं हिलने हवायें', 'जब से देखा है माँ को आटेसी पिसती हुई', 'कट गये फसल से फिर खेत हम हुए', 'दीवारों के विरवों सी मजदूरी जब रोती', 'खर-पातों की ये पंचवटियाँ चित्र-लिखी सी खड़ी रहीं', 'ताबीजों से बँधे हुए सुन्दर सपने', 'सपनों की सुजनी ज्यों तागी/भूख और रोटी की सुलह हुई', 'मछलियों से फड़फड़ाते पंख पातों के', 'तहाती है ओढनी सी', 'रचनेवाले हाथ बन्द हैं भित्तिचित्र से घर के', 'गीत करघे बन गये हैं बुन रहे हैं यातनायें', 'हवा लौटकर घर आई होते ही अहले शाम/लेट गई टहनी पर जैसे माँ करती आराम', 'दुखती आमदनी के साये', 'धूप रुई सी उड़कर बोली', 'उड़ते सारस की चोंचों में छटपट सी बेचैन मछलियाँ', 'घर बुहारते गिरती पीली बिन्दिया सी', 'हवा मंजीरे सी बजती', 'आपस के सारे फैसले पातों की तरह सजग हुए', 'फेन सरीखा उफना जीवन', 'शिशु की पहली गर्म साँस जैसी अगहन की धूप', 'धरती नई चिड़ियों की हँसती आँखों सी-जैसे कितने ही उपमान हैं जिनको नहीं लिख पाने की बेचैनी हो रही है।

शान्ति सुमन के गीतों के संसार में गीतों को पृष्ठभूमि और संगति देते हुए उनके लय-सौन्दर्य से भरे शब्द-गठन, भाषा की अनुकूलता, श्रमिक वर्ग की स्त्रियों के पहनावे, गहने और सौन्दर्य के अन्य उपकरण

भी देखने योग्य हैं। कमी तो पसीने भी उनके लिए जेवर बन जाते हैं –

देह साँवली चकमक पहने बूँद पसीने की
या
देने को अपने हिस्से में रक्त जवा तो है

खाद-बीज के लिये पैसे जुटाने में जब उनके गहने बिकते हैं तो वे गहने सीथफूल या चन्द्रहार या कि मंगलसूत्र नहीं होते। वे होते हैं – हंसुली, बाजूबन्द आदि –

दुख कोई भी नहीं कि पहले/हँसली-बाँक बिके

शान्ति सुमन के बिम्ब-विन्यास हमें सौन्दर्य के जल से कितना भिंगोते हैं, इनके लिये इनके गीत संग्रहों की कुछ पंक्तियाँ देखना जरूरी है –

एक चिड़िया चोंच भर/लेकर उड़ी अनबन
भाभियों के खनकते हाथों हिले कंगन

यहाँ से गुजरतीं फ्राक पहन ऋतुयें/नावों पर शीशे चमकाती
शब्द भर न सो पाये जो आँखें/सूती कुरते सी सूख जाती
(परछाईं टूटती)

टूटे ऊपर छान/चान घर बीच उगे
चमके हल की नोंक/करज चिनगी सुलगे

घट्ठे पड़े हुए हाथों का प्यार बड़ा ही सच्चा
खोज रहा अपनी बस्ती में दूध नहाया बच्चा
बाप सरीखा उसको आता नहीं भूख को टालना
बेटा मेरा रोये, माँगे एक पूरा चन्द्रमा –

तेरी माँ धरती-सी सपना/बुनती खुशहाली का
बोझ उठाती है छाती पर/दुखती बदहाली का
अँतड़ी की ऐंठन में खोजें हम इस जीवन के माने
जब भी चमका करे तुम्हारे हाथों में हँसिया बेटे!

तुम अम्मा के घर की देहरी/बाबूजी की शान
तुम भाभी के जूड़े का पिन/भैया की मुस्कान
पोर-पोर आंगन के लाल महावर सी निखरो

चक्कियाँ चलाती अपनी माँएँ/आटा-आटा होकर रह गईं
जोड़ती रहीं कुछ उनकी आँखें/काठ के बुरादे सी ढह गईं
(भीतर-भीतर आग)

अभी हाट से लौटा/लकदक होकर सोनेलाल
गैंची-कतला के संग लाया/साड़ी टह-टह लाल
सेनुर में ही बंधी हुई लगती पूरी दुनिया

पटवन के पैसे होते/तो बिकती नहीं जमीन
और तकाजे मुखिया के/ले जाते सुख को छीन
पतले होते मेड़ों पर आँखें जाती हैं थम

दुबक गई चिड़िया/पत्तों की फटी रजाई में
कुहरे की सौगात मिली/इस बार कमाई में
जैसे वर्षा आई सूरज पल्ला झाड़ गया

गालों पर गेरू की लाली/लाली में खुशबू की जाली
घर में झाँक गई जैसे/पुरवाई लगती हो

अँकुरे रेह-रेह में बीहन/मन में खेत टँके
दुख कोई भी नहीं कि/पहले हँसली-बाँक बिके
सुनती नहीं हवा कछेर की/सचमुच बहरी है

(एक सूर्य रोटी पर)

खींच न पाता रिक्शा जब/सांसों पर ढोता ठेला
जब तक जिनगी है तब तक/ऐसा ही होगा मेला
गोइठा-करसी सुलगाता है/बड़ेलाल घर में

बाँह में आकाश होगा/कटे होंगे पंख
मछलियाँ जलहीन/तट पर बिछे होंगे शंख
पास में बहने न देगी/नदी या झरने

कल बाजार बन्द था/टिन में आटे नहीं पड़े
भूखे सो जायेंगे बच्चे/बाबा नहीं फिरे
दिन के पन्नों पर धीरे स्याही हुई जमा/
एक उदास हँसी हँसती रहती है माँ

शिशु की पहली गर्म साँस/जैसी अगहन की धूप
आती है तो किलकारी जैसी लगती है

(धूप रंगे दिन)

शान्ति सुमन के गीतों में आत्मीय, सामाजिक एवं मानवीय सम्बन्धों के कशीदे कढ़े हुए हैं। ये सम्बन्ध कहीं बहुत कोमल और कहीं बहुत

तल्ख हो गये हैं। माँ-पिता-भाई-बहन-पत्नी-पति-बेटे-बेटियों से लेकर मालिक और नौकर और फिर सामन्तों, जमींदारों से लेकर आम जनता तक के संबंध बुने गये हैं। परिवार और समाज के सुखों से ओत-प्रोत कर देने वाले विचार और संवेदनायें अद्‌भुत हैं। बाजार के रिश्ते-नाते भी बहुत कायदे से आये हैं –

'इमामी की महक से भरी हुई दुपहरी'
'पाँव काटते जूते जैसे ये सम्बन्ध लगें'

वस्तुतः शान्ति सुमन का रचना-संसार मानवीय सम्बन्धों की जरूरतों से भरा हुआ है और उनका लालित्य मन में सुगंध भर देता है, उनके शब्द प्यार से धुले हुए हैं –

'कभी-कभी बजते घर मे घुंघरू से पोती-पोते'
'माँ जैसी माँ की आँखें फूलों का दोना है'
'यह अनार ले जाओ भाभी/मुनुवाँ को देना
अपने काका की आँखों का/पानी सा रहना
लालपरी का छोटा घर-संसार नहीं दूँगा'
'अपनी बेटी सी कोमल हरियाली/सामने किलकती खड़ी'
'पिता कि जैसे बाग स्वप्न में खिल आती हैं/
सौ-सौ कलियाँ'
'तुम आये जैसे पेड़ों में पत्ते आये'
'बच्चे लिये हमारे फिरते/हैं लकड़ी की पाटी
तेरे लिये देश के कागज/लिखते हैं परिपाटी'
'जलती झोपड़ियों पर दिखे ठहाके लिये अमीर'

आदि इस तरह के अजस्र विचार और संवेदनाओं से शान्ति सुमन के गीत भरे हैं। तभी डॉ० शिव कुमार मिश्र ने लिखा है कि शान्ति सुमन के गीत 'मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत' हैं। जनगीतकार नचिकेता ने भी माना है कि 'शान्ति सुमन गीत-रचना के लिये जीवन-जगत की विस्तृत दुनिया से व्यापक अनुभवों का विपुल भण्डार एकत्र करती हैं। इसलिये उनका ग्रामीण परिवेश, प्रकृति-प्रेम, किसान-चेतना, लोक जीवन और लोक संस्कृति के तत्व उनके गीतों में घुल मिलकर मूल्य-चेतना की शक्ल धारण कर लेते हैं।' ये सब शान्ति सुमन के रचना-संसार की मौलिक विशेषतायें हैं।

अंत में डॉ० मैनेजर पांडेय के इस विचार से मैं अपनी बातों को सत्यापित करना चाहती हूँ जिसमें उन्होंने कहा है – 'शान्ति सुमन एक सजग और सचेत नारी की दृष्टि से समाज, जन-जीवन और उसके

यथार्थ को देखती हैं।' आगे वे कहते हैं – 'इन गीतों में क्रांतिकारी करूणा है, ऐसी करूणा जो शोषित-पीड़ित जन के लिए ममता बनती है और शोषक सत्ता के विरूद्ध आक्रामक प्रतिहिंसा।' कई बार जिन बातों को कहने की मैंने चेष्टा की है, डॉ० मैनेजर पांडेय उन बातों को कहकर मेरा हौसला बढ़ाते हैं – 'शान्ति सुमन के गीतों का महत्व उनके विशिष्ट रचाव में है। लगता है कि लोकगीत की आत्मा नई देह पा गई है या कि नई चेतना लोकगीत की काया में समा गई है।' और यह कहकर तो वे अजस्र लोगों के मन की बात कह देते हैं कि 'शान्ति सुमन प्रायः समाज की वास्तविकताओं और जीवन के अनुभवों के बारे में बयान या व्याख्यान नहीं देतीं, वे चित्रों और संकेतों में अपनी बात कहती हैं।' मैंने इस आलेख में इसी बात को कहने की चेष्टा की है।

●

कविता को समझने की एक अलग कोशिश

❑ नन्द कुमार

साहित्य मूलतः एक संवाद है। सार्थक, कलात्मक एवं सृजनात्मक संवाद ही साहित्य का सौन्दर्य-बोध होता है। यथार्थ जहां संवाद की भूमि है वहीं कल्पना उसका आकाश। प्रतीक या बिम्ब साहित्य के परिवेश हैं, जिससे साहित्य जगत का एक आभासीय संसार बनता है। कविता साहित्य की जिजीविषा है और गीत जिजीविषा का लयबद्ध राग। अस्तु, कविता एवं गीतों के अंतर को उसके वाह्यान्तर विकास के परिप्रेक्ष में समझा जाना ही उचित है। कविता के विकास का आकलन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि गीत कविता का उत्स है। गीत के जो दो प्रस्थान बिन्दु हैं वे लोकगीत एवं कविता हैं। ऐसी स्थिति में गीतों को कविता के अन्तर्गत या इतर जैसी चर्चा अर्थहीन ही होगी। विचार एक मानसिक प्रक्रिया है, जो यथार्थ की प्रतिक्रिया का व्यापक अनुशीलन है। गीत संवेदना एवं वेदना का समुच्चय है। अस्तु, भाव का प्राबल्य इसकी प्रकृति है तथा भाव का प्रभावी प्रवाह ही उसकी प्रवृत्ति। इससे यह अर्थ कदापि नहीं निकाला जा सकता कि गीतों में विचारों का स्पष्ट प्राबल्य नहीं होता, बल्कि संवेदना की भूमि से उत्पन्न विचारों में सामासिकता की एक अद्भुत ऊर्जा होती है जो विचारों की परिधि को तोड़ उसे व्यापक बना देती है। यही कारण है कि साहित्य की अन्य विधायें जहां मूलतः रचनाकार का संवाद है और उसे रचनाकार के परिपेक्ष में अनुशीलन करना होता है, वहीं कविता असीम होने के कारण पाठकों की चेतना में समाविष्ट हो चिन्तन की प्रक्रिया को विस्तृत आयाम देती है। यही कारण है कि गीत या कविता में रचनाकार के संवाद या रचनाकार की तलाश कोई अर्थ नहीं रखता। ऐसी परिस्थिति में कविता का कोई सुनिश्चित प्रतिमान नहीं होता और नहीं उसकी स्पष्ट सीमायें ही परिलक्षित होती हैं, जिससे कविता की समीक्षा स्वतः उन्मुक्त बन जाती है। कविता का परिवेश अपनी व्यापकता में अन्तर्द्वन्द्वों का एक ऐसा संवेदनात्मक संसार सृजित करता है, जहां उसकी सीमायें परिलक्षित हो ही नहीं सकतीं। पाठक अपनी संवेदना एवं चिन्तन से नये संदर्भ ढूँढ़ता है और उसमें आत्मलय हो स्वयं को ऊर्जा के उस रूप में परिवर्तित कर लेता है, जहां उसका व्यक्ति समष्टि बन जाता है। यही कारण है कि कविता या गीतों में कोई व्यक्तिगत संवेदना स्पष्ट नहीं होती बल्कि हमें उसका प्रकारान्तर स्वरूप सामाजिक परिवेश में प्रतीत होता है।

गीतों से मेरा व्यक्तिगत जुड़ाव रहा है तथा साठ के दशक से आजतक के गीतकारों की रचनाओं से सान्निध्य मेरी प्रवृत्ति रही है। लोकगीतों को मैं गीतों की समष्टि मानता हूँ। सामाजिक सरोकार ही गीतों में लोकजीवन का यथार्थ बनता है और ऐसी परिस्थिति में गीतों और लोकगीतों के माधुर्य एवं रस निष्पादन में मौलिक अन्तर नहीं रह जाता है। लोक की सीमा परिवेश की व्यापकता में कभी सीमित नहीं की जा सकती। स्वाभाविक है – गीत कभी परिसीमित नहीं होते।

एक बार पुनः मैं अपनी पूर्वकथित पंक्ति को उद्धृत करता हूँ – 'साहित्य की अन्य विधायें... मूलतः रचनाकार का संवाद है।' मेरे इस कथन का तात्पर्य यह है कि कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध या व्यंग्य के पठनोपरांत यह जिज्ञासा उमड़ती है कि रचनाकार का संवाद क्या है ? स्पष्टतः रचनाकार इन विधाओं पर पूरा प्रभावी होता है और अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट उजागर करता है। यही कारण है कि समीक्षक रचनाकारों को केन्द्रित कर उनकी रचनाओं की सार्थकता एवं असार्थकता पर अपने विचार सुनिश्चित कर पाते हैं, पर कविता या गीतों के संदर्भ में ऐसा होना संभव ही नहीं है क्योंकि रचनाकर यहां प्रभावी होता ही नहीं और न रचना से इतर कोई उसका अपना अस्तित्व शेष रहता है, संवेदना के रागात्मक बहाव में वह धारा की बूंद सा समाहित होता है, जिसका न तो प्रत्यक्षतः कोई प्रारूप दृष्टिगत है और न ही उसके अलगाव का कोई संकेत।

महाकवि निराला, महादेवी वर्मा, केदार नाथ अग्रवाल, नागार्जुन, जानकी वल्लभ शास्त्री, कुँवर नारायण, नचिकेता, उमाकान्त मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शान्ति सुमन, माहेश्वर तिवारी, रमेश रंजक, बुद्धिनाथ मिश्र, कांतिमोहन आदि की रचनाओं के अनुशीलन-क्रम में पाठकों को रचना में स्वयं समाहित होने का आनन्द प्राप्त होता है। तभी तो उन सारे रचनाकारों की संवेदना को पाठकों ने अपनी संवेदना स्वीकारा है।

डॉ० शान्ति सुमन ऐसी गीतकार हैं, जिनके अधिकतर गीत मेरे अन्तरंग हैं। गीतकारों की प्रवृत्तियों को, विविधता को या उनके वैशिष्ट्य–अंतर को जानने की जिज्ञासा ने मुझे बरबस यह स्वीकार करने पर विवश किया है कि **डॉ० शान्ति सुमन के गीतों में एक विलक्षण वैशिष्ट्य है। मुझे जो सबसे आश्चर्यजनक सुखद स्थिति लगी वह यह कि डॉ० शान्ति सुमन के सारे गीत एक दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध हैं तथा जीवन की व्यापकता की कथा-यात्रा हैं।**

तात्पर्य यह कि उनका कोई भी गीत या तो उनके पूर्ववर्ती गीतों का अगला

प्रस्थान है या आनेवाले गीतों का प्रस्थान बिन्दु। डॉ० शांति सुमन के गीतों को अलग-अलग कर समझना या व्याख्या करना मेरी समझ में एक निरर्थक प्रयास है। मैंने इसी संदर्भ में उनके गीतों को समझने की अलग कोशिश की है। मेरे लिए उनके गीतों के समूह को एक साथ समझना ज्यादा सहज तथ्यपरक और न्यायसंगत लगता है।

लोकगीतों की धड़कनों से गीतों को प्राणतत्व देने के पीछे डॉ० शांति सुमन का अभिप्राय क्या है ? क्यों उनके गीतों में इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति एवं अर्थशास्त्र अपनी व्यापकता में शामिल हैं ? गीतों में इतना संभव होना क्या विलक्षणता नहीं है ? या यह सब एक प्रभाजाल में पाठकों को विस्मित या सम्मोहित करने का प्रयास तो नहीं ? कई अन्य प्रश्न भी डॉ० शान्ति सुमन के गीतों से उमड़ते हैं जो जीवन की दार्शनिकता के सत्य या छद्म को पाठक तक विवेचना हेतु लाते हैं। क्या यह सब सुनियोजित है या मन्दाकिनी की धारा का अविराम प्रवाह।

डॉ० शान्ति सुमन के अधिकांश गीत-संग्रह मेरी स्मृतियों में संयोजित हैं, जो मुझे विवश करते हैं कि मैं उनके गीतों से उमड़ते प्रश्नों की गहराईयों के तल की तलाश करूँ।

पहले मैं उनके (शान्ति सुमन) गीतों के कथ्य की पड़ताल करूँ। उनके कथ्य इतिहास कथा की तरह पीढ़ियों की व्यथा से संवेदित हैं। उनकी व्यथा निजी नहीं, वरन आंचलिक पीड़ा है। मिथिला के ग्रामीण जीवन की विशेषकर कोशी की सात धाराओं के इर्द-गिर्द बिखरी हुई पीड़ा। उनके गीतों में मिथिला के लोकगीतों की धुनें एक ऐसी पहचान है, जिससे मेरे विचारों की पुष्टि होती है। साथ ही मखान, नारियल, गन्ना, केला, पोखर, मछली आदि या उसके गढ़े हुए विम्ब निश्चय ही गीतों की आंचलिकता का उपाख्यान बनते हैं। कथरी, सुजनी, जैसे उपादान उनके गीतों के काल की आर्थिक पहचान हैं, वहीं रोटी के लिए संघर्ष और विस्थापन इतिहास तथा समाजशास्त्र के यात्राक्रम हैं। जमींदार, सूदखोर से चलकर नेताओं के भ्रष्टाचार तक की चर्चा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से शुरू होकर आज तक के काल को सजीव करते हैं। स्पष्टतः उनके गीतों को मिथिलांचल के लगभग 70 वर्षों का सजीव चित्र कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में डॉ० शान्ति सुमन के गीतों की सार्थकता पर बहस नहीं हो सकती। बहस 70 वर्षों के मिथिलांचल के इतिहास पर केन्द्रित होती है और ऐसी स्थिति में संवेदना, तर्क, चिन्तन या विचार के किसी भी केन्द्र में गीतकार स्वयं नहीं वरन् मिथिलांचल का संपूर्ण परिवेश बनता है। ऐसे में यह पूरा जोखिम भरा कार्य हो जाता है कि उनके गीतों पर कोई

निर्णायक विचार किया जाए बल्कि इसके साथ पूरी राष्ट्रीय चिन्ता का जुड़ाव होता है और यह मिथिलांचल पूर्ण ग्रामीण भारत का बिम्ब बन जाता है। निश्चय ही ऐसी स्थिति राष्ट्रीय चिन्ता के विभिन्न परिदृश्यों को सार्थक संवाद के लिए उकसाती है, **प्रकारान्तर से हम कह सकते हैं कि डॉ० शान्तिसुमन के गीतों के आधार पर आधुनिक भारत का जीवन बहस का विषय स्वतः ही बन जाता है –**

पहली बार ट्रेन में बैठी
पहली बार शहर आई
कोशी के कछेर का अपना
घर आंखों में भर लाई
खोज रही है खपरैलों पर
पसर रही लौकी की लतरें
गिरने को दीवार, मगर हैं
थाम रही छानों की सतरें

इस परिदृश्य में प्रवेश करने पर जो स्थितियाँ स्पष्ट होती हैं वह मुख्यतः अपने दो रूपों में उजागर हैं। कोशी के कछेर में बसा गांव, जहाँ खपरैलों पर लौकी की लतरें हैं। वे दीवारें जो गिरने को है जिन्हें छानों की सतरें थाम रही हैं। दूसरा कि अब ट्रेनें चलने लगी हैं और उस लड़की ने पहली बार ट्रेन यात्रा की है।

निस्संदेह यह आज से पचास-साठ वर्ष पहले के मिथिलांचल का चित्र है, जहां जीवन विपन्न है, बेरोजगारी है और जीविका की तलाश व्याप्त है –

आंचल में बांधकर ईमान
हाथ से पांवों तलक फरमान
रोटी के लिए छूटा गेह
फूल पांखी देह

'हाथ से पांवों तलक फरमान' तथा 'रोटी के लिए छूटा गेह, फूल पांखी देह' ऐसी विवशता को उजागर करते हैं जहां सामन्ती सरकार की फरमानें हैं और शेष मात्र रोटी की तलाश में पलायन का विकल्प।

कोशी का अंचल बाढ़ प्रताड़ना से सैकड़ों वर्षों से पीड़ित रहा है। वहां के जन जीवन में लगातार अस्थिरता रही है। कोशी के कटाव में निगले गए गांवों की जगह लगातार नये गांव उगते रहे हैं और लगातार जारी रहा है मानवीय संघर्ष – टिके रहने की, स्थिर होने की, सलीके से जीने की ललक लिए –

आंसुओं से घुलते कुछ सपने
ये तो हैं महज तेरे अपने

शताब्दियों तक सपने ही जिनके जीवन के विकल्प हैं, उसमें आशा की ललायी सुरजमूखी का सौंदर्य विलक्षण आकर्षण है। मिथिलांचल का जीवन शताब्दियों से सामान्य नहीं रहा। कोशी की लगातार विभीषिका जन-जीवन को पूरी तरह तार-तार करती रही है, फिर भी किसी स्थायी विकल्प की कोई सार्थक चिन्ता कभी नहीं की गयी –

यह सदी रोने न देगी, सच कहा तुमने
हंसी होगी शाप, पथरा जायेंगी आंखें
होंठ होंगे काठ, कटने लगेंगी शाखें
सच कभी होने न देगी, धूप के सपने
बांह में आकाश होगा
कटे होंगे पंख
मछलियां जलहीन
तट पर बिछे होंगे शंख.....
.....थके होंगे शब्द
ढोते अर्थ दुहरे.....
एक ओर सूखा है, बाढ़ है, अकाल है
एक ओर हम हैं
उतनी क्या मारेंगी बाढ़ चढ़ी नदियाँ
मार चुकी जितनी यह चांदी की दुनिया.....

ये सारे दृश्य, उस परिवेश को चित्रित करते हैं, जहां जीवन को जीवित रखने की अदम्य कोशिश है, एक ओर प्रकृति की मार, दूसरी ओर शोषण-उत्पीड़न का लगातार प्रहार। यह सब एक ऐसे समाज का चित्र है जहां मनुष्य वस्तु की तरह तराजू पर टंगा है। व्यथा की यह कथा शोषित, दलितों का अक्षय यथार्थ है, जिसके समाप्त होने का कोई भी संकेत कहीं नहीं दिखता –

सहा श्रम ने बहुत महाजनों के वार
फूल की खुशबू भी बनाती औजार.....
दीवारों के विरवों सी मजदूरी जब रोती
रेतों की छत पर करते हम सपनों की खेती
कभी असम, पंजाब कभी हम, हुए यही जिए.....
.....कट गए फसल से, फिर खेत हम हुए –
.....फटी हुई गुदड़ी सीते हैं
जिया हुआ जीवन जीते हैं – .....

.....घर में तेल नहीं ढिबरी में
अंधियारों की ऐसी बरसा – .....

डॉ० शांति सुमन के गीतों के आधार पर मिथिलांचल का जो परिवेश उभरता है उसका प्रारंभ ग्रामीण क्षेत्रों पर, जन-जीवन पर केन्द्रित होता है, वह पारम्परिक जीवन जहां कथरी ओढ़ ताल मखाने चुनती युवतियां हैं, बीड़ी फूंकते ग्रामीण किसान या मजदूर हैं या फिर मछलियों के व्यवसाय पर जीवित जातियाँ। आदिवासियों एवं दलितों का मजदूर समुदाय है, जो श्रम पर जीवित है। ग्रामीण जीवन को आधार देती अन्न, फलों या सब्जियों की खेतियाँ और उनसे जुड़ा जन समुदाय जिसके तन पर न तो पूर्ण वस्त्र है और न ही भूख मिटाने के लिए यथेष्ठ अन्न। झोपड़ियों में बसा जीवन सीमित आकांक्षाओं को लेकर किसी प्रकार जीवन ढोता हुआ सपनों का ताना-बाना बुन रहा है। इतिहास का यह पृष्ठ मिथिलांचल के लगभग आज तक कमोवेश ग्रामीण क्षेत्र में उसी तरह से है जैसा वह बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में था। यदि उसमें बाजार की पहुंच हुई तो बस इस तरह कि अन्न, सब्जियाँ, फल या मछलियाँ बिचौलियों के द्वारा शहर जाने लगीं और इन व्यवसायों में लगे लोग मजदूरों में परिवर्तित होने लगे। गांव में कुछ पक्के घर भी बनने लगे तथा साहुकारों के वर्ग ने प्रवेश कर सूदखोरी का बाजार भी विकसित किया, जिसने किसानों को मजदूर में तब्दील करने की भूमिका निभाई। भूमिहीनों को पट्टे पर बंजर जमीन दी गयी –

सफर बड़ा यह लम्बा है
इतिहास बड़ा संगीन
भूमिहीनों को पट्टे पर
है बंजर मिली जमीन – .....
.....जब से देखा है मां को
आँटे सी पिसती हुई
बहन कभी तितली सी थी
अब चुभती हुई सुई –
.....गांव भर खेत लिखे हुए जमींदार के –
.....सूखा सा कुंआ और चूती यह छानी –
.....पोखर नहीं जानता
कोमल भाषा पुरइन की
पासी तो धुन निचोड़
लेता खजूर के मन की –
जीने की बारह खड़ी
न अब तक हम पढ़ पाये

इन पंक्तियों में विवशता एवं वेदना परिलक्षित है। लगता है इतिहास को अपनी आंखों में समेटे समय का पग बढ़ता चला जा रहा है, धरती के पृष्ठों पर लिखता हुआ रोज एक नूतन कथा –

'जब से देखा है मां को आँटे सी पिसती हुई'

निस्संदेह वह क्रूर कथा है जिसमें जीवन घुन की तरह पिस रहा है अनवरत बिना किसी अवरोध के –

सियासत की यह कथा है
घुल नहीं पाती व्यथा है
बीच जल में नाक के नथ हों गिरे

नाक के नथ का गिरना बिम्ब का वह विस्मयकारी प्रयोग है जिसमें जीवन की गहरी निराशा एवं निस्सारता प्रकट होती है, साथ ही प्रश्न पैदा करती है कि आखिर जीवन क्यों ?

काट कर हरी टहनी बहुत खुश हैं
नहीं जानें क्यों उगे काँटे कि कुश हैं

डॉ० शान्ति सुमन ने मिथिलांचल में हुए विकास को भी अपने गीतों में समेटा है। लघु उद्योगों के विकास एवं गांव में पाठशालाओं के खुलने जैसी घटना ने जन-जीवन को कितना आलोड़ित किया तथा उनके त्रस्त, भयग्रस्त जीवन में जो नयी उम्मीदों की कोपलें फूटीं वे अत्यंत उत्साहवर्द्धी तथा उम्मीदों से युक्त थीं –

मुनिया के घर का सूरज भी
अब पढ़ने-लिखने लगा
मुनिया की मां का माथा
आगे बढ़ दिखने लगा.....
मुनिया का मन अब
हाथों की रेखा पढ़ने लगा

शिक्षा के प्रसार ने अंचल में जहां बुझी आंखों में सपने जगाये, वहीं शहरों में लघु उद्योगों के विकास ने भी संभावनाएँ पैदा कीं। डॉ० सुमन के गीतों में औद्योगिक मजदूर, उनके शोषण से उत्पन्न तनाव, जुलूस, नारे आदि के स्वाभाविक दृश्य समाहित हैं। प्रतिपल बदलते परिदृश्य एवं परिवर्तनों की भी बिम्बों में अभिव्यक्ति है। उद्योगों से जगी आशाएँ कालान्तर में किस तरह शोषण का औजार बनीं वह भी स्पष्ट है। ये सारे बदलाव आमजनों के हित में कितने थे या उनका लाभ किसे मिल रहा था यह भी इन गीतों से अछूता नहीं रहा है –

टहनी किधर झुकेंगी
खिंची रेख दुविधा की.....
खेत ही बनकर रहे हैं हम
वे हुए खलिहान.....
अपने होने की हैं
पीड़ाएँ अभिधा की.....
भात न देखे जात.....
तब सपने थे सुख के
केवल निमिष बदलते
अब रेतीली रात.....

रोशनी की तलाश में घुप्प अंधेरे सी होती हुई जिन्दगी का क्रमबद्ध संकलन इन गीतों में है। ऐसा नहीं कि शोषितों को अपने हालात का पता नहीं, वे जानते हैं कि उनकी यह दशा कैसे हुई ?

मार सके नहीं हमें जब
भूख और अकाल
कागज की खेतियों से कर गये कंगाल –
सही हमने बर्छियों की धार
अपने सहज सीने पर
काटकर सर ले गए
जो थे कभी रहवर

सियासत के चक्रव्यूह में फंसे इन पीड़ितों को नेतृत्व के प्रति कितनी घोर निराशा थी, उसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है –

चलो कहीं जा कीमत बूझें
हंसी और नींद हम खरीदें –
सूखे और बाढ़ में गयी
नदियों की मछलियाँ खोजें –
पहली ओसौनी के बाद ही
हाथों के रंग धुल गए
बचपन होता न अब इस देश में
होश नहीं औ कंधे झुक गए

बाल श्रम की तात्कालिक स्थितियाँ आज भी विद्यमान हैं। इनके जीवन में परिवर्तन की कहीं भी संभावना नहीं दीखती। नकारा प्रयत्न भ्रष्टाचार को एक नयी जिन्दगी दे रहा है।

रोजी रोटी की तलाश में गांव से शहर आये लोगों के उल्लास को शीघ्र ही गहरा सदमा लगा, जब उन्हें एहसास हुआ कि वे एक नये जाल में घिर गए हैं –

गांव से थे शहर तक
ये आग के झोंके,
बेघरों के पांव तक
उठते गए फोंके

जीवन संघर्ष की इस प्रक्रिया ने जहां उन्हें निराश किया वहीं उनमें व्यवस्था के प्रति घृणा और आक्रोश को भी पैदा किया जो सहज और स्वाभाविक था –

तीन सेर मडुवे पर
दिन भर खटकर आई मां
गाँवों के सीवान लांघ
संसद में हुए जमा –
हमें ने समझो कादो कीचड़
कचरे नाली के
पांच साल पर कटे अंगूठे –
हम बदहाली के

विवशताएँ आक्रोश पैदा करती हैं, संघर्ष का नाद होता है, एक नयी संभावना में मृत्यु को वरण करने की आकांक्षा पैदा होती है। मिथिलांचल में भी ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुईं। ऐसा नहीं कि वहां का जनजीवन आलोड़ित नहीं हुआ या उसमें लहरें नहीं उठीं। वहां भी संघर्ष के स्वर उमड़े। जन-संघर्ष के विरुद्ध सत्ता का क्रूर व्यवहार आज भी उन क्षेत्रों में अनवरत जारी है। आज भी संगठित होने का आह्वान है, एकता की पुकार है। शोषण के विरूद्ध आग आज भी सुलग रही है –

नहीं चाहिए आधी रोटी और न जूठा भात.....
हम गरीब मजदूर भले
हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नई बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे
कच्चे गीतों से अच्छा है
नारा एक लिखो
बंधे हुए द्वीपों से बेहतर
धारा एक दिखो.....

अंचल में विकसित होती जन चेतना पर भी शान्ति जी ने अपनी

नजर रखी है। उन्होंने उमड़ते जन-संगठनों के द्वारा जन चेतना के विकास को भी अपने गीतों में स्थान दिया है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक विद्रूपता पर भी गहरा आक्रोश व्यक्त किया है –

इस अकाल में बच्चे रोते
मुंह में कौर नहीं –
जड़ पत्थर से खड़े शहर के
दोनों ओर मकान
यहां घरों के नाम खुली है
आदमखोर दुकान.....
सदी यहां तक फेंक गयी है
हमको दिखा बताशे
उनके हाथों ढोल कभी तो
बन जाते हैं तासे.....
लेकर लाल मशाल खेत
खलिहानों में जायें
शेष समर की कथा लाल
पोस्टर पर चिपकाएँ.....
साथी रे, चमकी है हँसिये की धार

डॉ० शान्ति सुमन के गीतों का फलक इतना व्यापक एवं मानवीय है कि उसमें व्यक्त दैन्य बिहार की सीमा से आगे पूरे देश के दैन्य को उजागर करता है।

मिथिलांचल की गरीबी, बेरोजगारी संघर्षों के बाद भी नहीं मिटती। दोगले नेतृत्व से संघर्ष में विफलता आती है और फिर वही निराशा, चतुर्दिक प्रेत सी फैली हुई दीखती है। जिस संघर्ष के लिए मजदूरों ने जेल में जीवन बिताये, उन्हें अपराधियों की सांज्ञा से विभूषित किया गया। बहुतों ने अपनी जिंदगी की अंतिम सांसें जेल में लीं। **मिथिलांचल में नक्सलवादियों के फैलाव पर उनकी दृष्टि है। डॉ० शान्तिसुमन अंचल के युवकों द्वारा पंजाब, महाराष्ट्र या दिल्ली पलायन को नजरअंदाज नहीं कर पातीं और उस पलायन के पीछे मिथिलांचल की दुर्दशा का भी मार्मिक उल्लेख करती हैं।**

डॉ० शांति सुमन के गीतों का प्रसार इतना विस्तृत एवं संवेदनशील है कि उसमें व्यक्त वेदना पाठकों की अन्तर्वेदना बन जाती है। सम्पूर्ण मिथिलांचल उनके गीतों में समाहित है।

डॉ० शांति सुमन के सारे गीतों के परिवेश को उद्धृत करना मेरा प्रेय नहीं।

मेरा आग्रह है कि शांति सुमन जी के गीतों के क्रमिक विकास क्रम में उन गीतों की अन्तर्कथा की व्यापकता का अनुशीलन किया जाये –

यह भी हुआ भला
कथरी ओढ़े ताल मखाने
चुनती शकुन्तला

एक ऐसा परिदृश्य है जहां से प्रारंभ गीत यात्रा अपने उस पड़ाव तक कथा को पहुंचा जाती है, जहां प्रश्न है –

'थाली उतनी की उतनी ही छोटी हो गयी रोटी'

यह एक ऐसा जीवंत प्रश्न है जिसके घेरे में संपूर्ण व्यवस्था और जनतंत्र है।

उपन्यास एवं लम्बी कथाओं में विभिन्न अंचलों की गाथा आई है। **'मैला आंचल' एवं 'परती परिकथा' में रेणु जी ने मिथिलांचल की गाथा रखी है, परन्तु शान्ति सुमन जी के गीतों में मिथिलांचल का जो वर्षों का इतिहास, जीवन, उसकी सामाजिकता, संघर्ष एवं विफलता का चित्रण प्रस्तुत किया गया है यह उनका काव्य-सृजन-सामर्थ्य है जो अत्यंत दुर्लभ है। उन्होंने गीतों को व्यक्ति की परिधि से निकाल विराट फलक दिया है जहां गीत अपनी संवेदना में पूरे परिवेश को समाहित कर लेता है। उनके गीत समष्टि के सांस्कृतिक स्वर हैं।**

कविता को समझने की मेरी यही अलग कोशिश मुझे विवश करती है कि मैं कविता के हृदय में प्रवेश कर उसकी विकलता को महसूस करूँ तथा उस संवाद को जो बिम्बों में व्यक्त है उसे सामान्य रूप से अन्य पाठकों में सहभाग करूँ।

डॉ० शान्ति सुमन ने गीतों की संरचना का जो नया प्रारूप दिया है उस पर समीक्षक उन गीतों को नवगीत, जनगीत, प्रगतिशील गीतों की श्रेणियों में रख उसका उनके मानकों पर विश्लेषण करेंगे। मैं मात्र उन्हें गीतों की श्रेणी में न रख गीत-कथा-शृंखला में रख देखने का आग्रही हूँ। **डॉ० शांति सुमन के बिम्ब एवं प्रतीक हमें ग्रामीण जीवन के दृश्य लगते हैं। उनके बिम्बों से उमड़ती कथाओं के संकलन ने ही मुझे विवश किया कि मैं उनके गीतों को इतर समझूँ।** यही कारण है कि मुझमें प्रतिमानों के आधार पर डॉ० शांति सुमन की कविताओं को परखने की कोई जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हुई। ग्रामीण अंचलों के प्राकृतिक बिम्बों ने गीतों को जीवन्त रखा है। बिम्ब स्वयं कहानियाँ गढ़ते हैं और उन कहानियों के परिवेश भी बिम्ब स्वयं बुनते हैं। यह एक अन्यतम शिल्प है, जिसमें बिम्ब अपने में रचनाकार को समाहित कर उसकी ऊर्जा को संसार देता है।

स्वाभाविक था कि शान्ति जी गीतों के लिए लोकधुनों का चयन करतीं। **चूंकि सारे गीत कथ्यों के संवेदनात्मक उद्‌गार थे इसलिए लय, राग और माधुर्य का विलक्षण संयोग तो आवश्यक था ही, किन्तु, यह इतना स्वाभाविक एवं संवेदनात्मक होगा, यही अप्रत्याशित था।** सैकड़ों गीतों को माधुर्य की एकरसता में पकाना इतना आसान नहीं होता। सारे बिम्ब भी प्रायः प्रभावी नहीं होते और वहीं रचना अधपकी सी महसूस होती है। डॉ० शांति सुमन के गीतों में संवेदना, माधुर्य एवं लोकधुनों की गूंज है। बिम्बों के द्वारा ग्रामीण जीवन के सारे दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। बिम्ब इतने प्रभावी हैं कि वे धुंध उत्पन्न नहीं करते, बल्कि एक नयी आभा का निखार भी देते हैं। मेरा आग्रह है कि शान्ति सुमन जी के गीतों को मिथिला की आंचलिक दृष्टि से समझा जाए और गीतकार को गीत से अलग कर उसमें स्वयं डूबा जाये।

●

शान्ति सुमन का गीत-सौन्दर्य

❑ डॉ० सुप्रिया मिश्र

शान्ति सुमन ने अपने लेखन से यही सिद्ध किया है कि रचना-कर्म एक सुसांस्कृतिक प्रक्रिया है। अपनी इस प्रक्रिया में वे कहीं रुकी नहीं हैं, अविरत गति से रचना-रत रही हैं। ये अपने समय के शिखर गीतकारों में एक हैं। यह उनके लेखन ही नहीं उनके व्यक्तित्व का भी अद्‌भुत गुण है कि उन्होंने अपने गीतों के लिए प्रचार-कार्य नहीं किया, कोई ग्रुप नहीं बनाया, जोड़-तोड़ नहीं किया, अपने लोगों की अलग से फौज नहीं बनाई। लेखन में लाभ के लिए किसी भी प्रकार की राजनीति से इनका कोई संबंध नहीं रहा। हाँ, विचारों में इनकी प्रतिबद्धता अवश्य रही। ये प्रारम्भ से ही जनता के सुख-दुख, जीवन-संघर्ष से जुड़ी रचनाकार हैं। '80 के दशक में वामपंथ की एक संस्था से इनका जुड़ाव रहा। तब के दिनों में महेश्वर और नचिकेता की सम्पृक्ति में यह जुड़ाव काफी सशक्त था, पर कई कारण थे कि कुछ वर्षों के बाद ये उससे अलग हो गईं।

शान्ति सुमन के गीतों की सौन्दर्य-चेतना पर लिखने के पूर्व उपर्युक्त बातें लिखना इसलिए प्रासंगिक लगा कि जैसे कोई पौधा परिवेश की किसी ऊर्जा से जीवनी-शक्ति लेकर उगे और मौसम की धूप-वर्षा में बढ़ता जाए, वैसे ही शान्ति सुमन की रचनात्मकता आगे बढ़ती रही है। इसके पीछे किसी आयास की कल्पना तक नहीं की जा सकती। असुविधाजनक यथार्थ में जीने के कारण इनकी रचनाओं को दूर-दूर तक जाने में समय लगा, पर जब रचनाओं के फैलने का धरातल बढ़ता गया तब लोगों ने – पाठकों और समीक्षकों ने भी स्त्री गीतकार के रूप में – नवगीत और जनगीत के क्षेत्र में केवल इनको ही जाना।

शान्ति सुमन के गीतों का विकास-क्रम देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि ये पहले नवगीत लिखती थीं। 'ओ प्रतीक्षित' (1970) और 'परछाईं टूटती' (1978) इनके दो नवगीत-संग्रह हैं। जैसा कि सच है कि नक्सलवाड़ी आंदोलन ने उस समय गीतकारों को बहुत प्रभावित किया था। समाज के साथ गीतों का परिवेश भी आन्दोलनात्मक हो उठा था। कई गीतकार उसके प्रभाव में अपनी रचना प्रक्रिया को नया रूप दे रहे थे। उनकी रचनात्मकता में बदलाव के आसार दृष्टिगत होने लगे थे। शान्ति सुमन भी इसके प्रभाव में आई थीं। इनकी रचना-प्रक्रिया भी तेजी से बदली। सामाजिक सरोकार तो पहले से ही इनके गीतों में थे, अब शोषित-पीड़ित-प्रताड़ित जनता, पूरा का पूरा भूखा-नंगा किसान-मजदूर वर्ग इनकी रचना में उपजीव्य बन गये। इसलिये शान्ति सुमन के गीतों का सौन्दर्यलोक भी बदलाव का साक्षी रहा। नवगीत में इनका सौन्दर्य कोमल-प्रतनु है, उसमें मध्यवर्गीय जीवन के रंग भी भरे हैं, संवेदना-दृष्टि के कारण मध्यवर्गीय

संघर्ष से उपजे सौन्दर्य भी हैं जो कहीं बहुत ललित और काम्य तथा कहीं बहुत खुरदुरे हैं। जीवन में जैसे-जैसे संघर्ष तेज हुआ है, सौन्दर्य मुरझायाऔर बहुत मुलायम नहीं रह गया है। दफ्तर की भाग-दौड़ वाली जिन्दगी में कमीज की जेब में कई दिनों तक गमकता हुआ रूमाल पड़ा रह जाता है, पर जिसको देना है वह कभी सामने से गुजर भी जाये तो देना याद नहीं रहता। कुछ इस तरह के छटपटाये, बेचैन करते सौन्दर्य के बेलबूटे शान्ति सुमन के गीतों में काढ़े गये हैं। आर्थिक अभाव, जिम्मेदारी के बोझ के नीचे लगातार कम हुए जाते सम्बन्धों की कातरता वाले सौन्दर्य-चित्र शान्ति सुमन के गीतों में अपनी नयी पहचान लिये हुए हैं।

शान्ति सुमन के जनवादी गीतों में सौन्दर्य की वही जमीन नहीं है जो नवगीत में है। क्योंकि यहाँ का जीवन बदला हुआ है, यहाँ के संघर्ष बदले हुए हैं, अनुभवों का संसार बदला हुआ है, पात्र बदले हुए हैं, इसलिये इनके जनवादी गीतों के सौन्दर्य अपने कथ्य के अनुरूप ही आकार धरकर आये हैं। ये रचे गये या गढ़े गये नहीं हैं, ये इतने सहज, अकृत्रिम, आत्मीय तथा सामाजिक हैं कि इस बात को मान लेने का मन करता है कि इन सौन्दर्यों की रचना शान्ति सुमन ही कर सकती हैं जिनका लगाव गाँव से रहा हो, गाँव की जिन्दगी में जो रची-बसी हों और गाँव की मिट्टी, पूरी प्रकृति और संघर्ष तथा उसकी जीवन-प्रक्रिया से एकमेक हों।

शान्ति सुमन का जन्म गाँव में हुआ। उनका पूरा बचपन गाँव में बीता। गाँव में जिया गया एक-एक पल इनकी साँसों में भरा है। इनकी आँखों में अभी भी गाँव की फसलों की हरियाली, धान, मूँग-मकई की बाली में भरते दूध से लेकर उनके कटने तक के उल्लास और इसके साथ ही किसानों-बटाईदारों की तकलीफ, उनके शोषण और संघर्ष, मजदूरों के विपन्न जीवन और निर्धन अंधकार सब शान्ति सुमन की आत्मा में घर बनाए हुए हैं।

शान्ति सुमन के गीत बहुत दूर तक जाने वाले गीत इसलिए हैं कि उनके गीतों में गुँथे हुए संदर्भों, स्थितियों, परिदृश्यों के छोटे-छोटे तिनकों में भी बड़े-बड़े अर्थ भरे हुए हैं। इनके गीतों की धरती बड़ी है और आसमान तो नापने में नहीं आता। शान्ति सुमन ने गीतों को लिखा ही नहीं, उनको जिया भी है। शान्ति सुमन ने नवगीत से जनगीत तक की एक लम्बी दूरी तय की है। इस दूरी को तय करने में इन्होंने कहीं ठहराव का सहारा नहीं लिया।

एक जो बड़ी सच्चाई है वह यह कि शान्ति सुमन ने अपने गीतों में एक नया सौन्दर्य-लोक रचा है। 'पंख-पंख आसमान' की भूमिका में नचिकेता ने माना है कि इन्होंने ''नवगीत से जनगीत तक की एक लम्बी दूरी तय करते हुए हिन्दी

गीत रचना का एक नया सौन्दर्य शास्त्र'' गढ़ा है। शान्ति सुमन के पहले नवगीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' में बुने हुए सौन्दर्य अत्यंत अकलुष और सहज हैं। मध्यवर्गीय दिशाहीनता, ऊब और घुटन को लिखती हुई शान्ति सुमन की दृष्टि में केवल गाँव की यथास्थिति ही नहीं है, शहर की यांत्रिक संवेदनहीनता, प्रदर्शनप्रियता और अमानवीय जीवन-स्थितियाँ भी हैं। इन स्थितियों के कारण ही इनके 'ओ प्रतीक्षित' के समय लिखे गीतों में उन स्थितियों से निकलने की तीव्र छटपटाहट भी है। इनकी आँखों में वह भोर उगने लगी है जिसके उजास में अंधकारों को पूरा पढ़ा जा सकेगा –

रोएँदार कुहासे/आँखें झँपी–झँपी/सोनराई पातों पर ठहरी भोर
(ओ प्रतीक्षित)

हाथों में काँपते गुलाब का सौन्दर्य-चित्र भी मन को छूता है जिसमें जीवन की आपाधापी में, संघर्षों के रण-क्षेत्र में एक कोमल प्रेम को अपना सम्पूर्ण समर्पण नहीं दिया जा सकता। घर में अभाव हो, पीड़ा हो और माँ-पत्नी-बहन-बेटी, भाई-पिता सारे सम्बन्ध अपने दाय माँगते हों तो एक अकेली प्रेमानुभूति कैसी क्षत-विक्षत हो उठेगी –

सुधियों की भँवर गयी डोल/हाथों में काँपता गुलाब रह गया
(ओ प्रतीक्षित)

'परछाईं टूटती' के गीतों में शान्ति सुमन का सौन्दर्य-बोध बहुत निखरा हुआ लगता है। अब उसमें मध्यवर्गीय संशय तथा कटे हुए अनुभव नहीं हैं। एक कोई सूत्र जो पहले के गीतों में छूट-छूट जाया करता था जिसमें जुड़कर भी सम्बन्ध बिखरने के कगार पर पहुँच जाते थे, अब वे सूत्र पूरी तरह गीतों में उपस्थित हैं –

गेहुँओं की पत्तियों पर छपा हाल/फुनगियों पर दूब की मौसम उगा इस साल
रंग हरे हो गये पीले बात में मितवा/मुट्ठियों में बन्द कर ली नागकेसर हवा (परछाईं टूटती)

अब शान्ति सुमन के गीतों में मनुष्यता का रंग भरने लगा है। सम्बन्धों का पूरा आलोक लेकर सौन्दर्य की कोंपलें फूटने लगी हैं –

जब कभी कोई बच्ची वर्षा में नहाती है/घर की याद आती है
(परछाईं टूटती)

आत्मीय संबंधों की खुशबू मन प्राणों में बसी होती है, घर का अहसास तभी होता है। इस अहसास के कारण ही हम जीवन-संघर्षों के बड़े-बड़े झंझावातों को पार करते हैं। स्मृतियाँ ही हमें जीवित रखती हैं और जिम्मेदारियों का जो

जुआ कन्धों पर है, उसको उठाने का साहस भी देती हैं। मध्यवर्ग ही नहीं; किसानों-मजदूरों के जीवन में भी स्मृतियों की बड़ी भूमिका है। इनके बल पर ही वे वर्तमान के संकट झेलते भविष्योन्मुख होते हैं –

चाँदी की थाली में दूब-धान से/याद-घर लगते उजले मखान से
(परछाईं टूटती)

छोटी-छोटी खुशी में कैसे बँध जाता है जीवन और साधारण जन का सौन्दर्य-बिम्ब कैसे आकार ग्रहण करता है, यह गीतों की कुछ पंक्तियों को देखकर पता चलता है –

जले हुई ईंधन, खाली दियासलाई
मामी के अनबाँधे केश औ' कलाई
धुओं भरे सँवलाये कमरों के कोने
बाँट रहे हाथ-हाथ खीर औ' मलाई – (परछाईं टूटती)

साधारण जन के घर-बार का यह बिम्ब-सौन्दर्य अत्यंत मर्मस्पर्शी है –

गोबर से लिपी हुई/घरों की उदासी
भूख ने लिखा है/हर सपना बासी – (परछाईं टूटती)

भावना के उज्ज्वल जल से धुला यह सौन्दर्य अप्रतिम है –

यहाँ से गुजरती फ्राक पहन ऋतुएँ
नावों पर शीशे चमकाती
शब्द भर न सो पायी जो आँखें
सूती कुरते सी सूख जातीं – (परछाईं टूटती)

इनके अतिरिक्त 'एक चिड़िया चोंच भर लेकर उड़ी अनबन/भाभियों के खनकते हाथों हिले कंगन'; 'अखबारों, सड़कों पर भूख औ' अकाल'; 'बागमती ने जब भी घर-आंगन डुबोये/चिड़िया, मछली और लोग-बाग संग रोये', 'खिलते ही सूर्यमुखी गहनाई मूक हुई/फसलें हस्ताक्षर की स्याही-सी सूख गईं', 'सूख रहे धूपों के टुकड़े फटे अंगोछे से'; 'रोशनी का पुल नदी में इत्र का झरना/देवदारों के वनों में नथों का गिरना'; 'उड़ती शीशे में सोन-चम्पई तितलियाँ/मधुबनी कलाओं बुनी अजन्ता उंगलियाँ'; 'कन्धे तक झुकी हुई रात बेरोजगार माँ सी/सुबहें बासी मुँह लिखती उजली ओ-ना-मा-सी'; 'होठों-सी जुड़ी महीन पत्तियाँ बरखा में'; 'घने पेड़, अनमने बादल तिकोने धूप के'; 'खुरदुरी हँसियों का बचपन'; 'धुआँ-धुआँ हो गयी इतनी/चाँदनी चुनती हुई उपलें'; 'घूरे में पके हुए आलू सी यादें'; 'बह चली हैं बैजनी नदियाँ/खोलकर कत्थई हवा के पाल'; 'एक हँसी फेंककर इधर-उधर/दूबों को सहलाना प्यार से'; 'दूधमुँहे ये किनारे, ये कश्तियाँ/सब नदी की लोरियों में सो गये'; 'चाँदनी

में फड़फड़ाते घाटियों के पंख'; 'टिनही थाली रखी आध टूक रोटी का स्वाद'; 'माँ की परछाईं सी गोरी-दुबली शाम'; 'लाल फूल गेंदा के बहिना की टिकली/हल्दी के हाथ लिये आंगन से निकली'; 'इमामी की महक से भरी हुई दुपहरी/भुनी हुई सूजी की गंध लिखी देहरी'; 'उदासी जैसे सिहरते पाँव पानी के/खुशी जैसे इत्र की शीशी कहीं ढरकी'; 'रोली-सिन्दूर-सने हाथ के निशान/छपते हैं जहाँ-तहाँ आँख बने कान'; 'गालों पर सूख गये आँसू के दाग'; 'अकेला गुलाब का उगना चुपचाप'; 'रेत में झुलसी हुई मछलियाँ'; 'ताम्बे के तार से खरीदी हल्दी सी'; 'परछाईं सी छोटी सड़कें'; 'दूरागत हँसियों से लगते हैं गाँव', आदि चित्र, भाव, कथन, परिदृश्य सौन्दर्य के अजस्र उपादानों से भरे हुए हैं। ये सौन्दर्य के केवल कोमल-प्रतनु बिम्ब ही नहीं हैं, अपितु इनमें जीवन-संघर्ष, कठिन अनुभवों के ताप पर रुखड़ा जीवन-सच भी है। 'परछाईं टूटती' से ही शान्ति सुमन की अगली गीत यात्रा के संकेत मिलने लगे हैं। कुछ सौन्दर्य-चित्र जो उनके जन साधारण की दिनचर्या से जुड़े हुए हैं, उनकी उपस्थिति भी देखना सुखद है। उदाहरणार्थ – 'कई टुकड़ों में बँटा आकाश का परचम', 'तालियों का शोर औ दम तोड़ते ये कहकहे', 'लूला समाजवाद लिये कैंचियाँ जबाबी', 'हाथ-पाँव पर चीखों के पहरे', 'होली में पहन लिये कपड़े धुले ईद के'; 'फसलें हस्ताक्षर की स्याही सी सूख गईं', 'सूख रहे धूपों के टुकड़े फटे अँगोछे से', 'चढ़े खरादों पर जब से ये जंग लगे हँसिये', 'कच्चे पीतल की अंगूठी', 'कितनी भारी होती है/भीगी गठरी गूदड़ की', 'कन्धे तक झुकी रात बेरोजगार माँ सी', 'चाय नींबू की भरी काँच के प्याले', 'कहाँ कितना सियें फटी कमीज अपनी', 'कामगार के पाँव सा आकाश फटता खुरदुरा', 'खुरदुरी हँसियों का बचपन/जाने कब स्याही बन ढरका', 'खत्म चुनावों के दौरे फिर लोग थके-हारे/सड़कें स्याह हुईं, सिलते गम डूबे गलियारे', 'ये हवा की देह पर निकले चकत्ते', 'सीठी से फिके-बिके मसविदे-इरादे', 'दादी की एकादसी तारा का उगना', 'दिन थके कहार सा हुआ/काटना पहाड़ सा हुआ', 'गोबर से लिखी हुई घरों की उदासी/भूख ने लिखा है हर सपना बासी', 'हाथों से पेटों तक बुने हुए जाले', 'टिनही थाली रखी आध टूक रोटी का स्वाद हो गया/चन्द्रमा विवाद हो गया; 'पिता सरीखे दिन के माथे चूने लगता घाम', मिट्टी के प्याले सी दरकी उमर हुई गुमनाम', टूट गई पायल-सी लगती मेड़ों की सतरें'; 'आँखों की स्याही से लिखती सुबहें', 'राखों के ढेरों में चिनगी सुलगाये' आदि श्रमजन्य सौन्दर्य हमें अलग से छूते और प्रभावित करते हैं।

वस्तुतः 'परछाईं टूटती' में बिम्बों, सौन्दर्य और अनुभूतियों-विचारों के अजस्र चित्र और परिदृश्य भरे हुए हैं। इन सौन्दर्य-चित्रों के कारण ही शान्ति सुमन के गीतों को बहुत सराहना मिली। कुछ प्रसिद्ध

आलोचकों ने इनके गीतों पर खुलकर बातें कीं।

'सुलगते पसीने' से शान्ति सुमन के गीतों में श्रम-सौन्दर्य का अदम्य सिलसिला शुरू होता है। अब इनके गीत शोषित-पीड़ित जनता के जीवन-संघर्ष के आइने बन जाते हैं। शोषित पीड़ित जनता के जीवन के साथ इनमें समकाल का भयावह यथार्थ भी व्यक्त हुआ है। 'पसीने के रिश्ते' में भी इन्होंने श्रमजीवी-संघर्षरत किसानों-मजदूरों के शोषण- उत्पीड़न के विरूद्ध अपने विचारों, संवेदनाओं की धार दिखाई है। जाने कितने ही जीवन्त श्रम-सौन्दर्य से जुड़े चित्र इन गीतों में भरे पड़े हैं।

'मौसम हुआ कबीर' में शान्ति सुमन का जनवादी तेवर खुलकर सामने आया है। इन गीतों को श्रमजीवी-संघर्षरत जनता से व्यापक स्वीकृति मिली है। जनता ने इन गीतों को अपनी दिनचर्या में अपनाया है। अजस्र लगाव के कारण ही हमें ये गीत जनता के गीत लगते हैं। इन गीतों में समाजार्थिक विसंगतियों को पूरी गहराई से उजागर किया गया है –

अपना तो घर गिरा/दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी अब दिन-दिन होती छोटी
कहती नवकी भौजी मेरे गाँव की

शान्ति सुमन ने मजदूरिन माँ के मुँह से उसके बच्चे का जो बचपन लिखा है, वह अद्‌भुत है। राम-कृष्ण का बचपन लिखने वाले तुलसी-सूर का ध्यान कभी इन बच्चों पर नहीं गया। शान्ति सुमन ने आत्मा की अतल गहराई से विचारों को आत्मसात कर मजदूर के बच्चों को चित्रांकित किया है। इस गीत में श्रम-सौन्दर्य का रूप देखते ही बनता है –

फटी हुई गंजी न पहने/खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, माँगे/एक पूरा चन्द्रमा
घट्ठे पड़े हुए हाथों का/प्यार बड़ा ही सच्चा
खोज रहा अपनी बस्ती में/दूध नहाया बच्चा
बाप सरीखा उसको आता/नहीं भूख को टालना

अपने शोषण का विरोध करने के साथ ही जनता अपने शोषण की समीक्षा भी करती है –

कैसे बेघर हुए घरों से/कैसे किया गुजारा
बासगीत भी गया करज में/मिली भूख की कारा
बाबू तेरे बिके शहर में/दाने कहाँ गये–
(मौसम हुआ कबीर)

शोषितों का गुस्सा इस बात पर है कि –

कंधे पर से नहीं उतरता/कभी करज का बोझ

असलियत तो यह है –

बूढ़ी दादी के संग हुई/पुरानी कथा महल की
राज कुँवर पत्थर–गरीब की बेटी काँच कमल की
जलती झोपड़ियों पर दिखे/ठहाके लिये अमीर

इनकी तो इच्छा बस यही है –

हर मुँह मुहर लगे दाने की/आँख खुशी का पानी
आपस में मिल बढ़ें कि टूटे/सत्ता की मनमानी –
(मौसम हुआ कबीर)

और इसके लिए – *'फूटता सैलाब/आँधी चल रही है'*

फिर भी कसक तो यह है –

पेट बाँध चिड़िया सोती/सड़ते जाने हैं दाने
सपने गड़ते से हाथों में जैसे ताल मखाने
मेहनतकश हाथों का कैसे/खून लगे ये पीने
(मौसम हुआ कबीर)

फिर संगठित होकर जनता फैसला लेती है –

काटो अंधकार का जंगल/फूँको नया अलाव

अब इस दुःस्थिति की परछाईं तक नहीं देखनी है –

आध हँसी हँसकर सोने वाले बच्चों सी
यह दुपहर उदास लगती है घर की – (मौसम हुआ कबीर)

अब अनुभव की इस जकड़बन्दी से निकलना है –

बैलबिन बेकार हल सी जिन्दगी – (मौसम हुआ कबीर)

अब खुशी आने को है। श्रम-सौन्दर्य का यह चित्र यही कहता है–

देख रहे कैसे चिड़िया/छूटे बाजों सी उड़ती
नदी पहाड़ों के ऊपर/अपने गीतों को करती
(मौसम हुआ कबीर)

'भीतर-भीतर आग' में प्रकृति से सौन्दर्य के बिम्ब अधिक लिये गये हैं, परन्तु वहाँ भी गाँव-घर-पड़ोस, नदी-समुद्र, वृक्ष-वनस्पतियाँ, झील- झरनों में मध्यवर्ग के साथ ही विपन्न वर्ग के परिदृश्य भी समेटे गये हैं। इसमें संबंधजन्य सौन्दर्य की अधिकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें मनुष्येतर सौन्दर्य भी

चित्रांकित हुआ है। जीवन-संघर्ष के बीच से जिस सौन्दर्य का अवलोकन हुआ है, वह अद्‌भुत है –

छाप नंगे पाँव की/अब शहर में लगती बड़ी

(भीतर-भीतर आग)

शान्ति सुमन की संवेदनाओं-विचारों का पाट चौड़ा है। यह उसकी अभिव्यक्ति है –

पाँव के नीचे दबे जो/चुभ रहे ये घास के तिनके

(भीतर-भीतर आग)

जीवन को तो साधारण जन ने इस प्रकार देखा है –

हाथ में कुदाल और माथ पर पसीना
एक मीठी हँसी की कमाई–यह जीना

कोई आग है जो सिरहाने-पैताने जलती रहती है। वस्तुस्थिति यह है कि –

आते ही सूरज के शोर भरी/बजती कारखाने की सीटी
पेट छीनता नींद आँखों की/पाँव तले पत्थर की मिट्‌टी

गरीबी, भूख, लाचारी को जीते रहने के बाद भी एक हौसला है। इन विपन्न लोगों का हौसला ही इनका अमोघ अस्त्र है –

क्या हुआ कल रात आयी/जोर की आँधी
नींबुओं की पत्तियाँ फिर/रात भर जागी

(भीतर–भीतर आग)

आपस का प्रेम-प्यार ही इन गरीब जनों का सबसे बड़ा संबल है –

हाथ के घट्‌ठे कभी जो/चैन पाकर लगे दुखने
प्यार वे पाकर तुम्हारे/करीने से लगे कमने

क्योंकि दीनता तो ऐसी है –

विरबे से हम सब तुलसी के/जलते ही जाते चौरे में

लेकिन अपने टूटे घर-बार, अपने अटूट अपनापन पर इनको कितना भरोसा है –

तेरा घर, मेरा घर, अपना घर गूँजे
रचती है माटी कजली
दुखों के धोये उत्सव उजाले
लक्ष्मी बसे तेरे पाँव

और इस सुख के सामने तो सारे दुख हार जाते हैं। संग-साथ होने का यह संवेदनशील अनुभूति-सौन्दर्य अत्यंत विलक्षण है।

काट रहा जब मैं खुद/अपने हाथों फसलें
परस तुम्हारे हाथों का भी/कहता मिलकर हँस लें
पीलाफूल कनेर एक खिलता है तो दिन माह में

(भीतर-भीतर आग)

'एक सूर्य रोटी पर' में किसान-मजदूर जीवन-यथार्थ के बीच भी सौन्दर्य की खोज शान्ति सुमन की रचना-धर्मिता की विशेषता है। इन गीतों में यथार्थजन्य सौन्दर्य को अधिक आँका गया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि खुरदुरे अनुभवों में भी सौन्दर्य की तलाश की गई है। ऐसी जीवन-स्थितियाँ जिनमें कविता की संभावना होती है, शान्ति सुमन ने वहाँ भी अपनी गीत-दृष्टि से सौन्दर्य की पहचान की है। इस गीत-संग्रह का श्रम-सौन्दर्य जन की संवेदनशीलता से जुड़कर और भी प्रगाढ़ हो गया है। इस दहकते श्रम-सौन्दर्य के बिम्बों की अधिकता के कारण ही डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह ने कहा है कि ''गरीबी और अभाव की आग में जलते भारतीय जीवन का दाह है शान्ति सुमन के गीतों में।'' उन्होंने यह भी कहा है कि ''श्रम और जन के घात-प्रतिघात से ये गीत बने हैं। यह शान्ति सुमन की अन्यतम विशेषता है कि जीवन के दुख, विपत्तियाँ और संघर्ष उनकी भाषा, लय और गीत के गठन में जुड़कर मधुर हो गये हैं'' –

मुड़े हुए नाखून/ईख सी गाँठदार उंगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ/खुरपी सी पसली
बलुआही मिट्‌टी पहने केसर का बाग जला

(एक सूर्य रोटी पर)

शान्ति सुमन ने श्रमजीवी संवेदनाओं को अपनी सर्जनात्मकता में उतार दिया है। कठोर पत्थर, खुरदुरी मिट्‌टी, काँटे, लहू एवं जीवन की तल्ख अनुभूतियाँ भी शान्ति सुमन की लय और सांगीतिकता में ढलकर कोमल हो जाती हैं और अभाव की आग में जलते हुए विपन्न वर्ग की दिनचर्या में भी एक आत्मीय संस्पर्श मिलता है –

जरद किनारीदार पहनकर/साड़ी पूजा घर में
जैसे कोई माँ अशीषती/बेटा कैद शहर में
राइफलों के कुन्दों से ज्यों कुचला जाये
जैसे बागी देशभक्त कोई मर जाये

(एक सूर्य रोटी पर)

ऐसी विचलित और उदास करने वाली किसानों की एकरस स्थिति को भी शांति सुमन ने गीत की लय में ढालकर मर्मस्पर्शी बना दिया है –

तीन रातों से बराबर खाँसते/बाबू पड़े बीमार कोने
और गठिया-वात से माती/अकेली माँ लगी रोने
तेज ज्वर में तप रही छोटी बहन/हाथ रख पाया न उसके माथ पर

– (एक सूर्य रोटी पर)

'हाथों से होते हुए पेटों तक/बुना हुआ एक मकड़जाला', 'दूबों से हम उगे हुए/खेतों की कड़ी सतह से', 'टीन की छत रो पड़ी जैसे', 'धूप के पाँवों फटी विवाइयाँ', 'तेज तपते लहू के उठते इशारे', 'बाध-बधार-खेत सब जैसे सहमी आँख लिये', 'नाली पास पड़ी है कोई लाश भिखारी की', 'आँधियों के पाँव चलकर आ गया मौसम', 'चारों ओर अँधेरा बूढ़ी लालटेन है जलती', 'हाथ को हल पर धरे तड़कती हुई पसलियाँ', 'अलमुनियम के तसले में पकते भातों सा उबले', 'धुँआ पीकर आग यह लपटों भरी तब से', 'आग पेट की वह केवल आँखों में बोती है', 'दुबक गई चिड़िया पत्तों की फटी रजाई में', 'अपने ही घर के आगे गोली चल जाये', 'एक सूर्य रोटी पर औंधा, चाँद नून सा गला' आदि इस संग्रह के गीतों के सौन्दर्य के बिम्ब अथवा बिम्ब के सौन्दर्य किसान-मजदूरों की वस्तुस्थिति की लपटें हैं।

गरीबों के जीवन से यह जानने को मिलता है कि साथ-साथ सुख-दुख सहने से भी आत्मीयता बढ़ती है और साथ-साथ संघर्ष करने से संबंध में एक अद्‌भुत विश्वसनीयता भी आती है। भीतर की इसी आत्मीयता और भरोसे के संबंध के कारण उनके जीवन में छोटी-छोटी खुशियाँ जन्म लेती रहती हैं। अभावों से झुलसे ऐसे मेहनतकश जन के जीवन में झांकने, उनमें गहरी अभिरूचि रखने के करण शान्ति सुमन ने उनके जीवन के बीच भी ऐसी हरियालियाँ तलाशी हैं जो इतना सुखद है तो उतना ही अतुल्य भी। 'लहठी सना पसीना', 'लड़की पहली बार बया के पंख पकड़ती है', 'किरणें रोटियोंवाली', 'कुश की नोकों पर ओसायी धूप झलक जाये', 'पीतल की अंगूठी भी तो मानिक-लाल लगे', 'झोपड़ियों की धूप गुनगुनी कुछ अधमैली-सी', 'कच्चे ताम्बे की ताबीज', 'देह साँवली पहने चकमक बूँद पसीने की', 'चाँदी की हँसुली यों तोड़ गये हरिजन जैसे दिन', 'आसमान में चिड़िया सी उड़ती इच्छा सुकुमारी', 'हँसिया मचल रहा हाथों में झूमे बाली कानों की', 'अँकुरे रेह-रेह में बीहन/मन में खेत टँके/दुख कोई भी नहीं कि पहले हँसुली-बाँक बिके', 'सपने में सपने आते हैं/घर-विवाह-गौने', 'बोये हुए बीज खेत में रचते हैं रंगोली', 'माँ की रोटी, नमक बहन का और हँसी घरवाली', 'बच्चों की आँखों में उड़ते हैं रोटी के पर', 'अभी हाट से लौटा/लकदक

होकर सोनेलाल/गैंची-कतला के संग लाया साड़ी टह-टह लाल', 'आँखों की पुतरी जैसे मिसरी की डली हुई', 'वह तुम्हारा तोड़ परती अंकुरित होना', 'खोंपा गुँथे कनेर शाम तक ताजे थे'; 'नमक और चीनी दिन-रातें', 'केवल मीठे बोल कि मैली धोती उजलाई', 'एक नन्हीं हँसी के धोये हुए चेहरे', 'बेटी सी सुन्दर हरियाली/पकड़ उंगलियाँ चलती', 'पत्ते चुनते दुपहर ढलती बाग-बगीचे में', 'चिन्ता करते बाबूजी की खाँसी नहीं दुहरती', 'पहला दूध उगे जैसे धानों की बाली में', 'सुजनी खाँस रही है माँ की', 'तारों सी बिखरी जाती अपनी नन्हीं उम्मीदें' आदि ऐसी सौन्दर्याभिव्यक्तियाँ हैं जिनको देखकर ही डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह ने कहा – 'हर प्रकार के दुख, हर प्रकार के दर्द, हर तरह के अभाव इन गीतों की भाषा और लय में ढलकर मधुरतम बन गये हैं।'

'धूप रंगे दिन' 2006 में प्रकाशित शान्ति सुमन का वह जनवादी गीत-संग्रह है जिसमें मदन कश्यप यह देखते हैं कि 'उनके पास आज के यथार्थ की आन्तरिक गतिशीलता को परखने की दृष्टि भी है और उसे उद्‌घाटित करने की कला भी।' कठोर और खुरदुरे यथार्थ को कोमल शब्दों में बाँधने की कला यहीं से आई है। सौन्दर्य के रूप-शिल्प भी यहीं से ढलते हैं।

अब पुरुषों के साथ मेहनतकश स्त्रियों का भी साहस सिर उठाकर चलने लगा है। छोटी-छोटी तकलीफों से भी जो टूटने लगती थीं अब उनके मनोबल उनको टूटने नहीं देते क्योंकि समय और समाज के सारे यथार्थ उनके सामने खुले हुए हैं –

उड़ते पत्तों के संग अब वह/उड़ा नहीं करती राहों में

अब परिस्थितियों में बहुत बदलाव आया है। 'मुनिया के घर का सूरज भी अब पढ़ने-लिखने लगा' है। 'मुनिया की माँ का माथा भी अब आगे बढ़ दिखने लगा' है। अब मुनिया को उसकी माँ गाय नहीं कहती। वह अब पूरी देश-दुनिया को समझने लगी है। मुनिया देखती है कि उसका भाई अभी बहुत छोटा है, पर माँ-बाप अपनी आमदनी का बड़ा हिस्सा उसके लिये बचाकर रखते हैं। मुनिया अंधकार से लड़ेगी और आकाश का चन्द्रमा उसके गले में तमगा बनकर चमकेगा। फिर भी घर में अब भी कई दुख है जिनसे लड़ना हैं –

पीले हाथ नहीं बेटी के/रेहन के डर से

श्रमजीवी घाटी लांघते हैं, ईंट पकाते हैं, बोझ उठाते हैं, पर उनके मन में अजस्र सपने हैं अपने अच्छे दिनों के लिये। पटुआ गोरते, पत्थर फोड़ते हुए उनकी आँखों में पानी आते हैं, 'तीन बरस की मुन्नी की तरहथ में दबी अठन्नी' की खुशी की तरह उनकी भी खुशी है। इधर सुखों के अहसास का यह सौन्दर्य ऐसा है जो आँखों में लाली भरते हुए सीधे अंतस्तल में उतर जाता है –

'कई महीने बाद कुशल आया है लुधियाने से'

इसकी खुशी के पंख तो उड़ने ही लगे हैं, उस पर यह भरोसा जिसमें आत्मा की आश्वस्ति का सौन्दर्य भरा है –

'जाड़े में आ नहीं सका तो शाल भेज देगा'

गरीबों की दुनिया में भरोसा की यह अमीरी सम्पन्न वर्ग में कहीं नहीं मिलती। यहाँ तो ऐसा है कि सौन्दर्य शत-सहस्र स्रोतों से फूट पड़ा है –

'तेरी हँसी निरख छन भर में
गीला पंख सहज उड़ आया'

उनमें जीवन के अन्तरंग चित्र भी सौन्दर्य से कितने अभिषिक्त हैं –

पालक के पानी से भींगी हुई मकई की रोटी
दौड़ लगाने पर उठती-गिरती माथे की चोटी

एक ओर मजदूरिन माँ की लोरी सुनकर मन जैसे आश्वस्ति के गंगा जल में नहा उठता है जहाँ कर्म-सौन्दर्य की नदी बहती है –

'सपनों में रोटी के पेड़ भरे रखना'

माँ आशीषती है –

'बचपन उगाये दूध और नीन'

परिवार में पति पत्नी के प्रेम की डोर इतनी मजबूत है कि कोई दुख उसको तोड़ नहीं सकता। यहाँ लोक-सौन्दर्य का रंग बिखरा पड़ा है –

'रोटी परोसने में हाजिर रहने वाले दो हाथ
खून-पसीने की खुशबू से रचते-बसते ये साथ'

फसल जिनकी जिन्दगी है उस फसल से साधारण जन के रंग निखर जाते हैं –

गेहुँआ तन लिपटते/फसल की खुशबू से
मेड़ों घूमते बच्चे ज्यों अमलतास हँसे

सामंतों-शोषकों के कारण घर का चेहरा बदलकर भी नहीं बदलता –

'फटी हुई माँ की साड़ी घर की उदास आँखें'

और उस पर यह असलियत है –

दीवारों के विरवों सी/मजदूरी जब रोती
रेलों की छत पर करते/हम सपनों की खेती

और व्यवस्था ऐसी दमघोंटू है कि जीवन–सौन्दर्य टूटने लगता है –

सालों भर मछली के सपने पाले जायेंगे
धीरे-धीरे तन से लहू निकाले जायेंगे

प्रकृति के सघन संबंध के कारण ही वृक्ष-वनस्पतियों में भी मानवीय संबंध की कल्पना भरी हुई है और यह सौन्दर्य नितान्त मानवीय बन जाता है –

हवा लौट कर आई होते ही अहले शाम
लेट गई टहनी पर जैसे माँ करती आराम

सौन्दर्य को उकेरने की अद्‌भुत कला है शान्ति सुमन के पास –

टूट गया हो हल जिसका/इस भरे हुए भादो में
बिचड़े कैसे रोप सकेगा/इस अनगढ़ कादो में

सच केवल यह है जिसमें जीवन अभाव में भी सुख-सौन्दर्य का अनुभव करता है –

'बिछा था कालीन खेतों में फसल का
सुख पहनकर नाचती थी रात में कजरी'

और इसी सच के उजास में इस संघर्षजीवी वर्ग से जुड़कर शान्ति सुमन प्रकृति से एकात्म हो जाती हैं और डॉ० शिव कुमार मिश्र के शब्दों में शान्ति सुमन के गीत 'मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत' लगते हैं –

शिशु की पहली गर्म साँस/जैसी अगहन की धूप
आती है तो किलकारी जैसी लगती है

शान्ति सुमन ने संघर्षरत जन-जीवन के सौन्दर्य के इतने विविध रूप उकेरे हैं कि जनवाद के अन्य गीतकारों में इतने विम्ब-चित्र नहीं मिलते। इसलिये सच है कि 'थाली उतनी की उतनी ही छोटी हो गई रोटी' या 'थमो सुरूज महराज नयन काजर भरलें' आदि गीतों के आधार पर ही कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने लिखा है – 'ये पंक्तियाँ इन्तहाई संगीतात्मकता लिये हुए तो हैं ही, साथ ही अपनी मौलिकता और व्यंजनात्मकता को लेकर भी अनूठी हैं।' कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह यह भी मानते हैं कि 'यह सब समय से गहरे सरोकार और विधागत दायित्व के सहज बोध के कारण संभव हो सका है और यही सुमन के अंदर पल रही वह शक्ति है जो उन्हें अपनी जमीन से हटने नहीं देती।' इन्हीं सांगीतिक व्यंजनाओं ने शान्ति सुमन के गीतों को अपार सौन्दर्य दिया है। इसीलिये जनवादी गीतों के प्रमुख हस्ताक्षरों में वे एक हैं जिनके गीतों का सौन्दर्य केवल मुग्ध ही नहीं करता, हमें जीवन के विस्तृत संसार से जोड़कर अनुभव-समृद्ध भी करता है।

●

'इच्छाओं से भरी ताम्बई कोंपल'

❑ डॉ० अरविन्द कुमार

शांति सुमन के रचनाकार की उम्र लगभग चालीस वर्ष की हो चुकी है। शांति सुमन के पहले गीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' (जिसे वे नवगीत कहती हैं) के प्रकाशन वर्ष 1970 से लेकर उनके आखिरी गीत-संग्रह 'धूप रंगे दिन' (जिसे वे जनवादी गीत की संज्ञा देती हैं) के प्रकाशन वर्ष 2007 और फिर 2008 में लिखे गीतों को जोड़ दें तो यह उम्र सहज ही चालीस के आसपास हो जाती है। 'ओ प्रतीक्षित' (1970) तथा 'परछाईं टूटती' (1978) उनके प्रारंभिक गीतों के संकलन हैं। अपने गीतों की रचना के शुरुआती दौर में शांति सुमन युवा थीं, इसलिए स्वाभाविक है कि उनके संकलनों के शीर्षक 'ओ प्रतीक्षित' तथा 'परछाईं टूटती' जैसे ही होते। पर उसी दौर में उनके भीतर कृषक चेतना का विस्तार होना शुरू हो गया था क्योंकि 1979 में ही अपने एक सह-संकलन 'सुलगते पसीने' में वे श्रम और पसीने की बात करने लगी थीं। यानी प्रतीक्षा तथा परछाईं का टूटना समय के यथार्थ के आगे बेमानी से होने लगे थे। उनके शुरुआती गीतों में जो निराशा, घुटन या उदासी थी, वह यहां तक पहुंचकर एक नया दृष्टिबोध पाने लगी थी। हो सकता है कि 'सुलगते पसीने' की भाषा के मुहावरे तथा उसकी आक्रामक शैली को सरलीकरण से जोड़कर देखा जाए पर यह तो तय है कि इन गीतों में शांति सुमन का एक नया रूपान्तरण था जिसका विकास 1985 में प्रकाशित गीत संग्रह, 'मौसम हुआ कबीर' में देखा जा सकता है। और यही विकास अंततः उनके 'भीतर-भीतर आग', 'एक सूर्य रोटी पर' तथा 'धूप रंगे दिन' जैसे जनधर्मी गीत संकलनों तक जाता है।

खुद शांति सुमन भी मानती हैं कि 'जनवादी गीत रचना की रचना प्रक्रिया काफी जटिल और दुहरी होती है। यहां भावों की गहराई, अनुभूति की सघनता और आकार में संक्षिप्तता पर विशेष बल दिया जाता है। क्रांतिकारी वैचारिक अन्तर्वस्तु को लोकप्रिय और सहज प्रभावी अन्तर्वस्तु से अन्तर्ग्रथित करना पड़ता है। मगर कभी-कभी इस रचनात्मक द्वन्द्व को रचनाकारों द्वारा बड़े ही सरलीकृत ढंग से ग्रहण किया जाता है। नतीजतन रचनाएँ अमूमन सपाटबयानी और वक्तव्यबाजी का शिकार होकर राजनीतिक अवधारणाओं का संवेदनशून्य दस्तावेज बनकर रह जाती हैं अथवा वैचारिक अन्तर्वस्तु की रिक्तता को ढ़कने के लिए कला और शिल्प पर अधिक केन्द्रित होने के कारण रूपवाद की गिरफ्त में फंस जाती है।' .....'मौसम हुआ कबीर' की भूमिका में लिखी गयी ये पंक्तियाँ शायद नचिकेता के साथ प्रकाशित सह-संकलन 'सुलगते पसीने' पर लगे सपाटबयानी के आरोपों के कारण आयी है। वैसे भी 'मौसम हुआ कबीर' तथा

'सुलगते पसीने' की काव्यगत संवेदना में काफी अंतर दिखाई देता है। 'सुलगते पसीने' में स्थितियों का जो दबाव है, वह 'मौसम हुआ कबीर' में कहीं दिखाई नहीं देता। यहां तक कि संकलन के शीर्षक में भी एक सहजता दिखाई देती है।

शांति सुमन के अब तक जो छह स्वतंत्र संकलन प्रकाशित हैं, उनमें प्रारंभिक दो संकलनों को छोड़ दिया जाए तो बाकी चार संकलन जनवादी गीतों के हैं। आप इन्हें जनवादी नहीं भी कहना चाहें तो ये गीत जनचरित्री तो हैं ही और प्रगतिशील परम्परा के वाहक हैं। गीतों के बारे में यह माना जाता रहा है कि गीत सिर्फ अपनी गेयता के कारण लोकप्रिय होते हैं, पर शांति सुमन ने गेयता के बीच गीतों की एक नयी भूमिका निर्धारित की है। इसे उनके संकलन 'मौसम हुआ कबीर' में बखूबी देखा जा सकता है। हालांकि बाद के संकलनों में गीतों का क्षेत्र-विस्तार भी होता है जहां प्रेम और सम्बन्ध जैसे शब्दों को एक नयी व्याख्या मिली है। इस प्रेम तथा संबंध की व्याख्या में शांति सुमन इतनी सहज हैं जैसे वे घर में बैठकर बतिया रही हों। पर सबसे बड़ी बात है कि वे भावुक नहीं होतीं बल्कि उसे जीवन के वास्तविक संदर्भों से जोड़कर देखती हैं। अपना बचपन, गांव में बिताये गये बचपन के दिन, रिश्तों की अकुलाहट, माँ तथा पिता के साथ बिताये गये समय के दृश्य, खपरैलों पर लौकी की लतरें खोजतीं कोशी के कछेर की लड़की की आंखें या धार नहाती लड़की का साथ सब कुछ याद है उन्हें। एक लम्बा अतीत जो साथ-साथ चलता है और जब वे अपने इस अतीत में लौटती हैं तो एक सहजता साफ दिखने लगती है। लगता ही नहीं कि ये वही शांति सुमन हैं जो संघर्षों में विश्वास रखती हैं या जो अधिकारों के लिए लड़ने की बात करती हैं। इसलिए उनके गीतों के दो धरातल हैं, एक जहां वे स्मृतियों के साथ होती हैं, फसलों का सरसराना सुनती हैं – 'याद आये पिता/अपना झील सा ठहरा हुआ बचपन/मूंगों की फलियां/पहने उजले, हरे खेत–वन' तथा दूसरा जहां वे फसलों को आततायी के हाथों से बचाने के लिए हल के फार उठाने की बात करती हैं या जहां वे हक की लड़ाई में भूमिहीनों के साथ होती हैं – 'लड़कर जीता हिरन आग का हो गया/आसमान तक बढ़ती फसलें बो गया।'

शांति सुमन के साथ होना दरअसल अपने अहसासों के साथ होना है। आप जब उनके गीतों के मौसम में प्रवेश करते हैं तो एक पूरी दृश्यात्मकता साथ होती है। एक वैसा गांव वहां सजीव हो उठता है जिसकी सुबह कपास सी होती है और दोपहरी रुबाई सी। यह तभी हो सकता है जब किसी में जड़ों से प्रेम का एहसास जगता हो। नागार्जुन भी जब 'सिन्दूर तिलकित भाल' में अपने गांव को याद करते हैं तो वहां

भी एक ऐसी ही दृश्यात्मकता उभरती है। आम के पेड़, लीचियों के बगान, तालमखानों से भरे तालाब और चारों तरफ फैली फसलों की हरियाली और फिर गांव में बैठी उनका इन्तजार करती उनकी प्रिया और गांव भी तो उनके लिए प्रिया की तरह ही है जिसकी याद में वे तड़पते रहते हैं। शांति सुमन भी गांव की याद में कुछ ऐसे ही तड़पती हैं और फिर खेतों तथा उनमें लहलहाती फसलों में खो जाती हैं। वे लिखती हैं – 'फसल की फुनगी हिली/नाचे खुशी से मेड़/आंखें जागती हैं'... या 'फसल काटने के दिन आये, परब जगे।'... और जब वे सुबह में उतरती हैं तो लिखती हैं – 'खेतों की मेड़ों पर सुबह हुई/फसलें अंगड़ाई ले जागीं।'

दरअसल सुबह का होना शांति सुमन के लिए बेहद रोमांचक घटना है, इसलिए सुबह के उतरने को वे बड़ी तन्मयता से देखती हैं – 'सुबह हुई आंगन में/गमकी धूप किसी पकवान सी।' वे लिखती हैं – 'सूरज ने छिड़के अबीर/महकी हैं सांसें/अलसायी पलकों पर ठहरी भोर' – सुबह के होने से सपनों का जुड़ना कितना अच्छा लग सकता है, इसे इनके गीतों में देखा जा सकता है। जैसे – 'कांपती हैं सुबह की आँखें/सपने भींगते हैं।'.... और उन सपनों में कोई प्रिया भी हो तो फिर क्या कहना। इनके यहां प्रिया के ढ़ेर सारे रूपक हैं, सिर्फ प्रिया की याद उन्हें इतनी बेचैन कर जाती है कि वे प्रकृति के बीच से ढेरों रूपक गढ़ लेती हैं। जैसे –

'गालों पर गेरू की लाली
लाली में खुशबू की जाली
घर में झाँक गयी जैसे
पुरवाई लगती हो'

या फिर यह –

'फूलों का मौसम होठों पर
ओसों का टीका माथे पर
खेतों की माटी में खूब
नहायी लगती हो'

नचिकेता लिखते हैं कि 'शांति सुमन के गीतों में अनुभवों का पाट बहुत ही चौड़ा है और जमीन उर्वर।' (पंख-पंख आसमान)..... मदन कश्यप भी मानते हैं कि 'शांति सुमन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समय और समाज की विडम्बनाओं तथा विरूपताओं को बौद्धिक स्तर पर पहचानने की बजाय संवेदना के स्तर पर ग्रहण करने का प्रयत्न करती हैं। यही कारण हे कि वे कई बार कठोर और खुरदुरे यथार्थ को भी कोमल शब्दों में बांधने में सफल होती हैं।'

(धूप रंगे दिन)... प्रिया के गालों पर गेरू की परिकल्पना या फिर खेत की माटी से नहायी प्रिया का चित्र दरअसल कवयित्री की उस भावना को दर्शाता है जिसके तहत वे खेतों और उसकी फसलों से प्यार कर रही होती हैं। उनके लिए प्रिया सिर्फ एक प्रसाधनयुक्त शरीर नहीं है, बल्कि वह श्रम से जुड़ी एक आस्था भी है। इसीलिए वे खेत और फसलों के बीच इस प्रिया का रूप ढूंढती हैं। जब वे लिखती हैं – 'थमो सुरुज महराज/नयन काजर भर लें/बोये पिया पसीना/फसल सगुन कर लें' तो श्रमशील संस्कृति से एक प्रतिबद्धता साफ नजर आने लगती है। वैसे मिट्टी के प्रति यह प्रतिबद्धता दूसरे गीतों में भी है, जैसे – 'खेत में फसलों सी/फसलों सी खेत में/दिन-दिन पको' या 'श्रम से चूर हुआ तन/कैसा सोना है लगता/मिट्टी का हर कोना/कितना अपना है लगता/कंधे पर हल हो तो/पत्थर दाना है लगता।'... हालांकि खेत और फसल के बीच की प्रिया से अलग भी एक प्रिया शांति सुमन के यहां है जिसकी यादें, जिसके संस्पर्श उन्हें बेचैन करते हैं तथा जहां प्यार की एक नयी परिभाषा बनती मिलती है –

'रुकता नहीं प्यार, प्यार वह
नदी, झील, पर्वत सा
मीठा-मीठा लगे रात-दिन
शहद घुले शरबत सा'

इसीलिए वे आगे लिखती हैं –

'अपनी अनुपस्थिति में भी
तुम इतने पास लगी
जैसे कोई धूप अकेली
देहरी-बीच उगी'

और प्रेम के इन बिम्बों को रखते हुए वे कहीं-कहीं रूमानी तक हो जाती हैं। जैसे –

'केसर रंग रंगा मन मेरा
सुआपंखिया शाम है.....
तन्मय चुम्बनसिक्त अधर पर
लिखा तुम्हारा नाम है'

शांति सुमन अपने गीतों में न सिर्फ प्रेम तथा मानवीय करूणा के अभाव को पाटती हैं, वे अपने गीतों को रागतत्त्व और लयात्मकता में ढालती भी हैं। वे लिखती हैं – 'बड़ी तेजी से गद्यात्मक हो रहे युगबोध को गीतों में उतारने को आज गीतकार यदि सहज न रहे तो गीतों का चरित्र बदल

सकता है। सहज मानवीय करूणा का अभाव जिस तरह समाज और जीवन में हो रहा है, गीत के राग तत्व और लयात्मकता से इस स्थिति को पाटा जा सकता है।' (भीतर-भीतर आग)... जैसे जब वे एक लम्बे अरसे के बाद गांव लौटती हैं तो पहली नजर में गांव उन्हें बुझी राख सा लगता है – 'थके पांव सा/झुकी छांव सा/अपना गांव हुआ/बुझे ताव सा/बिन पड़ाव सा/अपना गांव हुआ'... पर जैसे ही वे अपने गांव के भीतर प्रवेश करती हैं, उनकी आंखों में कई सपने तैरने लगते हैं और वे लिख बैठती हैं –

'जब भी जीने का मन जागा/उगे कई सपने
आँखों की परती से/हरे–हरे अंकुर फूटे
रेतीली मिट्टी से/दुःख के सब प्रत्यय छूटे'

और फिर गांव के प्रति एक जुड़ाव भी हो जाता है और गांव की खुशहाली के लिए प्रार्थनाएं तक की जाने लगती हैं –

'ओ रे मौसम पूस–माघ के
जब भी आना गांव में
ढेरों बन्द लिफाफे लाना
शहरों से पंजाब के'

इसी तरह सुबह, दोपहर, शाम, रात के भी कई सजीव बिम्ब हैं। जैसे –

'यह कपास सी सुबह/रात खादी-कुरते सी।'... यानी सुबह एकदम हल्की तथा रात भारी। इसी तरह दिन को लेकर वे लिखती हैं –'आंचल में बंध जाओ रे दिन/छोड़-छोड़ आवारापन।' यह दिन जब भी आवारा होगा तो थकाने लगेगा, आलस्य पैदा करेगा, जीवन की गति को रोकेगा, इसीलिए इसे वे अपने आंचल में बांधकर दूसरों को इससे मुक्त रखना चाहती हैं क्योंकि वे दिन को हमेशा उबाऊ मानती हैं। वे लिखती भी हैं – 'दिन थके कहार सा हुआ/काटना पहाड़ सा हुआ।'... या फिर यह कहती हैं – 'अलसाने लगे फागुन के दिन।' ऋतुओं की यह परिकल्पना भी इनके यहां बेहद आकर्षक है। पूस, माघ के जाड़े के बाद फागुन का आना उन्हें इसलिए पसन्द नहीं क्योंकि ये अलसाने वाले दिन होते हैं और उन्हें स्फूर्ति में रहने की आदत है। प्रकृति भी फागुन के इस समय को पसन्द नहीं करती क्योंकि यह एक तरह से पतझड़ का समय होता है जबकि चैत नये पत्तों और कोपलों का स्वागत करता है और वसन्त मनाता है। इसीलिए वे पुनः लिखती हैं – 'सूने चौराहे सा बीत रहा दिन/टूटी प्याली सा दिन/झड़े-झड़े पातों सा दिन।'.... और आगे चलकर बादलों को आमंत्रित करने लगती हैं – 'दुख रही है अब नदी की देह/बादल लौट आ।'

बैसे शांति सुमन के यहां गांव का मतलब सिर्फ प्रकृति या मौसम

तक ही सीमित नहीं है, वह उनके भीतर रक्तबीज की तरह मौजूद है और यही रक्तबीज उन्हें निरन्तर उस गांव की सरहद पर ले जाता है। इसीलिए गांव से निकलकर भी गांव का यादों में बसे रहना या फिर गांव को दिन-रात जीना गीतकार की एक प्रमुख विशेषता है। कोशी के इलाके की लड़की जब गांव छोड़कर शहर आती है तो वह शहर में भी अपना गांव ढूंढती रहती है –

'पहली बार ट्रेन में बैठी/पहली बार शहर आयी
कोशी के कछेर का अपना/घर आँखों में भर लायी
खोज रही है खपरैलों पर/पसर गयी लौकी की लतरें'

साथ ही उसे वहां के परिचय और प्रणाम याद आने लगते हैं और याद आती है माँ जिससे पहली बार बिछुड़कर वह शहर आयी है –

'माँकी परछाईं सी लगती/गोरी-दुबली शाम
....याद बहुत आते हैं/घर के परिचय और प्रणाम'

यानी प्रवासी होकर जीना उसे बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा, ठीक वैसे ही जैसे नागार्जुन 'सिन्दूर तिलकित भाल' में लिखते हैं –

'यहाँ भी हैं व्यक्ति और' समुदाय
किन्तु जीवन भर रहूँ फिर भी प्रवासी ही कहेंगे हाय!'

और लड़की की अम्मा के लिए तो अपने आंगन में लगे आंवले और तुलसी को छोड़कर जाना कल्पना से परे है। वे लिखती हैं –

'दरवाजे का आम–आंवला/घर का तुलसी–चौरा
इसीलिए अम्मा ने अपना/गांव नहीं छोड़ा'

शांति सुमन के यहां शब्द बोलते हैं चाहे वे बिम्बों के रूप में हों या रूपक के रूप में। साथ ही इनमें एक प्रकृति बोलती होती है और होती है उसकी हरियाली, उसका सौन्दर्य। यहां तक कि रिश्तों की अकुलाहट में भी यह प्रकृति मौजूद है। जैसे – 'तुम आये/जैसे पेड़ों में पत्ते आये।'..... या 'हवा लौटकर घर आयी होते ही अहले शाम/लेट गयी टहनी पर जैसे माँ करती आराम।'.... या 'फिर हरापन ओढ़ती है/ताल में झरती कमल की पंखुड़ी।' या 'तू गाती है नदी/तो लगता गाता है मौसम।'.... गीतकार के यहां इसकी एक लम्बी शृंखला है। जैसे – 'पेड़ की फुनगियों से सूर्य बंधा/रोशनी किनारे की झील बनी।'.... या 'दोहे जैसे लगती सुबहें/रुबाई सी लिखी दुपहरी।'

इसीलिए वे 'भीतर-भीतर आग' की भूमिका में लिखती हैं – 'आज उदारीकरण और विश्वबाजारवाद के कारण जीवन के हर क्षेत्र में जो सरलीकरण

आने लगा है, गीत का उससे प्रभावित होना आकस्मिक नहीं है। इसलिए गीतकारों को अपने अनुभवों में बार-बार प्रवेश करने की आवश्यकता है।'.... गीतकार के यही अनुभव उससे इतनी सुन्दर कल्पना करवा लेते हैं जहां एक चाक्षुष बिम्ब हमेशा मौजूद रहता है। देखिए.... 'घाट नहाती लड़की जैसे डूबी हुई हवा/हुई अनमनी छाँहों वाली गुमसुम लाल जवा।'.... साथ ही अनुभवों में बार-बार प्रवेश करने का यह जज्बा उनके गीतों में जगह-जगह दिखता है चाहे वह 'मौसम हुआ कबीर हो' या 'भीतर-भीतर आग' या 'धूप रंगे दिन' या फिर 'एक सूर्य रोटी पर।' यही कारण है कि डॉ० शिवकुमार मिश्र मानते हैं कि 'शांति सुमन के गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है। स्वानुभूति, सर्जनात्मक कल्पना तथा गहरी मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे ये गीत अपने कथ्य में जितने पारदर्शी हैं, उसके निहितार्थों में उतने ही सारगर्भित भी। मुक्तिबोध ने कविता को जनचरित्री के रूप में परिभाषित किया है, शांति सुमन के ये गीत मुक्तिबोध की इस उक्ति का रचनात्मक भाष्य हैं।'... (धूप रंगे दिन)

'मौसम हुआ कबीर' में 1979 से 1984 तक के गीत हैं जिसकी पृष्ठभूमि में 1967 का नक्सलबाड़ी आन्दोलन, 1974 का छात्र आंदोलन, 1975 का आपातकाल तथा किसान-मजदूर संघर्षों की एक शृंखला दिखाई देती है। 1979 में प्रकाशित संयुक्त संकलन 'सुलगते पसीने' में नचिकेता लिखते हैं कि 'ये गीत वस्तुतः नक्सलबाड़ी किसान आंदोलन और उसकी क्रांतिकारी सामाजिक चेतना की उपज हैं। इसलिए ये गीत संघर्षशील जनसामान्य को संघर्ष के निमित्त संगठित, उद्‌बोधित और प्रेरित करने में हथियार की तरह प्रयुक्त हुए हैं।' **नचिकेता 'सुलगते पसीने' में गीतों की भूमिका का जो उल्लेख करते हैं, 'मौसम हुआ कबीर' में यह भूमिका थोड़ी बदली होती है क्योंकि इन गीतों में एक संघर्ष तो दिखाई देता है, अंधेरे के विरूद्ध रोशनी की लड़ाई का जिक्र तो आता है पर इनमें आयी शब्दावलियों में कहीं कोई नारा नहीं दिखता या क्रांति का कोई सरलीकृत रूप नजर नहीं आता।** इसलिए इन गीतों में प्रयुक्त शब्द हथियार का काम तो करते हैं पर प्रतीकों के माध्यम से। गीतकार 'मौसम हुआ कबीर' की भूमिका में खुद इस बात की तस्दीक कर देता है कि ये गीत राजनीतिक विचार या नुस्खे नहीं हैं और उन्हें किसी राजनीतिक दल का प्रोपेगंडा नहीं समझा जाए। वह लिखता है – 'बिम्बों के अभाव में गीत-रचना का अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो सकता है। बिम्बों और प्रतीकों के स्थान पर महज राजनीतिक विचार एवं नुस्खे तथा जीवन्त एवं प्राणवान जीवनानुभवों के स्थान पर केवल विचारों के आडम्बर से गीत-रचना मृत हो जाती है।'....

इसलिए यदि कहीं नारे की बात होती भी है तो एक बदले हुए रूप में शब्द आते हैं, जैसे – 'कच्चे गीतों से अच्छा है नारा एक लिखो/बंधे हुए द्वीपों से बेहतर धारा एक दिखो।'.... अन्यथा गीतकार वैसे बिम्बों को चुनता है जो भाव और संवेदना के बिल्कुल निकट होते हैं, जैसे 'नौजवानों का गीत' में गीतकार लिखती हैं –

'अंधेरे की पांख काटकर
रोशनी के नाम रुत लिखो
मेहनतकश जनता अब जगी है
ऊंघते हुए से मत दिखो
फूटो ज्यों फूटते हैं धान'

इसी तरह 1979 के ही एक अन्य गीत 'हौसले का गीत' में वह लिखता हैं –

'फूलो फूल कनेर, हौसला लेकर फूलो रे
.....उठते हुए सवालों से शाखों पर झूलो रे
....जख्मों से अब रिसो नहीं, महुओं से चू लो रे
....चलो, बढ़ो, जल उठो, लाल शिखरों को छू लो रे'

इन गीतों में प्रकृति के बिम्बों के सहारे मुक्ति संघर्ष का जो मिथक बुना गया है, वह बेहद आकर्षक है। जैसे 'फूटो ज्यों फूटते हैं धान' या 'फूलो फूल कनेर, हौसला लेकर फूलो रे' के प्रयोग से गीतकार युवा पीढ़ी को केन्द्र में रखकर आजादी या मुक्ति का बड़ा फलक बुनना चाहता है। और 1979 की यही चेतना 1981 तक आते-आते एक फैसले में बदलने लगती है। गीतकार लिखती हैं – 'हल के फार हाथ में हों तो/फिर कोई हथियार नहीं/सुनो शोषकों! भूखे रहने को/हम हैं तैयार नहीं।'.... और फिर वह कहने लगता है –

'नहीं चाहिए आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात
हम गरीब मजदूर भले, हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे'

और वह आगे बढ़ने का निर्देश भी देने लगता है –

'चल मिहनत कर, मिहनत से न डर
मिहनत से ही तू जीत समर
.....वे चढ़े हुए शोषण–रथ पर
उनके पहिये की धुरी पकड़'

और फिर एक सहज भाव प्रकट होने लगता है – 'किसकी जमीन भइया,

किसकी जमीन/जोते उसकी जमीन भइया, उसकी जमीन।'.... यह एक सरलीकृत व्याख्या हो सकती है पर उस समय का वस्तुगत यथार्थ यही था क्योंकि तब भूमिहीन किसानों, आदिवासियों की सारी लड़ाई इसी यथार्थ के इर्द-गिर्द घूम रही थी। भले ही इस लड़ाई में नक्सलवाद के दमन के नाम पर भूमिहीन किसान या आदिवासी मुठभेड़ के हवाले किये जा रहे थे या फिर युवा जो एक शोषणमुक्त समाज चाहते थे और जिनके सपनों का भारत कुछ और था। शांति सुमन के गीतों में आया लाल रंग वस्तुतः इसी क्रांति-कथा से जुड़ा रंग है चाहे वह लाल शिखरों के रूप में आया हो या लाल बुरूश के रूप में. ..... 'ये जलते बुरूश के जंगल/शिरा-शिरा दहकायें', इसीलिए अपने गीत 'बांटो तुम चिनगी' में वे चिनगारी को लाल बुरूश से जोड़ती हुई लिखती हैं –

'सड़कों पर बनते जुलूस, देखूं अब मेरे बेटे
लगता एक गलत आजादी, तेरे हाथ लगी
.....दहके लाल बुरूश, दहकते तुम भी मेरे बेटे
हवा घूमती बन शहजादी, बांटो तुम चिनगी'

और युवा पीढ़ी से कई-कई उम्मीदें पाल लेती हैं –

'माँ, तेरी बड़ी-बड़ी आँखों ने देखा एक बड़ा सपना
तेरा बेटा धरती की बेड़ियाँ जलाएगा
लाखों भूखे-नंगों का घर-बार बसाएगा'

(माँ का सपना)

शांति सुमन दरअसल इस शोषणयुक्त समाज से इतनी आहत हैं कि उन्हें लिखना पड़ता है – 'ऐसी छोटी बदरंग धरा/विश्वास नहीं होता।'.... और इसीलिए आगे चलकर वे अपने एक गीत में चम्पा के बदले महुआ के पेड़ उगाने की बात करती हैं तथा बदरंग धरा से बचने के लिए ऊँचा मचान बनवाना चाहती हैं – 'चम्पा के पेड़ नहीं बाबा, महुआ के पेड़ उगाना/जंगली सूअर न आये, ऊँचा मचान एक बनाना।' .....'एक सूर्य रोटी पर' में इस बदरंग धरा के कुछ और मार्मिक दृश्य हैं। जैसे शकुन्तला का रूपक गढ़ती ये पंक्तियां – 'कथरी ओढ़े/तालमखाने चुनती शकुन्तला/कन्धे तक डूबी/सुजनी की देह गड़े कांटे/कोड़े से बरसे दिन।'..... अब तक शकुन्तला का मतलब रहा है कि रूप और श्रृंगार का एक युग्म, जहां कोमलवदना शकुन्तला दुष्यन्त की प्रेयसी बनती है, पर यहां की शकुन्तला का रूप बिल्कुल अलग है – 'मुड़े हुए नाखून/ईख सी गांठदार ऊंगली/टूटी बेंट जंग से लथपथ/खुरपी सी पसली।'..... **नागार्जुन के यहां भी तालमखाने के तालाब हैं, पर तालाब के पानी में धंसकर कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती मुड़े नाखूनों और गांठदार ऊंगली वाली**

शकुन्तला नहीं है। आप सोच सकते हैं कि गीतकार के लिए इस रूपक को गढ़ना कितना कठिन रहा होगा। आप यह भी सोच सकते हैं कि शांति सुमन की संवेदना का स्तर क्या है ?

वैसे शांति सुमन के गीतों में करुणा का भी एक अलग रूप है। 'भीतर-भीतर आग' के एक गीत 'सूर्य को प्रणाम' में वे एक ऐसी पीढ़ी को सामने लाती हैं जो वास्तविक आजादी का सपना देखते-देखते बूढ़ी हो गयी। उस पीढ़ी ने इस आजादी के लिए एक लम्बी प्रतीक्षा की, संघर्ष किया पर उसके सपने पूरे नहीं हुए, सब कुछ वैसे का वैसा ही रहा – एक स्थायी जड़ता और फिर सूर्य को पाने के सपनों का काठ के बुरादों की तरह ढहते जाना और आजादी के मिथक का टूटना – 'एक सूर्य लाने गये बाबा/आज तक लौटकर नहीं आये/चक्कियां चलाती अपनी माँएं/आटा-आटा होकर रह गयीं/जोहती रहीं कुछ उनकी आंखें/काठ के बुरादे सी ढह गयीं'..... पर इसके बावजूद एक आग है जो भीतर–भीतर सुलगती रही है, धधकती रहने की एक लालसा है जो उम्मीदों को जगाती है –

'तुम पूरी पृथ्वी हो माँ
सपनों में रोज सुलगती
ऊपर-ऊपर ठोस मगर
भीतर से बहुत धधकती'

इस पूरी जीवन-यात्रा में न जाने कितने घाव लगे हैं, कितनी पीड़ा जगी है भीतर, कितना जल-जमाव हुआ है कोरों में बार-बार, पर निराशा का दौर समाप्त हो गया है, दुख अब हरा नहीं सकता, देह में गड़े कांटे अब विचलित नहीं कर सकते। गीतकार लिखती हैं –

'एक अधूरा गीत/अंतरा लिए सुलगता है
.....कोई मीठा परस हवा का/मन में जगता है
.....पर उदास मन में अब भी/एक सूरज उगता है'

और यही सूरज उन्हें आश्वस्त भी करता है कि –

'बीते दिन बहुरेंगे/पाखी लौटेंगे
.....इच्छाओं से भरी ताम्बई होगी कोंपल/रोये मन संवरेंगे'

और तब एक बार और स्मृतियां वाहक बनती हैं –

'टूटेंगी, टूटेंगी रातों की शाखें
कहती रहती थी अपनी बूढ़ी दादी
देखी नहीं कभी ऐसी कड़की आँधी'

यानी हवा में अकुलाहट है, बेचैनी है, संकल्प है, सपने भी हैं। हवा अब आँधी का रूप भी ले चुकी है, बस हवा का रुख मोड़ लेना है –

'तेजकर उड़ानों को/उड़ानों को तेजकर
धीरज रखो।..... साथ–साथ टूटेंगे
लोहे की जंजीरें/सोने के सिंहासन'

डॉ० शिवकुमार मिश्र ठीक ही लिखते हैं कि 'शांति सुमन के गीतों में उद्‌बोधन, आवेग और एक उमंग-तरंगित मन का उत्साह भर नहीं है, समय की विद्रूपताओं से उनकी सीधी मुठभेड़ और युगीन यथार्थ का वह खरा बोध भी है, जिसे जन और उसके जीवन-संदर्भों के बीच से उन्होंने पाया और अर्जित किया है।'.... शांति सुमन के चार दशकों के लेखन का इससे बेहतर मूल्यांकन दूसरा हो ही नहीं सकता।

अन्त में मुझे शांति सुमन का एक गीत बार-बार याद आ रहा है जिसे वे गोष्ठियों में मंच से अक्सर सुनाया करती हैं। इस गीत में चार पीढ़ियाँ मौजूद हैं – बूढ़ी दादी, बड़की काकी, नवकी भौजी तथा रानी बहना। दरअसल यह एक जीवन की पूरी विकास यात्रा है जिसमें युवा होती पीढ़ी हमेशा अपने बड़ों का सम्बल होती है और उसी पर शेष पीढ़ियों की आशा टिकी होती है। वे इस गीत को इसलिए सुनाया करती हैं चूंकि उनकी आँखों का सपना भी नयी पीढ़ी की यह रानी बहना है। 'छोटी होती रोटी' तथा 'अजगर सी भूख' से लड़ने के लिए वे इसी रानी बहना का हाथ पकड़कर खड़ी हैं।

●

शान्ति सुमन के गीत : संवेदना की सिराओं में आग

❑ डॉ० लक्ष्मण प्रसाद

संवेदना का सैलाब जब हृदय की कारा को तोड़कर रचनाकार को झकझोर देता है तो वह उस भावुक अनुभूति को शब्द देने के लिए व्यग्र हो उठता है। लेकिन उस क्षण की व्यग्रता शब्दरूप पाने के लिए रचनाकार से कुछ विशेष अपेक्षा करती है। इसके लिए उसे जीवन-जगत का व्यापक अनुभव हो। निजी अनुभूतियों में लोकानुभूति की स्थापना रचनाकार की विराटता का परिचायक है। प्रकृति की तरह निश्छल और वेदना की तरह भावुक हृदय ही गीत की कड़ियों में समय-संदर्भ को जोड़ सकता है अन्यथा वह निजता का एकांत आलाप बनकर रह जाता है, जिसे सुना तो जा सकता है और पढ़ा भी, लेकिन उसे पाठक या श्रोता की अनुभूतियों की वह संगति नहीं मिल पाती है, जो उसे लोक व्यापक परिधि तक ले जाती है। कल्पना जब जीवन-कथा बन जाती है तो वह सहृदय के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करती है और जीवन-कथा जब कल्पना बन जाती है तो वह रचनाकार की असफलता को प्रमाणित करने लगती है। **शान्ति सुमन के गीतों में जीवन-कथा और व्यापक लोकानुभूति का मणिकांचन संयोग मिलता है। इसी से उनके गीत निजता से आरंभ होकर लोकरंजकता की परिधि पर खड़े होकर पूरे वृत्त का अवलोकन करते हैं। यही लोक-वृत्त उनकी व्यापक कल्पना को ठोस धरातल प्रदान करता है। लोक-भावना ही उनकी संवेदना की सहचरी है, तभी तो वे अपनी चाह की साक्षी के लिए कोख में अन्न के दाने पालनेवाली फसलों को खड़ी करती हैं –**

तुमको चाहा कितना–कितना मैंने अपनी चाह में
सूरजमुखी खेत में झूमे, फसलें खड़ी गवाह में

घर-द्वार और खेत-बधार उनकी रचना के प्राणाधार रहे हैं। यह चेतना किसी भी रचनाकार को जन-समाज से जोड़कर उसको सुख-दुख की अनुभूति तक ले जाती है। शान्ति सुमन जानती हैं कि परकाया-प्रवेश के लिए अपनी काया में परदुखकातरतापूर्ण हृदय होना आवश्यक है। यही रचनाकार की अपनी जमा पूंजी है जिसको लेकर वह सृजन के लोक में उतरता है। जिसके हृदय में पर-पीड़ा की अनुभूति नहीं समाती वह घड़ियाली आँसू बहाकर लोक-लुभावनकारी दृश्य प्रस्तुत कर सकता है, लेकिन उसका स्वर पात खड़कने पर सड़किया आवाज से कुछ अधिक प्रभावशाली नहीं हो पाती है। 'भीतर-भीतर

आग' पुस्तक की भूमिका में उन्होंने स्वयं ही कहा है कि आज के 'इस जटिल समय में जब आदमी को लोहा बना देने की साजिश जारी है, बूढ़े कुछ कहने से कतराते हैं और बच्चे हँसने से। युवापीढ़ी के सपनों में जंगल उग आये हैं और कोई शातिर हाथ जब जंगलों को भी काटता है तो उनसे खून निकलता है – गीत इन तमाम परिस्थितियों पर अपनी आँख टिकाए हुए है।' संवेदना में इतना व्यापक संसार लेकर गीत की दुनिया में उतरनेवाली शान्ति सुमन का स्वागत दशकों पूर्व हुआ था अब तो सत्कार का दौर चल रहा है।

आत्म-साक्षात्कार के सवाल पर उनकी चिंता में वह लोरी नहीं है, जो शिशुओं को सपने सजाने के लिए सुनायी जाती है। उनकी लोरी अपनी परंपरागत पहचान से ऊपर उठकर यथार्थ के धरातल पर आ गयी है। खेतों में खटकर अपने खून-पसीने से फसलों के आँचल पर अनाज के दाने लिखने वाली माँएं अब अपनी लोरी में लाल परी का सपना नहीं भरती हैं। वह परंपरागत वृत्त की त्रिज्या को तोड़कर आगे निकल रही हैं। वह अपनी भूख से जितना परिचित हैं उतना ही उसके कारक को पहचानती हैं। उनके सामने कर्म-संस्कृति-विमुख ढोंगी समाज है, जो दान को पुण्य बताकर दूसरों का पेट काटता है। वह यह भी जानती है कि शोषकों का दैत्याकार बघनखा उसे अपने पंजे में उठा लेने के लिए घात लगाये बैठा है। इसलिए शिशुओं के प्राण में भविष्य की ऊर्जा भरना आवश्यक है। उसे मालूम है कि समय का लेख उसके ही हाथ से लिखा जाएगा। वही नये युग का निर्माता और बद्धमूल परंपरा का विनाशक होगा। तभी तो वह उसकी आँख में अधिकार और अस्मिता का सपना बोना चाहती है –

दान-पुन ढोंग सभी सही तू समझना
सपनों में रोटी के पेड़ भरे रखना

यहीं पर आकर शान्ति सुमन का अनुभव-संसार व्यापक दायरे में पहुँचकर जन-पक्षधरता को अपना लेता है। उन्हें मालूम है कि सत्ता और सियायत में पहचान बनाने वालों ने अपने ही स्वार्थ में मतदाता को जागरूक किया है। जनता सच और सियासत को समझने लगी है। यह बात अलग है कि वह जिस किसी को चुनकर भेजती है वही सत्ताधारी बन जाता है और जनाक्रोश आग की धधक बनने को आतुर हो जाता है। वह लावा की तरह अपने-आप सुलगते-पिघलते रहता है और अवसर आने पर उसे फूटते देर नहीं लगती है। इसी की संभावना है 'मजदूर माँ की लोरी' जो 'पठार के हस्ताक्षर' बनने को आतुर है। वह माँ जो अपने शिशुओं को सपने में रोटी के पेड़ बोने का गीत गाती है। उसका आतुर आक्रोश वक्त के साथ दो-दो हाथ करते हुए अपनी कर्म-संस्कृति का शिलालेख लिखता है। यही कर्म-संस्कृति हम निराला' की 'वह तोड़ती

पत्थर' में देखते हैं। **इस दृष्टि से देखा जाय तो शान्ति सुमन के अधिकांश गीतों में कर्म-संस्कृति का लोक-सौंदर्य मिलेगा। यही आज के साहित्य का जीवन-सौंदर्य है, जो उनके गीतों की अपनी पृष्ठभूमि है।**

हमें परंपरागत सौंदर्य और संस्कृति की परिभाषा बदलनी होगी। सौंदर्य को 'दृष्टि का पेय' से परे होकर आत्मा तक उतरना होगा और संस्कृति को पूज्योत्सव छोड़कर कर्मोत्सव में अन्तर्लीन होना होगा। आधुनिकता के आईने में देखी गयी मानव-अस्मिता की तस्वीर को परंपरागत सामाजिक संरचना की दीवार पर लगाना संभव नहीं है। समय विज्ञान और तकनीक की गति से आगे बढ़ रहा है और समाज उसके साथ अपना कदम-ताल मिला पाने में अब भी पिछड़ रहा है। आज कलमकारों के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह समय और समाज के बीच सेतु का काम करे। समय की रफ्तार और समाज की जड़ता से उत्पन्न द्वन्द्वात्मकता को बड़ी ही संजीदगी के साथ समझना होगा। तब कहीं जाकर वह समय-संदर्भ और समाज के बीच सामंजस्य कायम कर सकता है। **यहीं पर आकर शान्ति सुमन अपने समय के साथ दो-दो हाथ करती दिखाई पड़ती हैं। वे समाज की विडंबनाओं और विसंगतियों से परिचित हैं, तभी तो वे उसकी कमजोरियों को इंगित करती हुई उसे समय की गतिमानता से परिचित कराने के लिए कलम को हथियार बनाने को आतुर हैं। इसलिए वे अपने शब्दों की ऊँगलियों से समय की नब्ज पकड़ना चाहती हैं ताकि उसे जनोन्मुख किया जा सके। इस प्रयास में उन्हें आशातीत सफलता मिली है।** उनके गीतों में लोक जीवन की सोंधी महक के साथ-साथ उसकी गरिमा भी मिलती है। आसमान के बादल के साथ उसकी शीतल जलधारा भी प्रवाहित है। वे कल्पनालोक के गीतकार नहीं, यथार्थ धरातल की चिंतनशील अभिव्यक्ति बनी रहती हैं। धरती की धुन पर लिखे गये उनके गीत बँसवारी से होकर बहने वाली वह हवा है जिसमें बाँसुरी का स्वर सुनाई पड़ता है तो बाँसों की आपसी टकराहट से उत्पन्न कड़कड़ाहट की आवाज भी। जीवन की तलाश में वे कभी अपने छूटे हुए गाँव की देहरी याद करती हैं और कभी चौपाल में बैठकर आपसी सुख-दुख को बाँटते लोक-जीवन मे खो जाती हैं। उन्हें याद है आँगन का तुलसीचौरा, जिसके आसपास बाल-किलकारियाँ कल्लोल किया करती थीं। 'मौसम हुआ कबीर' से लेकर 'धूप रंगे दिन' गीत संग्रहों को देखकर कोई भी आलोचक मटमैले गाँव के आत्मीय घर का आँगन, उसकी देहरी, उसे स्पर्श करती गलियाँ और चौपाल की याद में खो जायेगा। फूल-कलियों का साहचर्य भी उन्हें लोककथा की तरह लगता है। समय के साथ हाथ मिलाते-मिलाते आज का त्रस्त आदमी पश्त

होकर बिखर रहा है, वैसे में जुही की टहनी अपने स्पर्श से जीवन को लोककथा में पिरोकर पल भर की छाँह दे जाती है –

एक सुनहरा स्वप्न-सरीखा
यह सुकुमार जुही की टहनी
दो पल ऐसे घुलमिल जायें
जीवन लोक कथा बन जाये

आधुनिक गीतकारों में शान्ति सुमन की पहचान कुछ भिन्न रूप में की जायेगी। इसका कारण यह है कि उनके गीतों में भावुकता और रागात्मकता के साथ लोक जीवन की पीड़ा अपनी पूरी पहचान के साथ सामने आयी है। उन्होंने जो कुछ देखा है उसे अपनी आत्मीयता की पहचान दी है। यही आत्मीयता उन्हें अन्य गीतकारों से अलग करती है। यही कारण है कि उनके शब्द महज जोड़े गये या भरपाई के सामान नहीं लगते, बल्कि उन शब्दों का अपना आत्म-धरातल है। जब हम 'खुशियाँ, नींद, सुबह' शीर्षक गीत की निम्न पंक्तियों को देखते हैं तो ऐसा लगता है मानो रचनाकार की चेतना में पूरा युग बोल रहा हो। पूरे युग की यही पुकार उन्हें श्रेष्ठ गीतकारों की पंक्ति में खड़ी करती हुई भी सबसे अलग कर देती है –

आसमान से सपने नहीं संभाले जायेंगे
लाल हुए लोहों से देखे-भाले जायेंगे

शान्ति सुमन की रचनाकार-दृष्टि से सियासत का स्याह गलियारा ओझल नहीं हो सकता है। हो भी कैसे, इसी के माध्यम से तो साम्राज्यवादी सामंती व्यवस्था का औद्योगिक व आवारा पूंजीवाद का नये चोले में पुनरागमन हुआ है। जनता तब भी त्रस्त रही है अब भी पश्त है। मस्त कोई है तो वह किसी न किसी रूप में राजनीति से जुड़ा हुआ अवश्य है। सवाल यह नहीं है कि जन-समस्याओं को उठाया जाता है या नहीं, प्रश्न यह है कि उन पर अमल कितना होता है। नाम और नारे के पीछे जनता कितने दिनों तक भागेगी। राजनीति के गलियारे से नारे तो उछाले जाते हैं, लेकिन ये नारे बिछे जाल में डाले गये दाने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। आखिरकार जीत तो नेताओं की ही होती है और जनता हार जाती है। इसी नियति पर टिका हुआ है जनता का मतदान। शान्ति सुमन की सतर्क आँखें इन सब को देखती हैं और समय आने पर उसके खोखलेपन को सार्वजनिक करती हैं। उदाहरण स्वरूप –

रोटी के हर बार सवाल उछाले जायेंगे
और नये कुछ नारे हम पर डाले जायेंगे

जहाँ परंपरावादी कविगण वसंत की बहार का बयान करते थकते ही नहीं, फूलों से लेकर पत्तियों और हवाओं से लेकर फिजाओं तक मे कल्पनाओं की कलियाँ खिलाने लगते हैं वहीं शाँति सुमन फागुन की कोख में 'रोटी के बीज' की कल्पना करती हैं।

राजनीतिक छल का कठोर सत्य देखना हो तो 'आटे सी पिसती माँ' शीर्षक गीत में देख सकते हैं – 'सफर बड़ा यह लंबा है इतिहास बड़ा संगीन/भूमिहीन को पट्टे पर है बंजर मिली जमीन।' राजनीति वह गाड़ी है जिसके पहिये की धुरी मीडिया के सहयोग से निर्मित होती है। झोपड़ी की व्यथा जब अखबार की कथा में ढलती है तो शान्ति सुमन का रचनाकार मन उसके भीतर की सच्चाई का पर्दाफाश करने लगता है। 'उजला अंधेरा' शीर्षक गीत में उन्होंने ठीक ही कहा है कि खबरों के दिन और भाषणों की रातें हैं। वस्तुतः अखबार के आईने में जिस प्रकाश की घोषणा मिलती है, सरजमीन पर आते-आते वह अमावश की रात में बदल जाती है। लेकिन जनता चुप नहीं है, 'सुलगी पसलियों की आँख में उबाल है।' 'अखबार पहनकर' शीर्षक गीत उनकी उस अनुभूति की अभिव्यक्ति है जिसे उन्होंने खुद की आँखों से देखा है। तभी तो जाना है कि प्रतिरोध के लिए लोग अब चुप नहीं है 'अंधेरो के विरोध में औजार तेज गढ़ते हैं।' इतना ही नहीं, अब तो 'फूल की खुशबू भी बनाती औजार।'

सब मिलाकर यही कहा जा सकता है कि शान्ति सुमन के गीत लोकमन से आरंभ होकर युग चिंतन तक की दूरियाँ तय करते हैं। उनमें ग्राम्य जीवन का ऐसा लोक-सौंदर्य है जो कर्म-सौंदर्य में ढलकर जीवन का प्रवाह बना रहता है। लेकिन बबुआ-बबनी गाँव छोड़ रहे हैं और 'दरवाजे का आम-आँवला घर का तुलसी-चौरा/इसीलिए अम्मा ने अपना गाँव नहीं छोड़ा।'

●

शान्ति सुमन के जनवादी गीत

❑ निर्मला सिंह

शान्ति सुमन का नाम नवगीत से जनवादी गीत-यात्रा के अनवरत साक्षी के रूप में प्रतिष्ठित है। गीत रचना के प्रति बचपन से ही उनमें रूचि रही। '60 से उन्होंने गीतों को समझना शुरू किया और '65 तक आते-आते उनकी रचनात्मकता नवगीत-चेतना से अभिषिक्त हो उठी। 'ओ प्रतीक्षित' (1970) और 'परछाईं टूटती' (1978) इनके दो नवगीत-संग्रह प्रकाशित हैं। जिन दिनों नवगीत की पहचान के लिए पूरे हिन्दी साहित्य में विचार-विमर्श चल रहा था और नवगीत का उत्स खोजने के लिये रचनाकार अत्यंत आकुल दीख रहे थे, उन दिनों शान्ति सुमन समर्पित भाव से नवगीत-रचना में लीन रहीं। झण्डाबरदारी, विज्ञापन अथवा चर्चा में होने की कोई बेचैनी उनमें नहीं थी। इसलिये जब नवगीत-आन्दोलन पर चर्चाएँ हो रही थीं और बहुत कम नवगीतकारों के संकलन प्रकाशित हो पाये थे, 1970 में शान्ति सुमन का पहला नवगीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' के नाम से आया। स्मरणीय है कि तब ठाकुर प्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', उमाकांत मालवीय, रमेश रंजक के ही नवगीत संग्रह छपकर आये थे और शेष चर्चित और नये नवगीतकार पत्रिकाओं में लिख रहे थे। गीत के आलोचकों ने शान्ति सुमन के नवगीतों में 'अहसास की सच्चाई' देखी है। उनके गीतों में भावात्मकता अनाहत रूप से विद्यमान मिलती है। पहले की तरह आज भी 'ओ प्रतीक्षित' और 'परछाईं टूटती' के गीत जिन्दगी से हिस्सेदारी के गीत माने जाते हैं। अनेकानेक सजीव, सार्थक और ताजे बिम्बों और उपमानों के कारण शान्ति सुमन के गीत अलग से पहचाने जाते हैं।

सन् '75 से शान्ति सुमन भावनालोक से निकलकर विचारों के संसार में प्रवेश करती हैं। यह अकारण नहीं है। बचपन में गाँव में बीते दिनों के अनुभव जिनमें – गाँव के सारे अंधकार – किसानों और छोटे मालिकों के संघर्ष, पीड़ा, घुटन, तनाव, कुंठा, अशिक्षा, गरीबी आदि सभी बीज रूप से उनके अवचेतन में विद्यमान थे। समय पाकर वह विचारों के स्रोत बन गये और अपना दाय माँगने लगे। फलस्वरूप 'सुलगते पसीने' 1979 और 'पसीने के रिश्ते' 1980 जनवादी गीतो के सहसंकलन प्रकाश में आये। शान्ति सुमन को पता है कि नागकेसर की गंध कैसे समकालीन भयावह यथार्थ से जुड़ गई। कैसे 'कबूतर के पंखों पर उतरी भोर-वाले बिम्बधर्मी गीत शोषित-पीड़ित जनता के दुख-दर्द में बदल गये। गीतों में सुआपंखिया शाम बुननेवाली शान्ति सुमन शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ

खड़ी हो गईं। जतन से जुगाये सपनों के पोर-पोर मेहनतकश जनता के जीवन-संघर्ष के नाम हो गये।

'मौसम हुआ कबीर' लिखने से पहले जनवादिता के संकेत उनके प्रथम गीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' में भी मिलते हैं –

रोज नये दुख, खुशियाँ बेपहचानी
मिली नहीं सीपी तक
लहरें हमने छानी

अथवा

सिर्फ औपचारिक हैं, परिचय प्रणाम
चाय पिला जोड़ें सब चीनी के दाम
अँधी दीवारों से टकरा निरूपाय
लँगड़े सुधारों के काँपते कहर
पत्थरों का शहर

इसी तरह 'परछाईं टूटती' के गीतों में कुछ अछूता प्रस्तुत करने की एक बेहद वेगवती-अप्रतिहत तड़प के बावजूद जन-साधारण के प्रति लगाव दीखता है और बहुत कोमल क्षण में भी जीवन-यथार्थ के प्रति उनकी ललक उजागर होती है –

राखों के ढेरों में चिनगी सुलगाये
मिट्टी की पर्त तोड़ मन से अँखुआये
वर्षा की धार खेत में कहे गये हम

अथवा

बाहर से झुलसे पर भीतर से भरे हुए
कसी हुई मुट्ठी को अस्त्र से किये हुए
अपनी ही शर्त स्वाभिमान से जिये हम

इन पंक्तियों का संकेत भी उस धार की ओर ही होता है जिस धार को हम 'मौसम हुआ कबीर' में अबाध गति से प्रवाहित देखते हैं। यह धार है श्रमजीवी संघर्षरत जनता के प्रति जागरूक पक्षधरता की। यह वक्तव्य बहुत सही है कि 'मौसम हुआ कबीर' के गीतों में धार है – 'धार इसलिये कि गीतकार जनवादी गीत-रचना से रू-ब-रू वाकिफ है।'

'मौसम हुआ कबीर' शान्ति सुमन की पाँचवीं काव्यकृति है। इसमें गीतकर्त्री ने शोषकों के खिलाफ दलितों और पीड़ितों को एकजुट होने के लिये आगाह किया है। इस अर्थ में शान्ति सुमन हिन्दी कविता की अकेली गीत कवयित्री हैं जिनके गीतों में शोषण और उत्पीड़न को उजागर किया गया है। जनवादी

गीतों को जनता के बीच जाकर जिस मूल चेतना को रोपना है, शान्ति सुमन के गीत इसमें पूरी तरह सक्षम हुए हैं। गीतों के आलोचकों से अधिक ये गीत जनता के बीच अपने पाठकों में स्वीकृत और लोकप्रिय हैं। इस संग्रह में मध्यवर्गीय संवेदनायें नहीं मिलतीं, अपितु जन-क्रांति की सूचनायें बार-बार मिलती हैं –

फूटता सैलाब
आँधी चल रही है
हम लगे पहचानने
दुश्मन रगों को
और बेहतर जानने
बढ़ते पगों को
एक सी है आग
आँधी चल रही है

व्यवस्था के मकड़जाल को तोड़ने के लिए जनता अपनी शक्ति संगठित करते हुए आह्वान करती है –

रानी के पास हैं बहुत धन, हाथी-घोड़े
कौन है जो रानी के रथ को पीछे मोड़े

जनता को इस बात का अहसास हो गया है कि उसकी असली समस्या क्या है। इससे वह परेशान भी है, पर कातर होने की जगह वह अग्नि-बीज बनना चाहती है –

कंधे पर से नहीं उतरता कभी करज का बोझ
तानाशाही के पुर्जे को अब तो लेंगे खोज
किन्तु महाजन हमें सताने लगता है हर साल
भैया, रोटी हुई सवाल

महँगाई ने गरीबी को और भी दयनीय बनाया है तथा अत्याचार के और भी अवसर जुटाये हैं –

थाली उतनी की उतनी ही, छोटी हो गई रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
फेन फूल से उठे, मगर राखों के ढेर हुए
धँसी हुई आँखों के किस्से हम मुठभेड़ हुए
भूख हुई अजगर-सी, सूखी
तन की बोटी-बोटी
कहती बड़की काकी अपने गाँव की

स्थिति यह है कि जिन गाँवों में सीधी पगडंडियाँ नहीं जातीं, उन गाँवों, कसबों में राजनेताओं, अफसरों, पुलिस, महाजनों की खूब चलती है। इधर चूल्हे नहीं जलते, उधर पैसे पानी की तरह बहते हैं। शान्ति सुमन के गीत का यह व्यंग्य द्रष्टव्य है –

घर के सर्द हुए चुल्हे तो
इससे क्या बदहाल हुए
राज कुँवर की अगवानी में
कितने मालामाल हुए
पानी की कीमत पूछेंगे प्यासे नहीं मरेंगे लोग
पूँछ उठाये मछली जैसे खुद से जिक्र करेंगे लोग

अथवा

इससे क्या आगों की धमकी, मिली आज झोपड़ियों को
बात-बात में करें उतारा हम आँखों में परियों को
कागज के दस्तावेजों से अपनी उमर गढ़ेंगे लोग
पत्थर पर भी खुदी रोटियों की खातिर ललचेंगे लोग

फिर भी यह हौसला, यह आस्था और विश्वास जनता की आँखों में जीवित है कि काली रातों की शाखें अवश्य टूटेंगी क्योंकि –

फिर से अबकी बार हवा यह तेज हुई
कसी हुई मुट्ठी को ठोक-सहेज गई
और अँधेरे में करती अब रोशनी सुराखें

शान्ति सुमन को बदलते हुए समय की पहचान भी है। इसलिये बदलाव के लिये वे कृतसंकल्प हैं। वे बड़े सशक्त आत्मविश्वास भरे स्वर में कहती हैं –

केवल कहना देह हमारी नंगी, पेट है खाली
इससे कभी न आ सकती है, जीवन में खुशहाली
काटो अँधकार का जंगल, फूंको नया अलाव

शान्ति सुमन के गीतों ने सचमुच गीतों का मौसम बदल दिया है। गीतों में व्यवस्था-विरोध सचमुच एक नारी की कबीर-चेतना अथवा विद्रोह मुद्रा ही है। गीतकर्त्री ने वस्तुपरक से इन गीतों में सामाजिक विषमताओं एवं विद्रूपों को अनावृत किया है। इन गीतों को पढ़ते हुए हम सहज ही आदमखोर से भी रू-ब-रू होते हैं। शान्ति सुमन ने सचमुच ही इन गीतों को लिखने का विचार पालकर एक जोखिम का काम किया है। ऐसा है कि ऐसे वस्तुगत यथार्थ को लिखते हुए भी वे संवेदनाओं से रहित नहीं हैं। वह अप्रतिम आत्मीयता ही है जिसके कारण शान्ति सुमन इन गीतों को रचने

में सक्षम हुई हैं। विचारों ने संवेदना के धरातल पर सिर्फ खाद-पानी का काम किया है। अपनी जमीन पर ही उन्होंने इन गीतों की फसल उगाई है। तभी वे लिख सकी हैं –

भूख लिये रोटी के सपने
झुकी हुई पेटों पर अपने
पाँखें खुजलाती हैं चिड़िया काँट के वन में

भूख संवेदना का हरण तो करती है, पर आदमी को काठ नहीं बनाती। क्योंकि काठ बन जाने पर कोई सपना नहीं आता और आनेवाले समय को अपने पक्ष में करने के लिये इतनी कोमलता जरूरी होती है –

तेरी माँ धरती सी सपना बुनती खुशहाली का
बोझ उठाती है छाती पर, दुखती बदहाली का
अँतड़ी की ऐंठन में खोजें हम इस जीवन के माने
जब भी चमका करे तुम्हारे हाथों में हँसिया बेटे

कई आलोचकों को इस बात की नाराजगी है कि शान्ति सुमन ने नवगीत को छोड़कर जनवादी गीत का फलक स्वीकार कर लिया है। कुछ ने ऐसा भी लिखा कि जनवादियों ने उन्हें उचक लिया है। 'मौसम हुआ कबीर' में डॉ० रेवतीरमण ने 'लाल कवच पहने गीत' शीर्षक से शान्ति सुमन के गीतों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनमें भी एक स्थान पर यह उदास विरोध दीखता है कि ''उनमें माँ की लोरी और पहरुए की प्रभाती गेय रूप में सहज और प्रभाव के स्तर पर अक्सर अचूक रही है। कहीं-कहीं उत्सवधर्मी आयोजनों की स्नेहिल सामाजिकता भी। **उनकी तीर की तरह नुकीली, अचूक गीत-प्रतिभा शुरू में अत्यंत चमकदार थी, आज भी है जिसका रचनात्मक विन्यास 'नवगीत' से लगाकर 'जनगीत' और 'जनवादी' गीत का परचम लहराने के लिए किया गया।''** इससे पूर्व डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने अपने नवगीत दशक-1 से शान्ति सुमन के स्वीकृत गीतों को बाद में इसलिये लौटा दिया कि वे नवगीत से अलग जनवादी गीत लिखने लगी थीं। इसकी सूचना उन्होंने विधिवत नवगीत दशक-1 की भूमिका में दी है। इसलिये जब डॉ० रेवतीरमण यह लिखते हैं कि **''उनमें कम्युनिस्ट कही जानेवाली राजनीति से जुड़ने की लालसा, वामपंथी रुझान और कौशल निश्छल और सुघड़ हैं''** तो यह गीतकर्त्री की रचनात्मक निष्ठा से उनकी सहमति ही है और गीतों में उत्तर प्रगतिवादी एकरसता की अनुपस्थिति का प्रमाण भी। समस्त आग्रहों के बावजूद गीतों के लिये जो उनकी स्पष्ट और खुली समझ है उसके अनुसार वे मानते हैं कि ''गरज कि प्रयोगशीलता

प्राणवायु की तरह है इन गीतों में और कवयित्री का मन पुनः–पुनः समय के साथ चलता है।''

बहरहाल जनता की स्वीकृति, समय की स्वीकृति इन गीतों की मूल पूँजी है। इन गीतों में लोकभाषा की मिठास जहाँ-तहाँ भरी हुई है। लोक-संस्कृति और लोक-मुहावरों की संहिति ने इन गीतों को जन-जीवन से और भी आत्मीय बना दिया है। जन-जीवन के परिवर्तनों को कहीं-कहीं लोक धुनों की निकटता से व्यक्त करने के कारण उन्हें आत्मसात् करना और भी सहज हुआ है।

कहना चाहती हूँ कि शान्ति सुमन ने यह तो नहीं सोचा होगा कि जनवादी गीत लिखकर वे अपने नवगीत के बिम्ब को, अपने ही बिम्ब को तोड़ रही हैं। संवेदना, आसक्ति और प्रेम से जनवादी गीत रहित तो नहीं है। यदि ऐसा नहीं है तो जनवादी गीत पर फिर से विचार करने की जरूरत है। मैं कहना चाहती हूँ कि आधी दुनिया, और आधी आबादी, आधी जमीन की ओर से 'मौसम हुआ कबीर', 'एक सूर्य रोटी पर', 'धूप रंगे दिन' आदि व्यवस्था-परिवर्तन के लिये शान्ति सुमन की गीतात्मक पहल हैं और ठीक समय पर होने के कारण यह पहल अत्यंत प्रासंगिक है।

●

सु-मन सुमन

❑ डॉ० अशोक प्रियदर्शी

डॉ० शांति सुमन के गीतों के जादू से तो वर्षों से अभिभूत था, किन्तु उनके प्रत्यक्ष दर्शन का सुयोग बहुत बाद में मिला, और मैं चकित-विस्मित! एक मुकाम पा चुका गीत-हस्ताक्षर, देश भर में अपनी पहचान बना चुकी गीत-धर्मा कवयित्री और इतनी सहज, इतनी सरल, इतनी आत्मीय! मुझको लगा, किसी-किसी को मिली संज्ञा उसके व्यक्तित्व से तदाकार हो जाती है। मूल नाम शांतिलता में उन्होंने थोड़ा-सा ही अंतर किया। लता-वृंत पर सुमन तो खिलने ही ठहरे! उनके साथ आप बैठें तो अजीब-सी शांति का अनुभव करेंगे। **मैं सोच नहीं पा रहा था कि कोसी के कछार की, मिथिलांचल के गाँव-देहात की श्रमश्लथ कन्याओं की पीड़ा, दूर कमाने गये पति की प्रतीक्षा में दिन गिनती औरतें, पीड़ित-मजलूम, जिनके घर दोनों जून चूल्हा सुलगना मुश्किल है, गोया 'जन' या जन-जन की आँखों की कोरों पर ठहर गये अश्रुविंदुओं को पढ़ने, नया गढ़ने का कौशल और हौसला रखनेवाली इस कवयित्री का व्यक्तित्व परचमी क्यों नहीं दिखता! शिव की तरह गरल पीकर अमृत बाँटने की कला कब-कहाँ सीख ली इस कवयित्री ने ? और भाषा ? किसी कदर बाबा नागार्जुन में इस मृत्तिकागंधी भाषा को पाया जा सकता है, या फिर नयी कविता के कुछ हस्ताक्षरों सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदारनाथ अग्रवाल आदि की कविताई में।** मुझको शांति सुमन के मूलनाम के उत्तरार्ध और उसके किंचित् रूपांतरण की संगति तब समझ में आयी। प्रतिकूल पवन के आघात को सहती हुई लता आंदोलित तो होती है, किन्तु हम उसकी पीड़ा नहीं पहचानते, उसके लचीलेपन और उसमें खिले सुमन के सौन्दर्य और सुवास में हम भटक जाते हैं। शांति सुमन अंतःसलिला सरस्वती-सी हैं, आवेग-प्रवाह दीखता नहीं, उसकी पवित्र उपस्थिति को हम महसूसते भर हैं।

कई लोगों का मानना यह है कि हमें किसी साहित्यकार के व्यक्तित्व या उसके व्यक्तिगत जीवन से क्या लेना-देना, मतलब उसके द्वारा रचित साहित्य से होना चाहिए। मेरी विनम्र सम्मति में यदि लेखक के जीवन को जानते हैं तो उनके रचना-कर्म में हमारा प्रवेश सुगम होता है। 'निराला' के जीवन-संघर्ष को जानें, तो 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' की समझ बेहतर बनती है। मन्नू जी की पीड़ा को पहचानें, तो 'आपका...बंटी' आइने की तरह झलक जाता है, मोहन राकेश को अनीता जी की 'चंद संतरें और' के जरिये जानें, तो 'आधे-अधूरे' पूरा-पूरा हमारे जेहन में आ जाता है। सो डॉ० शांति सुमन के गीतों

(नवगीतों या जनगीतों) की आत्मा की पहचान के लिए उनके सहज स्नेही, निश्छल, परदुःखकातर व्यक्तित्व को पहले पहचानने और उससे आपको परिचित कराने का विनम्र यत्न किया।

डॉ० शांति सुमन के गीतों को पढ़ते-सुनते हुए जब हमारी आँखों में आम जन की पीड़ा के रूप उभरते रहते हैं तभी यह आश्चर्य होता है कि यह विदुषी कवयित्री अपने गँवई मन, सरोकार और संस्कार को बचाये रही। अभिधात्मक विवरणों के बीच लाक्षणिक-व्यंजक संकेत छोड़ जाने की कला भी कवयित्री खूब जानती हैं। उनका एक प्यारा-सा गीत है, बहुचर्चित – 'दरवाजे का आम–आमला/घर का तुलसी-चौरा/ इसीलिए अम्मा ने अपना गाँव नहीं छोड़ा...।' यह गीत पढ़ते-सुनते हुए अमराई के बीच के ग्रामीण आवास का बिम्ब तो आँखों के आगे उभरता ही है, नयी-पुरानी मान्यताओं-मूल्यों का अंतर भी सामने आता है। महानगर के चाकचिक्य में व्यस्त-मस्त युवा के लिए गाँव अभिशप्त क्षेत्र है, आँगन और दरवाजे के पेड़-पौधे घर की शोभा में व्यवधान और तुलसीचौरा एक फिजूल-सी चीज, घर का एक कोना घेरनेवाला झाड़। युवा के लिए पुरखों की याद जुगाने का महत्व भी नहीं रह गया है और घर की बूढ़ी अम्मा के लिए पतिगृह की विरासत सर्वाधिक मूल्यवान् है। आम-आमले के पेड़ उसकी जिन्दगी के हिस्से हैं, और गाँव छोड़ देगी वह तो तुलसी के बिरवे को पानी कौन देगा, सँझौती कौन दिखाएगा ? इसी के साथ पर्यावरण की सुरक्षा, वृक्षों की रक्षा का एक प्रच्छन्न संकेत भी है। यों भी आम-आमला जैसे फल अम्मा के मर्तबान में अँचार की शक्ल में जुगाये जाते हैं। गोया डॉ० सुमन एक छोटी-सी, सीधी-सी बात कहती हैं, किन्तु इसमें संवेदना ऐसी कि पारंपरिक भारतीय माँ अपने पूरे वजूद के साथ सामने आ जाती है और अर्थ की परतें ऐसी कि पूरी ग्रामीण जीवन-शैली और अर्थ-व्यवस्था का तिलस्म खुल जाता है। कहने का यही कौशल, यही जन-चेतना और करुणा कवयित्री को कतार के गीतिधर्मा कवियों से बिलगाती है।

शांति जी का एक गीत है 'एक सूर्य रोटी पर', इसी नाम के संकलन में – 'यह भी हुआ भला/कथरी ओढ़े तालमखाने/चुनती शकुन्तला/ कंधे तक डूबी/सुजनी की देह गड़े काँटे/कोड़े-से बरसे दिन/जमा करे किस-किस खाते/अँधियारी रतनार प्रतीक्षा/बुनती चन्द्रकला/मुड़े हुए नाखून/ईख-सी गाँठदार उँगली/टूटी बेंट जंग से लथपथ/ खुरपी-सी पसली/बलुआही मिट्टी पहने/केसर का बाग जला/बीड़ी धुकती ऊँघ रहीं/पथराई शीशम आँखें/लहठी-सना पसीना/मन में चुभतीं गर्म सलाखें/एक सूर्य रोटी पर औंधा/चाँद नून-सा गला।' यह गीत पूरा का पूरा मैं पढ़ गया, वह इसलिए कि टुकड़े में तसवीर पूरी नहीं आती। तालमखाने से भरे तालाबों

के क्षेत्र की ही हैं मूलतः शांतिजी। किशोरियों-युवतियों को कंधे-कंधे तक पानी में डूबकर अमीरों के लिए एक मेवा जुटाती हुई बारहा देखा होगा कवयित्री ने। उनमें जगी होगी वैसी ही वेदना जैसी 'आश्चर्य' (?) की एक इमारत 'ताज' को देखकर साहिर के मन में जगी थी। जिन मजदूरों ने 'एक शहंशाह' के प्रेम को अमर कर दिया उन्होंने भी तो कभी किसी को प्यार किया होगा, लेकिन मुफलिसों को अपने प्यार को परिणति तक पहुँचाने का अवकाश नहीं होता। एक थी शकुन्तला, ऋषि कण्व की पालिता, मेनका-गर्भ से जन्मी, माँ-सी ही अपरूप शकुन्तला जो महाराज दुष्यंत को अपना हृदय दे बैठी थी और महाराज जिसे देखते ही सुध-बुध खो बैठे थे। तालमखाना चुननेवाली/वालियों को 'शकुन्तला' कहकर, एक साथ कई-कई संवेदी कवियों का कोलाज रच दिया है कवयित्री ने। इन तालमखाने की किसानिनों को रोटी जुटाने की जुगत लगाते अपने दुष्यंतों से मिलने का क्षण-एक का अवकाश नहीं, प्रेम का कोमल गांधार राग उनके हृदय में भी फूटता ही होगा। **फिर इस शकुन्तला या इन शकुन्तलाओं के दैन्य की पूरी तसवीर उकेरती हैं कवयित्री। यों कि तलैया में सुजनी ओढ़कर कंधे तक डूबी उनकी उँगलियाँ मखाना तोड़ते ईख की गाँठ सरीखी हो गयी हैं और टूटे तन के लिए कवयित्री एकदम टटका रूपक खड़ा करती है – पसलियाँ, मानो बेंट-टूटी, जंगसनी खुरपी...। विरल है यह शब्द-साधना, यह संवेदना, जो पाठकों की आँखें गीली कर दे। कवयित्री के ऐसे गीतों को पढ़ते हुए कवि बच्चन याद आ जाते हैं – 'पीड़ा में आनंद जिसे हो, आये मेरी मधुशाला!'**

नयी कविता, जिसके ही समानांतर खड़ा हुआ नवगीत के साधकों ने अनछुए बिम्ब और उपमाओं की रवायत चलायी। **भवानी बाबू की ये पंक्तियाँ भूलने-जैसी नहीं हैं – 'बूँद टपकी एक नभ से/किसी ने झुककर झरोखे से कि जैसे हँस दिया हो/हँस रही-सी आँख से जैसे किसी को कस दिया हो...।' वर्षा की बूँद का अहसास वैसा जैसे झरोखे से झाँकती हुई दोशीजा की उन्मुक्त खिलखिल। और नयी कविता की इन पंक्तियों के साथ या बाद शांति सुमन की ये गीत-पंक्तियाँ पढ़ें – 'शिशु की पहली गर्म साँस/जैसी अगहन की धूप/आती है तो किलकारी जैसी लगती है...। कवयित्री को अभीष्ट है अगहनी धूप के रोमिल, सुकून पहुँचाने वाले स्पर्श का विवरण और धूप की इस गरमाहट को शब्दायित करने के लिए शिशु की पहली गर्म साँस का स्पर्श याद आता है।** प्रसव की दुःसह वेदना के बाद जब प्रसूता की गोद में आता है शिशु तो उसकी पहली गर्म साँस की छुअन भर से उसकी सारी तकलीफ काफूर हो

जाती है। रात भर की ठिठुरन के बाद अगहन की सुबह-सुबह धूप वैसा ही आह्लाद, वैसा ही चैन देती है। प्रकृति-चित्रण की यह बारीकी, जिसके साथ वात्सल्य एकमेक हो गया है। जिसने प्रकृति का साहचर्य न निबाहा हो, जिसके हृदय में वात्सल्य की निर्झरिणी न उमगती हो वह ऐसी उत्प्रेक्षा कर ही नहीं सकता। **और गीतकारों से शांतिजी की यह और ऐसी ही मोरपंखी पंक्तियाँ उनको अलग खड़ा करती हैं, थोड़ी ऊँची जगह पर।**

समांतर संवेदनाओं को पकड़ने का खास कोमल-सा कौशल साधा है शांतिजी ने। माँ और धरती माँ, सर्वसहा धरती और सर्वसहा माँ। धरती के वक्ष से निकलते हैं अनाज के दूधिया दाने, माँ के आँचल से बरसती है वात्सल्य-उमगी उफनती दुग्ध-धार। सो पीड़ा सहती हैं दोनों, लेकिन अपने बच्चों को प्रसन्न देखकर दोनों का ही हृदय यों जुड़ा जाता है कि भूल जाती हैं अपनी सारी पीड़ा – 'दुख से मँजी हुई यह धरती/सोना-सोना है/हरियाली से उमगा उसका/कोना–कोना है.. अपने से अपनों को देकर/अपनापन की बातें/थोड़ा-बहुत बचा लेना/अपने हिस्से की रातें/माँ जैसी माँ की आँखें/फूलों का दोना है...।' शांति सुमन ही माँ और धरती माँ की आँखों में सुमनों का दोना देख सकती हैं। जो है वह तो है, किन्तु देखने वाली आँखों के भाव से सारा परिदृश्य बदल जाता है।

अब शांतिजी के गीतों में डूबूँ तो उसमें उतराता रहूँ – '...तिरे, जो बूड़े सब अंग', किन्तु मन को मनाता हूँ और बातों को समेटता हूँ।

जब-जब मैं श्रीमती सुमन से मिला हूँ, उनके नेह-छोह की वर्षा में भींगता रहा हूँ। उनके परिहास में हल्के से 'मान' का जो रंग होता है वह उन्हें और आत्मीय और स्नेही बना देता है। जमशेदपुर के एक कवि-सम्मेलन में वे अध्यक्षता कर रही थीं। आज का अध्यक्ष सच का अध्यक्ष यों होता है कि उसे चुप सबकुछ देखना ही होता है, जो करना है वह संचालक और प्रबंधक कर रहे होते हैं। अध्यक्ष की विवशता यह कि उसे आखिर तक ठहरना है और अंत में अपने गीत सुनाने हैं या काव्यपाठ करना है। उस शाम प्रबंधन के संकेत पर संचालक महोदय मंच से बाहर के स्थानीय कवियशः प्रार्थियों को बुलाते जा रहे थे और रात गहराती जा रही थी। सहने की सीमा पार करने के बाद शांति जी ने हँसते हुए सिर्फ इतना कहा, 'अव्वल तो मैं मंच छोड़कर भाग जाऊँगी और नहीं तो अध्यक्षता फिर न करने के लिए कसम खा लूँगी।'

ऊँचे व्यक्तित्व की यह छोटी-सी महिला और उनका व्यंग्य-बोध देखिए। उनका कुछ काम मेरे जिम्मे उधार पड़ा था। मैं अलसाया था। एक दिन उनका फोन आया, 'पूरा हुआ काम ? राँची कोई बहुत दूर नहीं है जमशेदपुर से!' और

फोन पर ही निश्छल खिलखिलाहट की आवाज। जमशेदपुर से राँची आना तो दूर, मुझे नहीं लगता कि अपने दरवाजे तक भी जाकर किसी को कोई सख्त बात कहने की हिम्मत उनमें है। बल्कि बेहतर यह कहना होगा कि तल्खी उनके व्यक्तित्व और उनके स्वभाव में लेश-भर भी है ही नहीं।

फिर से शांति जी के गीत गुनगुनाने की इच्छा हो रही है, गो वे स्वयं अत्यंत सुकंठ हैं। उनके गले से निकलते गीत शांति बरसाते हैं। यह और बात है उन गीतों को थोड़ा ठहरकर पढ़ें तो उनके भीतर की आग से आपका साबका पड़ता है – 'ओ रे मौसम पूस-माघ के/जब भी आना गाँव में/ढेरों बंद लिफाफे लाना/शहरों से पंजाब के/सुजनी खाँस रही है माँ की/बहनों की अँगिया मटमैली/सूने खलिहानों की छाया/भाभी की आँखों में फैली/बाबा ने चौपहरा पूजा रख दी मन में दाब के...।' शांति जी की उच्छल हँसी के पर्दे के पीछे छिलते रहे पाँवों की वेदना है – 'ऊपर-ऊपर हँसी देख लो/भीतर-भीतर रोना।' – यों ये पंक्तियाँ किसी अन्य कवि की हैं, जो शांति सुमन के व्यक्तित्व पर, मेरी विनम्र दृष्टि में एकदम फिट बैठती हैं। कौन जाने, प्रकृति की गोद को अपने गीतों में कभी विषय के रूप में और कभी बिम्बों के रूप में जो उकेरती हैं – वह शांति की तलाश के लिए है।

अंत में देश-ख्यात विद्वान् समालोचक डॉ० शिवकुमार मिश्र की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करके बात खत्म करूँ। इससे बेहतर टिप्पणी शायद ही की जा सके – 'शांति सुमन के गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है, साधारण में असाधारणता के, हाशिये की जिन्दगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन-संदर्भों में महाकाव्यों के वृत्तांत पढ़ना है। स्वानुभूति, सर्जनात्मक कल्पना तथा गहरी मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे ये गीत अपने कथ्य में जितने पारदर्शी हैं, उसके निहितार्थों में उतने ही सारगर्भित भी। **मुक्तिबोध ने कविता को जन-चरित्री के रूप में परिभाषित किया है। शांति सुमन के ये गीत मुक्तिबोध की इस उक्ति का रचनात्मक भाष्य हैं।' डॉ० शिवकुमार मिश्र** – **'धूप रँगे दिन'** (शान्ति सुमन) में लिखित सम्मति से उद्धृत। और इन गीतों की रचनाकर्त्री का व्यक्तित्व स्वयं में एक मुकम्मल गीत है।

मेरी शुभकामना है, ईश्वर से प्रार्थना भी कि शांति जी शत शरद देखें और अपने गीतों के द्वारा शारदीय सुषमा बिखेरती रहें।

●

शांति सुमन के गीतों में ग्राम्य संवेदना

❑ कनक लता रिछि

कोमलमना कवियों के गीति-संसार का ग्राम्य जीवन से स्वाभाविक लगाव रहा है। नैसर्गिक निखार लिए ग्रामीण प्रकृति और उसमें पलते सहज स्वाभाविक जीवन को गीतों के तरल-सरल लयात्मक कलेवर में आकार देने की एक लंबी परंपरा रही है। वैदिक ऋचाओं के झरोखों से झांकती ग्राम्य प्रकृति से लेकर जनवादी तेवर लिए आधुनिक नवगीतों में उपस्थित बहुआयामी ग्रामीण जीवन तक का सफर गीत की संवेदना से ग्राम्य जीवन के हर्ष और वेदना के चिर संबंधों की गवाही दे रहा है। हिन्दी नवगीत की ख्यातिलब्ध गीतकार डॉ० शांति सुमन इसी परंपरा की एक सशक्त कड़ी हैं। पिछले चार दशक से गीत सृजन में रत डॉ० शांति सुमन के शताधिक गीतों में व्यापक जीवनानुभूतियाँ और विषय वैविध्य मौजूद हैं, किन्तु ग्राम्य संवेदना से अनुप्राणित गीतों ने उन्हें अपने साथी गीतकारों के मध्य एक विशिष्ट पहचान प्रदान की है।

डॉ० शान्ति सुमन के गीत उस वर्षाकालीन व्योम की मानिंद हैं जिसमें कहीं ग्राम्य जीवन की स्याह घटा तो कहीं मनोरम इन्द्रधनुषी छटा उपस्थित है। निरंतर जटिल होते जा रहे समय की पदचाप सुनाता उनका गीत बड़े बेबाक अंदाज में खुरदरा ग्रामीण यथार्थ बयां करता है तो कहीं गीतों की कमसिन काया के अनुरूप ग्रामीण प्रकृति की सुरम्य सुषमा और ग्रामवासियों में पलते मधुर-तरल संवेदनों को अभिव्यक्त करता है। यथार्थ और कल्पना का संतुलन साधने में कुशल उनकी परिपक्व कवि-दृष्टि ग्राम्य जीवन में व्याप्त सुंदरता और विरूपता दोनों की सही पहचान करने में पर्याप्त सक्षम है। आत्माभिव्यक्ति, लयात्मकता, संक्षिप्तता आदि विशेषताओं से युक्त गीत विधा में व्यापक ग्राम्य जीवन के जटिल सत्यों की अभिव्यक्ति एक दुरूह कार्य है जिसे डॉ० शान्ति सुमन की कौशलपूर्ण लेखनी ने बड़ी सफलतापूर्वक साधा है।

पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ ने क्रांतिकालीन फ्रांस में उपेक्षित किसानों की महत्वप्रतिष्ठा हेतु उन्हें अपने गीतों का विषय बनाया। सामंती सोच के विरूद्ध यही जनवादी तेवर हम डॉ० शांति सुमन के गीतों में पाते हैं। वे अपने गीतों में शोषण से त्रस्त दुर्दशाग्रस्त अभावमय ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्त करती हैं। उनके गीत गाँवों में बसने वाली भारत माता की आत्मा की मर्मान्तक पीड़ा को वाणी देते हैं। सूखा और बाढ़ कृषि आश्रित ग्रामीण जीवन के नैसर्गिक शत्रु हैं। किन्तु प्रशासन का संवेदनशून्य रवैया इनके तांडवकारी तेवर को और भी तल्ख कर देता है। राहत राशि की लूट-खसोट का खुला खेल शुरू हो जाता है। विगत दिनों बिहार मे विनाशकारी

बाढ़ से आयी तबाही इसका ज्वलंत प्रमाण है। डॉ० शांति सुमन अपने 'फटेहाल हम' शीर्षक गीत में प्रशासनिक दुरवस्था का यही कच्चा चिट्ठा सामने रखती हैं –

'एक ओर सूखा है,
बाढ़ है, अकाल है,
एक ओर हम हैं
आसमान से आते
राहत के दाने
मंत्री से मुखिया तक
सब हैं बेगाने
टूटे तटबंधों का
खेल यह कमाल है
देख रहे हम हैं'

जुए के दाव सरीखा अनिश्चित मौनसून जब अपना रूप बदलता है तो खेतों के साथ-साथ ग्रामीणों की सूखी छाती भी फटने लगती है। ऐसे में उनके लिए बारिश की कामना करता कवियित्री का संवेदनशील मन पिघल-पिघलकर गीत का आकार लेने लगता है –

'ऐसे गरज-तरज रह जाता
बारिश हो तो फिर कहना
बीत गये कितने दिन कड़ियाँ
जुड़ी न जल गीतों की
फटने लगे खेत, आँख में
कथा पलीतों की
कसकर बांध लिया है खोंपा,
बारिश हो तो फिर कहना'

('फटने लगे खेत' – 'धूप रंगे दिन')

भूमंडलीकरण की चमक-दमक से चौंधियाई सरकार के सौतेले रवैये ने कृषि की अकथनीय दुर्दशा की है। बुनियादी सुविधाओं के अभाव के साथ-साथ भूमि के अन्यायपूर्ण वितरण ने खेत जोतने वाले हाथों को लाचार कर रखा है। छोटे-छोटे सुखों को तरसते खेतिहर-मजदूरों की व्यथा को गीतकार शांति सुमन 'मजदूर माँ की लोरी' शीर्षक गीत में बयां करती हैं –

'गाँव भर खेत लिखे हुए जमींदार के
हाड़ सुखाते रहे रात-दिन पहाड़ से
छोटा सुख भी न पाये हम कीन'

सरकार खेती योग्य उर्वर जमीन उद्योग-स्थापन हेतु पूँजीपतियों को मुहैया

कराने का अनैतिक कार्य कर रही है। सिंगुर का षड्यंत्र सबके सामने हैं। वहीं कृषि-विकास के नाम पर भूमिहीनों को ऊसर जमीन बांट रही है। शांति सुमन 'आटे सी पीसती माँ' गीत में ग्राम सुधार के खोखले सरकारी प्रयासों का सच सामने लाती हैं –

'सफर बड़ा यह लम्बा है
इतिहास बड़ा संगीन
भूमिहीनों को पट्टे पर –
है बंजर मिली जमीन'

गरीबी, अभाव और ऋणग्रस्तता ही स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन की स्थायी पहचान बन गई है। विकास के सरकारी आंकड़े चाहे जो कहे किन्तु प्रेमचंद के होरी के बदहाल जीवन में कोई बदलाव नहीं आया है। डॉ० शांति सुमन के 'निम्न मध्यवर्ग का गीत', 'हँसी-हँसी में' 'कोई रक्तपलाश' जैसे गीत ग्राम्य जीवन की आर्थिक दुर्दशा की सही तस्वीर सामने लाते हैं –

'चिन्ता तो होती है, पर किससे वह करे गिले
ईंच-ईंच बिक गया तपेसर, होली कहा जले'

('कोई रक्त पलाश')

खेती की बदहाली ग्रामवासियों को शहरों की ओर पलायन को मजबूर कर देती है। माटी का मोह छोड़ विस्थापन की व्यथा झेलने को बेबस ग्रामवासियों के चित्र डॉ० शांति सुमन ने अपने 'फूल पाखी देह', 'उदास आँखें', 'कोसी के कछेर की लड़की', 'गीत कभी का गाया' आदि गीतों में बड़े मार्मिक अंदाज में खींचे है। अपने 'उदास आँखे' गीत में वे पलायन की जीवंत तस्वीर पेश करती हैं –

'दीवारों के विरवों सी
मजदूरी जब रोती
रेलों की छत पर करते
हम सपनों की खेती
कभी असम, पंजाब कभी हम
हुए यही जिये'

किन्तु शांति सुमन का गीतकार मानस पथरीला ग्रामीण यथार्थ पेश कर ही अपने कवि-कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझ लेता है। उनकी सतर्क दृष्टि बदलाव के लिए प्रयत्नशील ताकतों के प्रति संवेदनात्मक नजरिया रखती है। परिवर्तनकामी शक्तियों के सकारात्मक प्रयासों की पहचान उनके 'मजदूर माँ की लोरी', 'धुआँयी आग', 'मुनिया के घर का सूरज' आदि गीतों में मिलती है। 'मजदूर माँ की लोरी' गीत प्रच्छन्न रूप में कवियित्री का ही ग्रामवासियों को दिया गया उद्‌बोधन है –

'लिख मेरे बेटे एक, दो, तीन
लिख पढ़ के पहचानेगा जमीन।
अपने अधिकार को तलाश बड़ा होके
सीने पर वार को हमेशा तू रोके
तेरी कमाई न ले जाय छीन'

डॉ० शान्ति सुमन उन विरल गीतकारों में से हैं जो समय को साधती जटिल जीवनानुभूतियों को प्रकृति के परिवेश में पिरोकर पेश करती हैं। उनके ग्राम्य गीतों में अभाव, कष्ट, वेदना सब के सब प्रकृति के पालने में पलते-खेलते मिलते हैं। ग्रामीण प्रकृति के अनगिनत रूप उनके गीतों में मौजूद है। कहीं धूपों के बेलबूटे काढ़े खेत हैं तो कहीं मिट्टी की छत पर उतरता नीला चाँद। कविताएँ बुनता मौसम कभी पछिया में कांपती रातों का तो कभी शिशु की पहली गर्म सांस जैसी अगहन की धूप बने दिन का रूप धरकर उनके गीतो में आता है। **उनके गीत ग्रामीण प्रकृति के ऐसे कोलाज हैं जिनमें रंग-रस-गंध के अनगिनत बिंब मौजूद हैं। खेत, नदी-तालाब, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, दिन-रात, धूप-हवा सभी जीवन के स्पंदन से संपृक्त हैं। ऐसे परिवेश में पलता जीवन अभावग्रस्तता के बावजूद फसल की खुशबू से लिपटकर 'मन ईख-ईख हो' उठा है। देखा जाय तो उनके गीत परंपरा और प्रतिरोध की पहचान लेकर सामने आते हैं।** लोक संवेदना और ग्रामीण अनुभूतियों में जहाँ परंपरा की पहचान मिलती है वहीं ग्रामीण जीवन की तरलता को भीतर तक सोखते शोषणकारी तत्वों के प्रति प्रतिरोध कायम है। प्रतिरोध की यह चेतना ही इन्हें जनवादी-प्रगतिवादी पंक्तियों में खड़ा करती है। सच कहा जाय तो शान्ति सुमन लोकमन की गायिका हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र के शब्दों में '(इनके) गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है, साधारण में असाधरणता के हाशिए की जिंदगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन-संदर्भों में महाकाव्यों के वृतान्त पढ़ना है।'

डॉ० मिश्र का उपर्युक्त कथन सर्वांशतः सत्य है। डॉ० शांति सुमन ने स्वयं ही कहा है कि 'जन संस्कृति का परिष्कार और उसका पुनर्निमाण आज के गीतों की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। शब्दों को आज अधिक सक्रिय होने की जरूरत है। इतने खुरदरे यथार्थ जिनमें रचनात्मकता की इतनी संभावना हो, पहले कभी नहीं दिखे।' यही है डॉ० शांति सुमन की अन्वेषणात्मक दृष्टि जो समय को सूक्ष्मता के साथ पकड़ लेती है और सच्चा रचनाकार वही होता है जो समय के ऊपर अपनी पकड़ बनाये रखता है। यह बात इनमें मिलती है।

●

कोई गीत एक गाने का मन

❑ डॉ० संजय पंकज

डॉ० शान्ति सुमन नवगीत की पहली कवयित्री हैं। नवगीत गीत से अलग नहीं है। गीत को नयी जमीन और नयी त्वरा देने के कारण गीत की पारम्परिक और मान्य प्रवृत्तियों से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं होने के बावजूद तथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर लय की नयी उड़ान का नाम है 'नवगीत'। कविवर राजेन्द्र प्रसाद सिंह नवगीत के प्रवर्त्तक हैं। नवगीत नामकरण का भी श्रेय इन्हें ही है। सम्भवतः महाप्राण निराला प्रथम नवगीतकार हैं। गीत चाहे – **'रचना की ऋजु बीन बनी तुम/ऋतु के नयन नवीन बनी तुम.../एक-एक से तीन बनी तुम।'** या फिर कोई और गीत हो। निराला भी प्रयोग करते थे। एक समय तो ऐसा भी आया कि उन्होंने सिर्फ शब्द और ध्वनि से लयात्मक आरोह-अवरोह भरे गीतों का भी सृजन किया। व्यर्थ सा लगने वाला गीत 'ताक कमसिन वारी' अपने वर्णात्मक अलगाव-सटाव के कारण लय से ही कोई अर्थ अनुभूत कराता है। गीत एक अनकहा स्वाद भी है। इसमें लय की प्रधानता होती है। वही सम्वेदना को प्रभावित करती है। हृदय को स्पर्शित करती है। आत्मा को सहला जाती है।

1958 में 'गीतांगिनी' नाम से राजेन्द्र प्रसाद सिंह के सम्पादन में नवगीत का पहला संग्रह आया। इसके बाद नवगीत की जो यात्रा शुरू हुई वह अब तक रूकी नहीं है। समृद्धि-शिखर की ओर बार-बार नवगीत बढ़ता रहा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इतने ज्यादा समय तक टिकने वाला कोई भी काव्यान्दोलन नहीं है। आज भी नवगीत में नित-नूतन प्रयोग हो रहे हैं। समकालीन कविता से होड़ लेता नवगीत सम्वेदना के नये-नये क्षितिजों को निरंतर उद्घाटित कर रहा है। डॉ० शंभुनाथ सिंह ने गिरोहबंदी करके नवगीत प्रवर्त्तन का श्रेय लेना चाहा, मगर इतिहास को झुठलाया नहीं जा सका। निर्विवादतः राजेन्द्र प्रसाद सिंह ही नवगीत प्रवर्त्तक के रूप में सर्वमान्य हैं। वे जाने भी गए, मानै भी गए और समादृत भी हुए। उन्होंने नवगीत के लिए अनेक संभावनाओं के द्वार खोल दिए। उसके पक्ष में लगातार लिखते और बोलते रहे। नयी ऊर्जा का स्वागत गीत-विरोधियों ने भी किया। यद्यपि डॉ० शंभुनाथ सिंह ने जमकर नवगीतों का सृजन किया, खूब लिखा, प्रभावशाली और लोकप्रिय लिखा। फिर भी उन्हें नवगीत प्रवर्त्तन का श्रेय नहीं मिला। वे महत्वपूर्ण नवगीतकार के रूप में स्थापित हुए। पूरे हिन्दी प्रदेशों में नवगीत लिखने वालों की अच्छी-खासी संख्या है। छंद साधना जिन्होंने की आज नवगीत लिखते हुए ही समकालीन परिदृश्य पर स्वीकृत हैं।

डॉ० शांति सुमन लोकप्रिय गीत–कवयित्री हैं। सधे स्वर और सुर की मंच-सिद्ध कवयित्री डॉ० शांति सुमन ने लोकप्रियता के लिए स्तरीयता को कभी रचना-कर्म से विलग नहीं किया। विचार-प्रतिबद्ध इस गीतकर्त्री ने लोकप्रियता के लोभ में कभी भी सतही सृजन से समझौता नहीं किया। सहज संस्कार में समाहित गीत-चेतना को वह स्वीकार्य भी नहीं हुआ। सार्थक और समर्थ गीत की लोकप्रियता समय सत्य के बयान और संवेदना की नम छुअन के कारण भी होती है। इसे सर्वथा मंचीय गीतकार और चुटकुलेबाज नहीं समझ सकते हैं। शांति सुमन के गीतों का मर्मस्पर्शी स्वर व्यापक सामाजिक सरोकार, लोक-अंचल, जन-सम्वेदना और मिट्टी-गंध से ऊर्जा प्राप्त करता है, तभी तो वह सीधे-सीधे सुनने वाले और पढ़ने वाले को छू जाता है। बात सीधी-सादी है। **राग में आग, स्वर में संताप और समय में सत्य को सहेजने वाली ये पंक्तियाँ – "थाली उतनी की उतनी ही/छोटी हो गयी रोटी।" या फिर "चम्पा के पेड़ नहीं बाबा/महुआ के पेड़ उगाना/जंगली सूअर ना आये/ऊँचा मचान एक बनाना।" अपने भीतर एक करवट लेते समय की अंगड़ाई को ध्वनित करती है।**

डॉ० शांति सुमन की रचना-यात्रा 'ओ प्रतीक्षित' से शुरू होती हुई 'धूप रंगे दिन' तक जिस गतिशीलता के साथ आई है वह विश्वास देती है कि गीतकर्त्री निरंतर विकास करती हुई शिखर चढ़ती गयी हैं। अब तो अनुभव की व्यापकता इतनी प्रौढ़ और परिपक्व है कि शिखर के रूप में डॉ० शांति सुमन सम्पूर्ण हिन्दी अंचल में आज वैसे ही सम्मानित हैं जैसे महादेवी वर्मा। बीच की काव्य रचनाओं में 'परछाईं टूटती', 'सुलगते पसीने', 'पसीने के रिश्ते', 'मौसम हुआ कबीर', 'तप रहे कचनार', 'भीतर-भीतर आग', 'मेघ इन्द्रनील (मैथिली)', 'पंख-पंख आसमान' (101 चुने हुए गीतों का संग्रह) तथा 'समय चेतावनी नहीं देता', 'एक सूर्य रोटी पर', 'धूप रंगे दिन' अपने विषय-वैविध्य, शिल्प-कौशल और लयात्मक संस्पर्श के कारण महत्वपूर्ण हैं। **इनके गीतों में ग्राम्य अंचल फोटोग्राफी की तरह साफ-साफ दिखता है। विशेष रूप से मिथिलांचल की आत्मीयता, वहाँ की नदी, प्रकृति, सामाजिक-विसंगतियाँ, अभावग्रस्तता, विवशता, वेदना, तड़प, कसक और द्वन्द्वात्मक विविध स्थितियाँ जिस तरह से शांति सुमन के गीतों में वर्णित हैं, उन्हें पढ़ते हुए शब्द-शब्द जिस बेचैनी से भर देते हैं उनसे एक संवेदनात्मक क्रांति-लहर स्वाभाविक रूप से उठने लगती है। शांति-सुमन के गीत महज वैचारिक प्रतिबद्धता के गीत नहीं हैं। उनमें एक चुनौती और क्रांति तो है ही।** अगर हम उनके आन्तरिक प्रभाव को देखें तो हृदय और आत्मा को झंकृत कर देने वाली शक्ति भी है। गीतों का अन्तरराग आत्मा को छू जाता है। कहने के

लिए आत्मा भले ही विशेष विचार-प्रतिबद्धता में कोई अस्तित्व नहीं रखती हो, मगर यह एक ऐसी सत्ता है जिसे कोई भी सम्वेदनशील नकार नहीं सकता। कविता मनुष्यता और संवेदनशीलता की भाषा है। मनुष्य की अन्तश्चेतना लय का सुदृढ़ आधार पाकर जिस उड़ान पर निकल जाती है वह बहुत कह देने के बाद भी अव्यक्त ही रहती है। शांति सुमन के गीतों की यही विशेषता है कि अर्थ देने के बावजूद उनके गीतों की लय का प्रभाव अनकहा ही रह जाता है।

डॉ० शांति सुमन के मन से गाँव उतरा नहीं है। गाँव अपनी समग्रता में इनके व्यक्तित्व से जुड़ा हुआ है। अधिकांश गीतों में गाँव किसी-न-किसी रूप में उपस्थित है। गाँव का दृश्य, वातावरण, परिवेश, संघर्ष और जीवन शांति सुमन के सधे बिम्ब और कसे संयोजन में बार-बार उभरता है। प्यारा-सा और आत्मीयता से भरा हुआ शब्द गाँव उनके गीतों में बारहा आया है। 'ओ प्रतीक्षित' संग्रह का यह गीत – **"डूबते दिन सा मन डूब गया–/बाँधे न किसी ने किरणों की छाँव को/जालों में मछली सा मन ठहर गया/एक धूल भरी पगडंडी जाए गाँव को"** – कवयित्री के मन को अभिव्यक्त करता है। मन गाँव से बंधा हुआ है और बार-बार शहर के चिल्ल-पों तथा तनावों से ऊबकर गाँव की पगडंडी को याद करता हुआ लौटना चाहता है। हद तक पर्यावरण को सुरक्षित और संरक्षित करता हुआ गाँव मन और आत्मा को भी निष्कलुष बनाये रखता है। गाँव की सामाजिकता और उसकी अन्तरंगता वहाँ से अलग हो जाने के बाद अलभ्य हो जाती है। 'एक सूर्य रोटी पर' संग्रह में भी गाँव अपने विविध रूपों के साथ प्रतिभाषित होता है। गाँव की जीवंतता और ताजगी क्या होती है यह गाँव में जाने के बाद ही महसूसा जा सकता है। गाँव देखने, सुनने और होने में बहुत-बहुत फर्क है। यह गीत देखने योग्य है – **"सोचते हैं आँख खोले/कमल वाले ताल/वह भी कहता गाँव का/हम भी कहें तो गाँव के/फर्क इतना अर्थ वह/हम शब्द केवल गाँव के/झरी पंखुरियाँ न बोले/अंकुरण का हाल।"** धरती अपने सम्पूर्ण स्वरूप में गाँव में ही दिखती है। गाँव में ही वह रत्नगर्भा है, जीवन है, संगीत है और है एक व्यापक संचेतना। गाँव से ही फैला हुआ आसमान भी दिखता है। धरती और आसमान के बीच स्नेह-संरक्षित गाँव निष्कलुष केवल गाता रहता है। शांति सुमन के गीत-मन का व्यापक परिचय देता है उनका यह सहज राग – **"जब-जब धरती सुन्दर होगी/आसमान होगा कोमल/तब–तब कोई गीत एक गाने का मन होगा/देख नदी को जैसे लहराये/सागर का पानी/झरने भी बन जाते पल में/जैसे औढ़रदानी/बरसेगा कोई अनहद भींगा सावन होगा।"**

डॉ० शांति सुमन की जनवादी चेतना जनमूल्यों और जनपक्षधरता से जुड़ी

हुई है। जनता का असंतोष, उसका संघर्ष और उसका विद्रोह इनके रचनात्मक तेवर में क्रांति की शक्ल लेता हुआ अंततः गीतों में ही ढलता है। राग को आग बनाने की कला में निपुण यह कवयित्री क्रांति को विस्फोट के रूप में नहीं, बल्कि एक विचार और चेतना के रूप में लयात्मक विस्तार देती हैं। जहाँ विस्फोट से नयी-नयी विसंगतियाँ पैदा होती हैं वहीं वैचारिक चेतना के विस्तार से एक मुकम्मल मानसिकता और जमीन तैयार होती है। गीत कविता का उद्देश्य भी तो यही होता है। मनुष्य और मूल्य नष्ट नहीं हों, साझी-विरासत बची रहे, सांस्कृतिक गौरव बना रहे, हर हाल में संवेदना जीवित रहे कविता यही तो चाहती है। इसीलिए ऋषि से बढ़कर रचनाकार की भूमिका होती है। उसकी अहमियत भी होती है। उसकी सत्ता भी होती है। वह समय को सृजता हुआ आने वाले समय को भी अपनी दृष्टि के समक्ष रखता है। अतीत और भविष्य को वर्तमान में गूंथता हुआ रचनाकार ही परम्परा और प्रगति से जुड़ा होता है। परम्परा का संवाहक और प्रगति का दूत वर्तमान का पुरजोर स्वर होता है। ऐसा ही स्वर कालजयी भी होता है। डॉ० शांति सुमन परम्परा और प्रगति को एक साथ साधकर विचार, तेवर और प्रयोग की क्रांतिकारिणी भूमिका में हिन्दी-गीत-कविता के मंच पर अंगद पाँव लिए दृढ़ता के साथ स्थिर हैं। **समकालीन कविता में जो कुछ भी मुक्त-छंद में कहा जा रहा है शांति सुमन गीत के माध्यम से उसी को जिस कुशलता से विस्तार देती हैं, वह एक चुनौती भी है और शीर्ष रचनाधर्मिता भी। इनके गीतों में लय में अन्तर्निहित प्रलय का दिग्दर्शन है, राग में छिपी आग की रक्तिमता का प्रवाह है, और है समय संताप का स्वर-विस्तार भी।** समय की अन्तर्वेदना को रागात्मक संचेतना देने वाली यह कवयित्री नित-नूतन दृष्टि से अपनी रचनाधर्मिता को आज भी समृद्ध करती हुई कवि-धर्म का निर्वाह कर रही हैं। समाज, समय, संस्कृति, मूल्य, जन-निष्ठा, प्रकृति, विरासत और आती हुई पीढ़ी सबका सम्मान और ध्यान करने वाली कवयित्री **डॉ० शांति सुमन गीत–कविता की एक ऐसी ऊँचाई हैं जो प्रतिस्पर्धियों को निरंतर प्रेरित करती हैं। बारूद भी उगाना चाहती हैं तो वह भी शांति, संतुलन और समरसता के लिए। आग राग के लिए, विद्रोह प्रेम के लिए, चिंगारी प्रकाश के लिए, क्रांति शांति के लिए इनका मूल स्वर है – "रचो समय को माथे पर/अब लाना है बदलाव/काटो अंधकार का जंगल/फूंको नया अलाव।"**

डॉ० शांति सुमन समर्थ गद्य लेखिका भी हैं। इनका उपन्यास 'जल झुका हिरन' नवीन शिल्पगत प्रयोग है। विषय-वस्तु में शांति सुमन का मूल स्वर और तेवर निहित है। आलोचनात्मक कृतियों में 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' शोध-ग्रन्थ है, तो अनेकानेक मूल्यांकनपरक आलेखों में नीर-

क्षीर-विवेकी पारदर्शिता है। राष्ट्रीय काव्य-मंचों की यह लोकप्रिय कवयित्री अनेकानेक सरकारी, गैर सरकारी सम्मानों से बार-बार सम्मानित हुई हैं। 'महादेवी वर्मा सम्मान', 'विशिष्ट साहित्य सम्मान', 'विद्यावाचस्पति सम्मान', 'भारतेन्दु सम्मान', 'सौहार्द सम्मान' तथा 'महाकवि राकेश शिखर सम्मान' से सम्मानित होकर इन्होंने हिन्दी-गीत कविता को सम्मान देने का व्यापक काम किया है। **इनके स्वभाव में जो लय-छन्द है वही आने वाली रचनाकार पीढ़ी को प्रेरित करती है। इनकी रचनाधर्मिता, संवेदनशीलता और लोकप्रियता को** मूल्यांकित करते ये **दोहे बार-बार** सटीक और **सार्थक हैं – "जनधर्मी** कर गीत को, लेकर **मीरा-पीर**/शांति सुमन की **चेतना, मौसम हुआ कबीर।" "सरगम है अमृतधारा, स्वर-सम्मोहन राग/शांति सुमन सद्भावना, भीतर-भीतर आग।"** (संजय पंकज) शांति सुमन के गीतों को केवल पढ़ने की नहीं, गाते रहने की जरूरत है। मौसम के मिजाज के गीत, ताल-तलैया के उछाह के गीत, उत्सव के गीत, क्रांति के गीत, आस्था और विश्वास के गीत, प्रयोग के गीत, हृदय और आत्मा के गीत, आंसू और उल्लास के गीत, धरती के गीत, गीत ही गीत है शांति सुमन की व्यापक पहचान और दिग्-दिगन्त में प्रवाहित होने वाला जाग्रत स्वर। मूल्यांकन होते रहेंगे। आनंद के लिए अनुभूति और स्वाद की सजगता आवश्यक है। समय-सजग, जाग्रत सम्वेदन गीत की अविरल धारा हैं शांति सुमन।

●

सृजन की शिखर प्रतिभा : शांति सुमन

❑ डॉ० पूनम सिंह

शांति सुमन एक सतत् ऊर्जस्वित प्रवाह का नाम है। यह प्रवहमान धारा अपने निष्कलुष यश में विशिष्ट है। गतिशील प्रतिभा और जनपदीय संस्कार को लेकर यह काव्य व्यक्तित्व आज सृजन के जिस शिखर तक पहुंचा है वह अभिनंदनीय है। आज हिन्दी दिवस है और हमारे शहर के उस सारस्वत व्यक्तित्व को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा वर्ष 2004 का 'सौहार्द सम्मान' दिया जा रहा है। यह हम सब संस्कृतिकर्मियों के लिए गौरव की बात है। यह सम्मान उन्हें हिन्दी और मैथिली के लिए प्रदान किया जा रहा है। वैसे तो गीत कवयित्री डॉ० शांति सुमन को इससे पूर्व भी बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से साहित्य सेवा सम्मान एवं पुरस्कार और बिहार सरकार के राजभाषा विभाग से महादेवी वर्मा सम्मान एवं पुरस्कार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कवि रत्न एवं मैथिली साहित्य परिषद् से विद्या वाचस्पति सम्मान से अलंकृत किया जा चुका है। इसीलिए, यह सम्मान उनकी अप्रत्याशित उपलब्धि नहीं है। अपनी सृजनधर्मिता के विस्तृत आयामों को लेकर ही वे यहां तक पहुंची हैं। यह सम्मान उनकी अनवरत साधना का अवदान है। शांति सुमन पुरस्कारधर्मी शब्दकर्मी नहीं हैं। उन्हें कभी कोई प्रायोजित पुरस्कार या सम्मान नहीं मिला है। कस्बेनुमा शहर की ग्रामीण संवेदना वाली इस कवयित्री ने सातवें दशक से अपनी काव्य यात्रा आरम्भ की। अपने पहले गीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' (1970) से 'परछाई टूटती', 'सुलगते पसीने', 'पसीने के रिश्ते', 'मौसम हुआ कबीर', 'तप रहे कचनार', 'भीतर-भीतर आग' से 'पंख-पंख आसमान' तक उनकी अबाध गीत-यात्रा ने कभी अपने रास्ते के मील के पत्थर को नहीं देखा। हां, इस लंबी यात्रा में उन्होंने देखा है – हवा की सांसों में दुखती तारीखों को, लगातार बोझ ढोती सदी को, भीतर टूटते भीत के मकान को और इन सबके साथ चिड़ियां की आंखों में लरजते धूप के तिनको को। **शांति सुमन गीत परम्परा की समर्थ वाहक हैं। समय सजग दृष्टि के साथ उन्होंने इस विधा को अपना सौम्य संबल प्रदान किया है।**

उन्होंने गीत की जमीन को कोड़ने, तोड़ने, गोड़ने से लेकर निकौनी करने तक का काम किया है। उनके गीतों की जमीन हरी गंध से सुवासित और मन के राग से रंजित है। **'तुमको चाहा कितना-कितना, मैंने अपनी चाह में, सूरजमुखी खेत में झूमे, फसलें खड़ी गवाह में' जैसी पंक्तियां शांति सुमन की निजता को व्यष्टि से समाष्टि तक का विस्तार देती हैं। संवेदना के धरातल पर वे जितनी आत्मीयता से अपनापन का बीज बोती**

हैं, उतनी ही प्रतिबद्धता से लोहे के गीत भी लिखती हैं। उनके गीतों में कोमल अनुभूतियों और जीवन की त्रासदियों का अद्भुत साम्य है – 'थाली उतनी की उतनी ही छोटी हो गई रोटी, कहती बूढ़ी दादी मेरे गांव की।'

सूक्ष्म संवेदना की विरल गीतकार डॉ० शांति सुमन की काव्य चेतना में एक ओर घर, परिवार, नाते-रिश्ते, अपने-पराये, गांव-शहर सबका समावेश है तो दूसरी ओर परिवर्तनकामी ताकतों का आह्वानी स्वर भी है। देशकाल और सामाजिक पक्षधरता की भित्ति पर शांति सुमन के गीतों ने एक नया भाष्य रचा है। **जनवादी चेतना और ग्रामगंधी संवेदना की कवयित्री डॉ० शांति सुमन ने अपनी सर्जना के लिए सदैव नई राह, नयी कथा, नये शिल्प की खोज की है।** सतत् गत्वर इस कवयित्री के गीत इंगुर की नदियां हैं जिसकी सारस्वत धार को शत्-शत् प्रणाम करती हुई मैं आज के दिन उन्हें अपनी अमित शुभकामनाएं देती हूँ।

●

सामाजिक मानवीयता एवं मानवीय सामाजिकता की संवेदनशील रचनाधर्मिता की फलश्रुति : शान्ति सुमन के मैथिली गीत

❑ रत्नेश्वर झा

शान्ति सुमन ने हिन्दी के समानान्तर मैथिली में भी गीतों की रचना की है। इनके मैथिली गीतों के संग्रह का नाम है – **'मेघ इन्द्रनील'**। अप्रासंगिक नहीं है यह कहना कि हिन्दी के लेखन और मैथिली के इस गीत-संग्रह 'मेघ इन्द्रनील' को मिलाकर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से शान्ति सुमन को सौहार्द सम्मान एवं पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। अभी तक प्रकाशित इनके मैथिली गीतों का एकमात्र संग्रह है **'मेघ इन्द्रनील'**। इसके अतिरिक्त वे पत्रिकाओं में छपती रही हैं और मंचों पर गीतों की प्रस्तुति करती रही हैं। विभिन्न आयोजनों में सस्वर गीत–पाठ की इनकी अलग पहचान रही है। मंचों पर गीतों की प्रस्तुति ने इनको व्यापक जन-समूह से जोड़ा है। इनकी तरह के रचनाकार मंच को जनता से जुड़ने का बेहतर माध्यम मानते हैं।

'मेघ इन्द्रनील' के प्रकाशन की प्रेरणा श्री मंत्रेश्वर झा से मिली जो स्वयं एक श्रेष्ठ कवि हैं। बम्बई के मैथिली के प्रकाशक सामाचकेवा फाउण्डेशन से इनको एक पत्र मिला जिसमें पाण्डुलिपि भेजने की बात थी। चयन के आधार पर उसमें प्रकाशन होता था। शान्ति सुमन के गीतों की पाण्डुलिपि का चयन हुआ। समय तो बहुत लगा, पर वहीं से 'मेघ इन्द्रनील' का प्रकाशन हुआ। इस तरह यह पहली बार 1991 ई० में सामाचकेवा फाउण्डेशन, बम्बई से प्रकाश में आया। संग्रह में गीतों के समानान्तर अकु झा की तूलिका से चित्राकृति की रचना भी दी गई। 2005 में इसका दूसरा संस्करण ईशान प्रकाशन से आया जिसमें गीतों की संख्या बढ़ा दी गई, नये गीतों को जोड़ा गया। शान्ति सुमन ने 'प्रसंगवश' में स्पष्ट लिखा है कि आकाशवाणी पटना में 'भारती' और 'चौपाल' कार्यक्रम के अनुबंध के फलस्वरूप **'मेघ इन्द्रनील'** के अधिकांश गीतों की रचना हुई। दूसरे संस्करण के गीतों में इन कार्यक्रमों से अलग के गीत भी हैं। आकाशवाणी में आज भी इनके सुरीले सस्वर पाठ सुरक्षित होंगे। गेयता इन सारे गीतों में अनुस्यूत है।

शान्ति सुमन 'हिन्दी नवगीत की एकमात्र कवयित्री हैं' और 'जनवादी गीतों में भी बड़े हस्ताक्षरों में एक हैं।' इसलिये इनकी गीतधर्मिता की विस्तृत चर्चा अन्यत्र हो चुकी है। मैथिली गीतों में भी शान्ति सुमन ने मध्यम वर्ग के घर-

परिवार के सामान्य अनुभवों के संग सामाजिक संघर्ष और उसके व्यापक सरोकार का चित्रण किया है। इन्होंने उन संघर्षों को जन-जीवन से जोड़ने की पहल की है।

शान्ति सुमन ने सच ही लिखा है कि 'मैथिली कविता विशेषतः गीत मे बदलावक स्थिति बड़ मद्धिम रहल अछि।' इन्होंने इस क्रम में मैथिली गीत साहित्य में यात्री, सोमदेव, मायानन्द मिश्र, विभूति आनन्द, बुद्धिनाथ मिश्र और वियोगी आदि का नाम लिया है जिनके गीतों में निम्न मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग – खेतिहर, किसान-मजदूर के जीवन के यथार्थ के तापों की अभिव्यंजना हुई है। प्रीतितत्त्व मैथिली गीतों की मुख्यधारा में जुड़ा हुआ है। प्रेम और शृंगार की मैथिली गीतों में अभिव्यक्ति के बारे में शान्ति सुमन का कहना है कि 'प्रेम शृंगार मैथिली में आबो लिखल जा रहल आछि, मुदा ओ विद्यापतिक अभिव्यक्तिक शैली सँ बहुत अलग आ विशिष्ट भ' रहल अछि। समकालक यथार्थक ताप आ दबाव ओकरा अनुशासित क' रहल अछि।' गीतकारों की संवेदना इस ताप और दबाव से निस्पृह और तटस्थ नहीं रह सकती।

'मेघ इन्द्रनील' के पहले संस्करण में 'दू शब्द' लिखते हुए प्रो० गोविन्द झा ने अपना विचार व्यक्त किया है कि 'एहि संग्रहक अधिकांश कविता मिथिलाक माटि-पानि में सानल अछि। मिथिलाक घर-गृहस्थी, बारी-आंगन, जन-जीवन, खेत-पथार, पावनि-तिहार, प्यार-दुलार, अमीरी-गरीबी, घृणा-उपेक्षा आदिक चित्रण बड़ सटीक बनि पड़ल अछि।' गोविन्द झा ने स्पष्ट कहा है कि इन घर-गृहस्थी, बारी-आंगन, जन-जीवन, खेत-पथार, पर्व-त्योहार, अमीरी-गरीबी आदि का केवल वर्णन करना गीतकर्त्री को अभिप्रेत नहीं है – इन अमूर्त भावों को पाठकों के समक्ष खड़ा करना गीतकर्त्री का ध्येय है। आज की जटिल और नकारात्मक जिन्दगी के प्रभाव से मुक्ति या उनको कम करना इन गीत-कविताओं का स्वर है। इन गीतों में व्यक्त पीड़ा और दर्द की तीव्रता से समाज की पीड़ा का अनुभव करना और उसके उल्लास से उल्लसित होना ही इन गीतों की अभिव्यंजना का प्रयोजन है। इन गीतों की अंतर्वस्तु ग्राम्य जीवन जैसी बड़ी सहज, सरल एवं मर्मस्पर्शी है। सच ही, इन गीतों में समकालिक जीवन की आर्थिक पीड़ा, भयावहता, संत्रास, घुटन, टूटन, कुंठा एवं जिजीविषा के चित्र मिलते हैं। ये मात्र देखे हुए चित्र नहीं हैं, अपितु भोगे गये चित्रों को सामने खड़ा कर देते हैं –

धानक संग–संग बेटी बाढ़य
हुलसि जगय मोर कोर
करजक संग–संग पिय मोर जागय
मोन दुखय थोर–थोर
होरी–दशहरा किछु नहिं जानओं

जिनगी भेल अखबार
गाम-गाम के लोक भगै अछि/शहरक बीच बजार

इतनी यातनाओं को झेलते हुए भी गांव के ये संघर्षजीवी जन अपनी मिट्टी से अलग होना नहीं चाहते। अपनी जड़ों से विच्छिन्न होकर जीना इनको पसन्द नहीं –

बनलै तँ बनओ शहर कलकत्ता
रहय तँ रहओ असाम
बाबुक हाथे कोरल-बूनल/हम नहिं छोड़बय गाम

'बेटीक लेल एक गीत', 'नदी आ पहाड़', 'परती जे तोड़य', 'लाल सिनूर', 'गंगा : मजदूरिन बेटी', 'मेघ इन्द्रनील', 'कतेक दिन पर', 'चानन-वन', 'ऋतु वृन्दावन', 'लाल काका', 'लाल मेघ', 'सुन्नर नैनी माछ', 'जागल आगि', 'बारह सालक बच्चा', 'गरम-गरम भात', 'पानिक धार' आदि 'मेघ इन्द्रनील' के श्रेष्ठ गीत हैं जिनमें निम्न मध्यम वर्ग और निर्धन-विपन्न जन के सारे वस्तु-सत्य एवं इच्छायें-आकांक्षायें, सपने सभी भरे हुए हैं। ये गीत इन वर्गों के आइने लगते हैं जिनमें उनकी स्थितियों-परिस्थितियों के सारे रूप दिखते हैं –

गाम सँ चलैक बेर
हाथ मे होरी-कजरी छल
आँखि जेना कलसी मे
झलमल छलकय गंगाजल
नील गगन में उड़इत पाखी/घुरि-घुरि ताकय बन

ऐसे बहुत सारे चित्र हैं जिनमें एक यह चित्र भी विपन्न जीवन की विवशता और अर्थहीनता का दृश्य उपस्थित करता है –

चूर भेल काजक थकान सँ/सूति रहल कमली
दस पाइक अभाव में नहिं/ओ कीनि सकल टिकली
माथक बोझ दबल वृन्दावन/सेहन्ता भरल मनोरी में

गाँव-घर की गरीबी, उसकी लाचारी और निरुपायता को गीतकर्त्री उसकी आँखों में जलते-धुआँते सपनों के रूप में देखती हैं –

टूटल खटिया पर देह पड़य
तँ लागय तड़कि जैत पसली
पछिला सुदभरना पड़ल रहल
देहक खातिर बीकल हँसली
टीनक थारी हो जेना जेल/चुपचाप सोचथि लालकाका

शान्ति सुमन के गीतों में फूलों, चिड़ियों, वृक्ष-वनस्पतियों, नदी-सागर, झील-झरने सभी के रूप दिखते हैं। कई सारे गीतकार चाहे हिन्दी में हों या मैथिली में उनकी उपमाओं के चयन सप्रयास देखे जाते हैं, पर रचना को जीवन्त बनाने के लिए अपने देखे और भोगे गये अनुभवों से ली गयी उपमायें ही कारगर होती हैं। शान्ति सुमन की संवेदनाओं को पकड़ने की मानवीय दृष्टि विलक्षण है। अपनी प्रत्येक सौन्दर्य-सृष्टि के लिए वे प्रकृति के सान्निध्य में जाती हैं, उसका श्रेष्ठ चुनती हैं – कोमल भी, सुन्दर भी साथ ही उदास भी –

भोरे-भोर नरम रौद/जहिना दरवाजा खोलय
थपकी दैत हवा ताजा/जँ कास जकाँ डोलय
पछुवारक फूलक खुशबू सँ गीतक तान जगल

उदास उपमान को देखने के लिए गीत की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है –

गरम करय अछि चिरय भोर केर
रौद में अप्पन पाँखि
कुसियारक माथा पर बैसल
खाली-खाली आँखि
टीसनकेर पीपर सन भीड़ो मे एकसर लागय
नील परत असमानक जोतल खेत जकाँ लागय

एक दूसरा उच्छल सौन्दर्य भरा चित्र देखने योग्य है –

नदी में कालीन अकासधरि बिछाके
हरिनक रंगीन रथ गुजरय ओहि बाटे
किरनक सात जोड़ शंख फूँकि के
गाम-गाम के जगा देलहुँ
जागि गेल बनो मे जवास
आध अहाँ भ' गेलहुँ पलास

अपने समानधर्मी गीतकारों से अलग सावन में प्रकृति के इस मनोरम रूप को शान्ति सुमन ही देखती हैं –

बैगनी रंग रँगल अछि पोखर/फूलक पैर छुअय
राति-राति भरि मेघक पहरू/द्वारे द्वार फिरय
जोड़य अप्पन सोना आँजुर/खेतक धानी रेह

शान्ति सुमन को गंगा मजदूरिन बेटी की तरह दिखती है –

मजदूरिन बेटी सन लागह/मुँह झबरौने केस
गंगा काटह अपन कुहेस

माटिक साबुन, माटिक टिकुली
सोभय तोहर लिलार
सूखल ठोर पसीने लुबधल
सुख सभ बिकल उधार
लहू बैग सँ उतरह सब दिस
आब सहह नहिं ठेस

कठिन संघर्षों के बीच भी आन्तरिक प्रेम मन को, जीवन को एक अटूट डोर से बाँधे रहता है। इसी के कारण सब दुख-ताप को सहने की शक्ति मिलती है –

जहिया-जहिया मोन पड़ै छी
अहाँ गाम सँ दूर
तहिया लागी बेलपत्र पर/राखल लाल सिनूर

साथ ही व्यवस्था के अन्तर्विरोध को भी निर्बन्ध होकर कहती हैं –

परती जे तोड़य ओ पीबि रहल ये धोआँ
एक लक्स साबुनकेर दाम होअय चन्द्रमा
टूटल मड़ैया के झोल भरल मनसा
मारय ये भूख जेना बरछी आ फरसा
आध टूक रोटी पर नून लगय चन्द्रमा

आर्थिक विपन्नता में संबंध भी विपन्न हो जाते हैं। वे अपनी मिठास और परस्परता खो देते हैं। जिन चेहरों को देखकर चेहरे पर प्रसन्नता की लाली छानी चाहिये, उनको देखकर मन उदास और अप्रसन्न हो जाता है और उस अप्रसन्नता में प्रकृति भी डूब जाती है –

अबितहि आगाँ में टूटि गेल भोर
जेना हमर माय
मोसकिल सब ओढ़िके जागल इजोर
जेना अपन माय
पड़ितहि नजरि तनऽ लागै अछि
दुपहर पास-पड़ोस बनऽ लागै अछि

निम्न मध्यवर्ग के जीवन की सबसे बड़ी पूँजी उसकी आशा-आकांक्षा होती है। चौतरफ दुखों से भरे जीवन को एक क्षीण अपेक्षा ही बाँधे रहती है। घर-परिवार के मीठे सपने उसका संग नहीं छोड़ते। लोक कथाओं में पढ़े गये वैभव उसके साथ-साथ चलते हैं और सपनों के रंगमहल में रंगों की आवाजाही कम नहीं होती। 'बेटीक लेल एक गीत' में शान्ति सुमन अपने मन में एक पूरा का पूरा स्वप्न लोक बुनती हैं जिसमें सुख ही सुख है, सुख में नहा जाने का अनुभव

है – अपनी भावी पीढ़ी के लिए अनंत शुभकामनायें हैं –

बेटी तोर सपना मे एक इन्द्रधनुष
पैरे पैर उतरय, गोरे गोर उतरय
तोहर नीन मे चिरैयक पांखि उड़य
एक गीत के किरिन भोरे भोर उचरय
एक जंगल लाल बिरिछ सँ भरल/अरिपन काढल चौमुख पोखरि
रोटी सँ लुबधल डारि-डारि/पुरइन संग झलमल बड़-पीपर
तोहर फ्राकक जेब में अनार भरल/करविलक लाल टहनी गमकय
हरियर धानक ओ काँच सीस/दूधक आखर पोरे पोर सगुनय
तोहर तरहथ बहय अकासगंगा/रोसनीक नदी ने कहियो सूखय
तीसी-जौ गहुमक खेत-खेत/दुनू चान सुरूज एकटक देखय

बेटी के लिये इतने बड़े कैनवास पर सुखद सपने देखना शान्ति सुमन की विलक्षण गीत-चेतना है।

'मेघ इन्द्रनील' में एक ओर प्रेम की सुखद अनुभूतियों में सराबोर मन है –

अहाँ फूल नहिं छी, नदी सेहो नहिं छी/अहाँ ओहिना नीक लागय छी

तो दूसरी ओर प्रेम में उदास करने वाले परिदृश्य भी हैं –

सोनजुही हँसी काँच सन चनकल
एक इहो दिन फेर बीतल
खुशीक नाम पर किछु/सुगंध रखने छी
हाथक रेखा सभके/मुट्ठी में कसने छी
नागफनी-नोंक सन सेहो एना गरल
एक इहो दिन फेर बीतल

गरीबों के बारे में हिन्दी-मैथिली गीतों में बहुत लिखा गया है, पर शान्ति सुमन द्वारा चित्रित गरीबों की दिनचर्या का यह विलक्षण रूप अन्यत्र दुर्लभ है –

गरम-गरम भात जखन पात पर पड़ल
नवका दिन तखने ओसार पर उगल
साल भरिक बाद आइ कीनल ई कुरता
देह आ पेट बीच पड़य कहाँ परता
साबुन केर फेन जखन हाथ सँ गरल
ताल भेल देह हँसी कमलसन खिलल

छोटे-छोटे घरवाले छोटे लोगों के छोटे जीवन की खुशियाँ भी छोटी हैं और इन छोटी खुशियों से मिलकर ही इनकी जिन्दगी बड़ी हो उठती है, पर्व-त्योहार के मेले लग जाते हैं –

छोट-छोट खुशियो सँ जिनगी/परब-तिहार लगय

बिहार की कमजोर कृषि-व्यवस्था, भुखमरी, फटेहाली, बेरोजगारी आदि का दुर्दान्त प्रभाव मिथिला में भी खूब देखा जाता है। वहाँ के जन जीवन का असंतोष, महंगाई की मार से तबाही, रोजी-रोटी के लिए गांव-गांव से शहर की ओर पलायन, कभी सूखा, कभी बाढ़ के त्रास आदि के बड़े ही मार्मिक चित्रण इन गीतों में भरे हुए हैं। अपने उज्जवल अतीत के साथ अपने बदहवास वर्तमान को झेलती मिथिला की मिट्टी के तनाव इस संग्रह के गीतों में स्पष्ट दिखाई देते हैं – अपने परिवेश का आतंक और गतिरोध इनमें समाये हुए हैं। इन गीतों की अंतर्वस्तु के अनुसार कई गीतों में इनके भाषा-शिल्प भी गरीब खेतिहर-कामगारों की कहन शैली में ढले हुए हैं –

रोटिक बदला गोली के बौछार
पंडीजी यौ/कोना भेलय एहि देशक बंटाढार

इस चित्र से तो मन और भी निःशब्द हो जाता है –

ओने पुरान कलेन्डर में/गहुम-मूँग लहरय
विज्ञापन में हँसइत बच्चा/पाखी जकाँ उड़य
फेर आओर आन किछु देखब। चुप-चुप रहब उदास

उदास जिन्दगी और ठहरी हुई इच्छाओं को शान्ति सुमन ने बार-बार लिखा है –

महुआ सन टपकैत ओ पहर/की जानी गेल कतय
जिनगीक ठोर सँ गायब अछि/मुस्कानक जीवित लय
मुरझि गेल अँखुवाएल फसिल तमाम

अपने भावी जीवन, घर-बार, आशा-आकांक्षाओं की लालिमाओं के बीच मिथिला की बेटी की सोच केवल मिथिला की नहीं है, अपितु पूरे देश की बेटियों की आशा-आकांक्षाओं में एकमेक हो गयी लगती है। ये बेटियाँ ही हैं जो देश में एक कोने से दूसरे कोने तक एक जैसी लगती हैं, उनकी उमंगें, उनके उल्लास एक से हैं, उनके सपनों का रंग एक है –

कतेक बरीस जतन सँ पोसल, सुन्नर नैनी माछ
बाबा, कहिया गिराएब महाजाल
धानक सीस लगय मँगटीका/पानक पात पटोर
टुह-टुह ठोर लगय अड़हुलसन/आकुल आँखिक कोर
घाट-बाट नहि पैर रहय थिर। जालक मन बेहाल

वस्तुतः शान्ति सुमन की मैथिली गीत–रचना किसी भाषा या विशेष क्षेत्र की रचना नहीं है। उसको सीमित परिवेश में रचा नहीं गया है। इन

गीतों का अनुभव-संसार या इन गीतों की अनुभूतियों का दायरा पूरी मानवीय चिन्ता को अपने भीतर समाये हुए है। यह गीतकर्त्री की संवेदनाओं का आइना है। इन गीतों में जिनकी बात की गई है, वे अपने परिवेश, समाज के अपने लोग हैं। उनके सुख-दुख, उनके संघर्ष अत्यंत सजीव, गतिशील और विश्वसनीय लगते हैं। इन गीतों में निम्न मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की स्त्रियों के यथार्थ अधिक लिखे गये हैं। उनकी समस्या, उनकी अस्मिता, उनके संघर्ष में हमारी आकांक्षायें अपना आकार पाती हैं। शान्ति सुमन की संवेदना मानव ही नहीं, मानवेतर जगत से भी जुड़ती है। यह इसलिये है कि इनकी संवेदनाओं का पाट बहुत चौड़ा है –

एक बात पूछै छी
कोना छी नदी,
कोना छी पहाड़
चुप्प भ' गेल बाजि-बाजि
चिरय चुनमुनी
साड़ी संगटूटि गेल
लाल अलगनी
सोच-सोच में दोहरय
पानि आ पठार

शान्ति सुमन हिन्दी में लिखती हुई मैथिली में आई हैं। भले इनकी मातृभाषा मैथिली हो, पर इन्होंने पहले हिन्दी में ही लिखा। इसलिये इनके मैथिली गीत हिन्दी गीतों से संस्कारित हुए हैं। लोकभाषा के गीतों में जो क्षेत्रीयता होती है, छोटा परिवेश होता है, सोच का प्रथित रूप होता है और संबंधों का सीमित विन्यास, शान्ति सुमन के गीतों ने इनका अतिक्रमण किया है। **व्यापक परिवेश में हस्तक्षेप करते हुए इनके गीत व्यक्तिगत संबंधों से बाहर होकर सामाजिक संबंधों को गतिशील और विश्वसनीय बनाते हैं। अपने समकालीन मैथिली गीतकारों से इसलिए इनके गीत अलग और ऊपर के प्रतीत होते हैं। मैथिली के अधिकांश समकालीन गीतकार जहाँ पोखर-पान-मखान-माछ से ऊपर नहीं उठते, वहाँ शान्ति सुमन ने व्यापक भारतीय कथानक और परिवेश को अपने गीतों में रचा है। इन गीतों में व्यक्त जीवन, संघर्ष, सुख-दुख, प्रेम, स्वप्न और आकांक्षायें केवल मिथिला ही नहीं, अपने प्रांत से होकर देश से एकमेक होकर** उसका भी अतिक्रमण कर पूरी दुनिया के जीवन, संघर्ष, सुख-दुख, प्रेम, स्वप्न और आकांक्षाओं में विन्यस्त हो जाती हैं।

शान्ति सुमन के गीतों पर लिखते हुए एक विशेष तथ्य की ओर ध्यान जाता है। गीत हो, कविता, कथा या उपन्यास या किसी और विधा में स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री-पुरुष के संबंधों में बड़ी स्पर्द्धा दिखायी जाती है। स्त्री के शोषित-पीड़ित-दमित होने के पीछे पुरुष की अराजकता और वर्चस्व की भावना को दिखाया जाता है। कहीं-कहीं तो स्त्री और पुरुष के संबंधों को अत्यंत तनावपूर्ण दिखाया जाता है। कहीं तो दोनों ऐसे मिलते हैं जैसे दो दिशाओं से छूटते हुए तीर मिलते हैं। घर की पूरी अशान्ति और बेचैनी के लिए दोनों की असहिष्णुता सामने आती है। **इसके विपरीत शान्ति सुमन के गीतों में स्त्री-पुरुष के संबंध को अत्यंत काम्य, प्रिय एवं सहयोगी भूमिका में दिखाया गया है। ये स्त्री पुरुष पति-पत्नी के रूप में परस्पर अनन्य मित्र हैं। भाई-बहन भी हैं तो संबंध में निष्ठा है, एक दूसरे के लिए त्याग और समर्पण की भावना है, माँ-पुत्र के रूप में भी कितना विलक्षण।** कुछ चित्र देखे जा सकते हैं –

अहाँ दुनू किनार बीच/पुल जकाँ लगी
हम नदी जकाँ बही
एक हँसी भोर/एक साँझ में रचल
दुपहरक नीन/स्वप्न-कथा मे बुनल
सुरूजमुखी सोन चिरय/राति-दिन जगी
हम बिरिछ जकाँ रही

यह एक चित्र भी मन में हरसिंगार की तरह गमकने लगता है –

फसिलक बीच अँहिक चेहरा अछि/ममता भरल अहँक आँखि
छतनार बाँहि में एना समेटय/सब दुख-तापक पाँखि
अहँक आँखिक मोहर लागल/अरिपन कढ़ल जेना ठाँव

और इस चित्र में तो जैसे प्रेम की अतल नदी बहती है, जीवन लोकगीत की तरह सुन्दर लगने लगता है –

नाकक मोती आँखिक रंग मे/जहिया सँ रँगि गेल
तरहथ पर पलास तपि जाइछ/आंगुर चानन भेल
जेना हेरेलहुँ सिनुरक वन में/लगय दहोंदिस लाल

और ऊपर जिस स्त्री-पुरुष के परस्पर मित्र होने की बात कही है, वे कैसे एक दूसरे के सुख से भींगते हैं, घर का कोना-कोना कैसे उनके प्रेम से गमकता है, मिट्टी के छोटे घर भी राजभवन लगते हैं जहाँ खुशियाँ घर-बाहर बुनी हुई हैं –

पिलसिन सँ लिखल देवाल पर/माछक संग मजूर
मनसाघर में चूड़ीक खनकब/आँचर हरदि–सिनूर
अरिपन सन काढ़ल आंगन मे/हुनकर देहक घाम

गाँव-घर में-मिथिला के कोशी कछार में जब मौसम बदलता है तो हवा भी बदल जाती है और यह बदली हुई हवा बहुत अच्छी लगती है। तब खेतों की नींद टूट जाती है, वे भी गीत गाने लगते हैं, बदलाव की आग के दहकने से पुराने अंधकार टूटने लगते हैं –

देखत सब आगि कोना दहकि गेल

गाँव में घर में अन्न हो, देह पर वस्त्र और ऊपर में छान तो जिन्दगी की अन्य इच्छाओं को सोचने के लिए बहुत समय और मन होता है। दिन फसल रोपने के लिए तैयार किये गये खेत की तरह निर्मल होता है और रात भयावह नहीं होती। जिन्दगी आशा से भरी जीने लायक होती है, जैसा गीतकर्त्री कहती हैं –

कँचनारक गंध भरल/रातिक ई बेर
चानीक महीन तार मे/गुथल हो कनेर

शान्ति सुमन के गीतों की भाषा कहीं-कहीं मैथिली के रूढ़ रूपों का अतिक्रमण कर जाती है। ऐसा इसलिए है कि ठेठ मिथिला विशेषकर दरभंगा-मधुबनी में बोली जानेवाली मैथिली से सहरसा में बोली जानेवाली मैथिली थोड़ी भिन्न होती है। लिखित रूप में समग्र मैथिली का स्वभाव एक होता है, पर बोलचाल में क्षेत्र-विशेष में थोड़ा बदलाव होता है। जैसे दरभंगा-मधुबनी आदि क्षेत्रों में 'एमहर-ओमहर' शब्द प्रयुक्त होता है, सहर्षा, सुपौल, मधेपुरा, पूर्णिया, अररिया आदि क्षेत्रों में बोलने में वे शब्द 'एने-ओने' हो जाते हैं। लिखने में वे 'एमहर-ओमहर' ही रहते हैं। अपने गीतों में शान्ति सुमन ने विश्वसनीयता लाने के लिए क्षेत्र विशेष की बोली से ऐसे कुछ शब्दों के प्रयोग की छूट ली है। मेरा तो मानना है कि इससे उनके गीतों की वैचारिक अंतर्वस्तु का सौंदर्य बढ़ा है। बिम्ब और उपमानों की रचना में तो शान्ति सुमन अपने समानधर्मी गीतकारों से कहीं अलग और ऊपर हैं। **'उजरल सोहागसन लागय बाढ़ि सँ धोअल पोछल गाम' और 'जंगली हवा सन दौड़ैत छल बिछिया पिन्हने सगुनी बेटी'** (गाँव में तीन बेटों के बाद जो बेटी होती है उसको सगुनी बेटी कहते हैं) ऐसे ही कुछ अलग और ऊपर के चित्र हैं।

एक बात कहने से नहीं रुक रहा हूँ। अपने एक हिन्दी गीत में कहीं शान्ति सुमन ने मौसम के बारे में तीखे शब्द का प्रयोग किया है। मुझको आश्चर्य हुआ कि जिस मौसम से इन्होंने इतने कोमल, ललित एवं प्रीतिकर उपमान, रूपक, उत्प्रेक्षा, बिम्ब-प्रतीक आदि जुटाये, जिनके चित्रण में अपनी साँसों की ऊष्मा लगाई, उसी मौसम को उन्होंने 'कमीने' कैसे कहा। हिन्दी के एक गीत में इन्होंने लिखा है – 'मौसम बड़े कमीने/शाखों पर फूलों को देते/नहीं कभी वे जीने'। शान्ति सुमन से यह बात पूछने पर इन्होंने जो उत्तर दिया उससे मैं

निरुत्तर हो गया। इन्होंने कहा कि केवल मौसम शब्द देख लेते हैं और यह नहीं देखते कि इसका प्रयोग किस संदर्भ में हुआ है। मौसम केवल फूल-पात नहीं होता।विस्तार से बचकर इन्होंने इतना कहा कि उस गीत में इन्होंने मौसम का प्रयोग सामंतों, भूस्वामियों, इजारेदारों के लिए किया है। वैसे प्रत्येक पात्र के लिए वह शब्द प्रतीक है जो जनता के जीवन का चैन छीनता है, उन्हें भूखमरी, फटेहाली के कगार तक पहुंचाता है, जो विपन्न को, सीधे-सादे, श्रमजीवी, संघर्षरत जन को तबाह करने में थोड़ा भी नहीं हिचकता। इनको थोड़ी भी संवेदना नहीं होती कि ये निर्धन भी इसी समाज में रहते हैं, इसी समाज के लोग हैं और उनको भी जीने का पूरा अधिकार है। इन्होंने बड़ी साफगोई से कहा कि जो 'ऐसे' लोग हैं, उनके लिए इससे अलग कौन सा विशेषण होगा।

मुझको खुशी है कि शान्ति सुमन के मैथिली गीतों में इस तरह का कोई विशेषण, उपमान या बिम्ब आदि नहीं हैं। प्रकृति को, पूरे मौसम को इन्होंने मानवीय संबंधों में ढालकर चित्रित किया है। वे मानवीय संबंधों की तरह ही बड़े आत्मीय और सुख-दुःख के सहचर हैं।

वस्तुतः शान्ति सुमन के गीत वाचाल नहीं हैं। इनमें विचार हैं, पर ये किसी राजनीति से प्रेरित नहीं हैं। ये विचार गर्भ में तड़पकर दम तोड़ते बच्चे की तरह नहीं, अपितु खम ठोककर संघर्ष करते मनुष्य के विचार हैं। जो समय आकर चला गया है, जो समय आनेवाला है, शान्ति सुमन के गीत उन्हीं के बीच अन्तराल के गीत हैं। इन दोनों के बीच का समय शान्ति सुमन का अपना समय है। **इस समय में जहाँ नदी-झील-समुद्र सभी बंद हैं, इन गीतों में बंद गिरहों को खोला गया है और समय का असली चेहरा दिखाया गया है। धीमे कम्पनों वाले अजस्र विस्फोट इन गीतों में भरे हुए हैं। ये गीत वर्तमान के खेत में छींटे गये भविष्य के सपने हैं। शान्ति सुमन की तरह कोई दूसरी गीतकर्त्री अभी मैथिली में नहीं है, जो गीत-कविता-साहित्य को कागज के पृष्ठों और मंचों पर एक साथ प्रतिष्ठा दे।** शान्ति सुमन ने मैथिली गीतों को हिन्दी गीतों के समानान्तर खड़ा किया है। किसी आलोचना की चिन्ता किये बिना ये अपनी रचना में निरत रही हैं। **जहाँ-जहाँ मैथिलीभाषी हैं, वहाँ-वहाँ मिथिला है। शान्तिसुमन उस विस्तृत मिथिला की पहचान हैं, सम्मान और प्रतिमान भी हैं। यह कहना उचित भी है कि इनके गीतों में जयदेव, विद्यापति और शुरूआती दौर के नागार्जुन भी हैं, पर उससे अधिक उचित यह कहना है कि शान्तिसुमन के गीतों में मिथिला को प्रमुख रूप से प्रतिनिधित्व मिला है। ये मिथिला और मैथिली के गीत के बड़े हस्ताक्षरों में एक हैं।**

●

श्रम-संघर्षों के सौन्दर्य से रंगी कविताएँ

❑ चन्द्रकान्त

शान्ति सुमन कवयित्री हैं, पर मूलतः गीतकार। उन्होंने कवितायें लिखी हैं, परन्तु उनकी कविताओं का एक ही संकलन – 'समय चेतावनी नहीं देता' के नाम से आया है। इस संकलन का प्रकाशन 1994 ई० में हुआ। इसके बाद इनका दूसरा कविता-संकलन प्रकाशित नहीं हुआ है। 2008 के मध्य में ही पता चला कि उनका कविता-संग्रह प्रकाशित होकर आनेवाला है। इधर ज्ञात हुआ कि प्रकाशक की अनवधानता अथवा लापरवाही के कारण वह संग्रह अभी तक प्रकाश में नहीं आ पाया। इसलिये इनकी कविता पर बात करने के लिए इनकी इस संग्रह की कवितायें और पत्रिकाओं में प्रकाशित कवितायें ही हैं। कुछ वैसी कवितायें भी हैं जिसको शान्ति सुमन ने गोष्ठियों में पढ़ा और डायरी की कुछ वे कवितायें जिनको मैंने देखा।

अपने गीतों की तरह शान्ति सुमन ने अपनी कविताओं में भी अपने समय, समाज और जीवन से अपनी एकरूपता बनाये रखी है। इनकी कविताओं का जीवन-यथार्थ इनके सामाजिक सारोकार से ही उत्पन्न हुआ है। समकालिक समाज में पल रहे जीवन-सत्य को कवयित्री ने अपने शब्दों में ढाला है। इसलिये इनकी कविता किसी स्वप्न लोक की कल्पना नहीं है और सच तो यह है कि इन्होंने आदर्श के छल-फरेब से भरे काल्पनिक इन्द्रजाल को भी काटने की कोशिश की है। इनकी अधिकांश कवितायें ऐसी हैं जिनमें सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों पर कसकर प्रहार किये गये हैं। इन कविताओं में प्रेम-शृंगार, प्रकृति-परिवेश पर बातें करते हुए समाज और जीवन को अधिकाधिक अपनी दृष्टि में रखा गया है। आठवें दशक से ही हिन्दी कविता में लेखकीय हस्तक्षेप करनेवाली कवयित्री शान्ति सुमन ने मानवीय संकट और सामाजिक त्रासदी को निकट से देखा है। इसलिए इनकी कविताओं में वर्तमान को बहुत कोणों से देखा गया है।

महानगरों की भागमभाग और उपभोक्तावादी चमक के साथ शान्ति सुमन की कवितायें गांव की संस्कृति, परिवेश और वहाँ की धूप, पानी और हवा की सोंधी गंध का भी पता देती हैं। शहरों ने गांवों को कसबा का रूप तो दे दिया, पर वहां की तकलीफें, असुविधाजनक यथार्थ और जीने की बदहाली कम नहीं हुई। गांव ही है जहाँ आज भी मिले-जुले परिवार का रूप दिखता है – भले ही घर-परिवार के अधिकांश लोग शहर में नौकरी करते हों या रोजी-रोटी कमा रहे हों पर गांव में अभी भी घर एक है, वासगीत का बंटवारा नहीं हुआ। गांव

की राजनीति चाहे जितनी बदरंग हो गयी हो, पर आज भी आपसी भाईचारा, अपनापन और संवेदना का लगाव वहाँ दीख पड़ता है। शान्तिसुमन की कवितायें संबंधों के आत्मीय लगाव को बार-बार याद करती हैं और उनके धूसर होते जाते रूप पर चिन्ता भी प्रकट करती हैं –

माँ ने जहाँ पूरे थे चौक
झर आये मकड़ी के जाले

गाँव में अमरूद की डाल पर बैठे उदास नीलकंठ को देखकर कवयित्री आगे नहीं बढ़ जातीं, उसको भी शब्दों में बांधे बिना नहीं रहतीं क्योंकि उदास नीलकंठ का दुख भी उनको वेधता है। नीलकंठ का उदास होना सिर्फ नीलकंठ का उदास होना नहीं है, प्रत्युत इससे व्यवस्था की सारी विसंगतियों पर दृष्टि जाने लगती है और नीलकंठ की उदासी पूरी मानवता की उदासी में बदल जाती है। शान्ति सुमन की कविताओं में कहीं-कहीं कथा का आस्वाद भी मिलता है जब वे सामूहिकता के टूटते वृत्त और अपराध-आतंक के फैलते हुए जालों में पूरे समाज को फंसते हुए देखती हैं। वह यह भी देखती हैं कि इसमें राजनीति और व्यवस्था का कितना नाटकीय षड्यंत्र मिला हुआ है। इस षड्यंत्र में मृत्यु के भय में जीते हुए लोग किस तरह नाचीज और नामालूम हो रहे हैं –

'जनमने लगे थे आतंक उसकी नींद में
देखा था उसने पुलिस को गश्त लगाते हुए
हलुदबनी की हाट से लौटते हुए'

शान्ति सुमन की कविताओं में मानव के साथ मानवेतर जीवों के लिए भी जगह है। तभी तो चूल्हा नहीं जलने पर घर के छोटे बच्चों के साथ घर में रोज आनेवाली गोरैया भी उदास है। सूखे और बाढ़ के दिनों में जब 'नाद' में 'हरियरी' (घास) नहीं पड़ती तो गाय-बैलों की आंखें किस तरह अपने कमजोर मालिक को देखती हैं – बिना पलक झपकाये ठहरी आंखों से। आते-जाते जो चिड़िया फुदक-फुदक कर आंगन में खुशी छींट जाती थी अब कैसी हो जाती है –

'अब आंखों में आसमान के रंग नहीं आने लगे
हवाओं में उठते हुए हाथ/अनदिख होने लगे
बाँहों को बल देकर मुट्ठियाँ नहीं बंधने लगीं
नहीं करने लगी चिड़िया लोगों की/संवेदनाओं से सीधा संवाद'

कुछ ऐसी स्थितियाँ बनी हैं जिसमें देश और देशेतर देश की कारगुजारियाँ भी शामिल हैं और इनसे जन्म ले रही हैं भय, अपराध-आतंक की भयावहता। जिन्दगी जहाँ खूबसूरत लमहों का नाम होती थी, उसके सारे विशेषण और भाववाचक संज्ञाएँ बदल गई हैं। अब कहाँ कोई लेता है हरसिंगार या नागचम्पा

का नाम। रिवाल्वर से छूटती गोलियाँ और उससे उठता हुआ धुआँ अब अपना विशेषण और भाववाचक संज्ञाएँ बनाने लगा है। जिन्दगी से जैसे जिन्दगी चली गई है। गुस्सा, चिढ़, क्षोभ हमारी दिनचर्या में शामिल हो गए शब्द हैं। चिड़िया, बच्चे जो कविताओं के अति प्रचलित और अति लोकप्रिय बिम्ब होते थे और शान्ति सुमन ने जिनको कई-कई बार अपनी कविताओं में साँसों के प्यार देकर रचा था, अब हँसी और आँसू में कभी-कभी फर्क करना कठिन हो जाता है क्योंकि –

'उसको पता नहीं होता कि इस पूस की धूप में
कितनी है उसके बच्चों की हँसी
और कितने उसकी माँ के आँसू
आज से बीस-पच्चीस बरस पहले ही
जनमने लगे थे आतंक उसकी नींद में'

कोई भी अच्छी कविता जो करती है, शान्ति सुमन की कविता भी जीवन के संतापों का बखिया उधेड़ती है और वहीं से उस धूप का इन्तजार करती है जो उसके दुखों को कम करे। समाज में नहीं जीने लायक स्थितियाँ इस तरह सिर उठा रही हैं कि न्याय व्यवस्था से जनता का विश्वास उठ गया है। किसान-मजदूर सभी तबाही झेल रहे हैं –

'अपहरण-हत्याकांड से सुर्खियों में आते लोग
शादीशुदा महन्त करते मठों की रखवाली
आजीवन कारावास की सजा या बम से जानलेवा हमला करने
के मामले में भी बरी हो जाता है आदमी
आज तक नहीं आया '99 में अगुवा हुआ छोटेलाल
इधर जलावन बनते जा रहे सूखते गन्ने
गन्ने के साथ जलते किसानों के अरमान'

और भी कि –

'उगते रहते हैं जाने कितने कोदाईबाँक
मिट्टी खून से रंग जाती है
कतारों में सो जाते हैं अनिल मरांडी'

अपने परिवार और समाज में जीते हुए शान्ति सुमन की मानसिकता आज भी नगरों या महानगरों की उपभोक्तावादी संस्कृति में नहीं ढल पाई है। आज भी वह कस्बाई मानसिकता को जीती हैं और अपनी ग्राम्य संवेदनाओं से बेदखल नहीं हुई हैं। संबंधों का सौमनस्य आज भी वे जीती हैं। इसलिये उनकी सौन्दर्याभिरूचि और सौन्दर्य के प्रतिमान वहीं

से आते हैं। समाज में शालीनता के साथ जीना उनकी आदत है। इसलिये उनकी कविताओं का शिल्प इतना संजीदा है। शान्ति सुमन का सौंदर्य भी सामाजिक संघर्षों के बीच से ही निर्मित हुआ है।

आम आदमी और आदमीयत के सामने आज पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, निजीकरण, भूमंडलीकरण आदि के रूप में अनेक चुनौतियां हैं। शान्ति सुमन की चिन्ताओं से ये चुनौतियाँ कभी दूर नहीं होतीं। इसलिये ये व्यक्ति के प्रेम के बारे में लिखें या उसकी सुखानुभूति के बारे में इनकी चिन्ता में आम आदमी के दुख-दर्द समाये रहते हैं। यह तय है कि इस कवयित्री के लिये कविता समाज से अभिन्न है। समाज के सुविधाभोगियों को ये नितान्त अपनी दृष्टि से देखती हैं। इनके अनुसार उस आतंक से यह आतंक कम नहीं है कि हम सच को सच नहीं कहें और सदा अपनी आत्मा, अपने विचार का हनन करें। आज आदमी का व्यक्तित्व इसलिए छोटा हो गया है कि उसको खुलकर बोलने, अपना विचार व्यक्त करने का अवसर नहीं मिलता। इस कवयित्री की कविताओं का एक हिस्सा मध्यवर्गीय ढुलमुलपन की धूल झाड़ने में लगा है। वहीं वे दूसरे हिस्से में जिंदगी में सुगंध लुटाते कुछ चैन भरे क्षणों के चित्र भी उकेरती हैं जिनमें संबंधों की मिठास है, बनते स्वप्न-बिम्ब हैं और अपनी सधारणता में भी जिन्दगी जीने लायक लगती है –

'माँ बाप की आंखों की पुतलियाँ हैं ये
दूर-दूर से माथे पर पानी ढोकर लाने वाली बेटियाँ
खेत में घुटने से ऊपर उठती हुई फसल की तरह बच्चे'

और इस खुशगवार चित्र में कवयित्री की यह चिन्ता शामिल है –

'जो पढ़ने की बजाय ढो रहे हैं पानी'

शान्ति सुमन की कविता में छोटी-से-छोटी, साधारण से साधारण वस्तु, पात्र और दृश्य भी बड़े और असाधारण बनकर आते हैं –

'सिर्फ देखने के लिए होती है बालकनी
कुछ भी नहीं होता वहाँ कुछ गमलों के सिवा
नहीं सूखती वहाँ बड़ियाँ, दालें या धोये हुए गेहूँ
कपड़े भी नहीं झड़ी लगने पर'

प्रकृति में भी मानवीय संवेदना का अहसास यहाँ तक होता है –

'गिरकर भी पत्ता पीपल के साथ था
अभी जीवित थे उसके एहसास'

जहाँ दूसरे कवियों की दृष्टि देखती या ठहरती भी नहीं, वहाँ शान्ति

सुमन की रचनाधर्मिता जिन्दगी की दस्तकें सुनती है और अपनी अभिव्यक्ति में समकालीन कवियों से एकदम अलग हो जाती है –

'मौसम की तरह तो नहीं
सिलेबस की किताब की तरह
बदलती है फुआ की यात्रा'

और यह भी कि –

'प्रेमचंद की कहानी की तरह आती-जाती है फुआ/
कहानी बदलती है/पर प्रेमचंद नहीं बदलते'।

इस कविता की आगे की पंक्तियाँ दिखाता हूँ जो उनसे भी साधारण होते हुए असाधारण हैं, मगर पढ़ते हुए संवेदनाओं की ऐसी जलधारा उमड़ती है कि हम अपने को उससे बचा नहीं पाते –

'इस बार वह जाने लगी/तो उसके साथ हो गये बादल,
बरसात, हवा, गंध/और मौसम के गीत भी
फुआ जब आएगी तब तक/वैसा ही रहेगा खालीपन
फूल खिलेंगे, पर नहीं उड़ेगी गंध/और नहीं गाएगी चिड़िया गीत
खेत के धान भी नहीं पकेंगे/और हंसिया – बोरे लिये
इन्तजार करेंगी दिन-दिन तक/गोपी किसान की बेटी और/
उसकी सिलहारिन सहेलियाँ'

समकालीन जीवन की आपाधापी, आकांक्षाओं की तेज प्रतिस्पर्द्धा में कैसे हमारी मनुष्यता अपना अर्थ खोती है और हमारी दैनंदिन जिन्दगी में जहाँ रंग और गंध अपने खूबसूरत उपमानों के साथ उपस्थित थे, अब उनका अहसास भी नहीं होता। अपने बदले हुए रूप में वे एकदम अच्छे नहीं लगते। उनकी आत्मीयता का ह्रास हो गया है और अब वे संबंध के पर्याय नहीं, विलोम हो गये हैं –

कोमल संवेदनाओं को पहनकर/उतरती थी
तुम्हारी भाषा और घर की/चौखट से
लेकर दरोदीवार तक/रंग जाता था अपनापन
आज झांकने लगा है/बाजार तुम्हारे घर में
तुम्हारे कमरे तक पहुँच गई है/उसकी धड़कन
इसलिये बहुत ऊँची हो गई है तुम्हारी आवाजें
जो इमन की तरह/बजती थी कभी

शान्ति सुमन ने कठोर और निष्ठुर होती हुई जिन्दगी के बीच उन क्षणों, उन दृश्यों और सुखों की पहचान की है जिनसे यह बात उजागर

होती है कि जीवन इन झंझावातों में भी कहीं बचा है और कवयित्री की कविता के मुहावरे इन क्षणों में रूप बदलकर आ जाते हैं –

....'झूठ नहीं है ईख की गाँठ-गाँठ में/कल्लों का फूटना/बारिश का पहला पानी चिड़िया की/पाँखों पर गिरना/सपना देखते हुए साँसों का भापों की तरह उठना/बिना पलक गिराये आकाश में/इन्द्रधनुष देखना'

और कवयित्री जानती हैं कि जब से जीवन में तनावों ने घर बनाना शुरू किया है, छोटा से छोटा सुख, छोटी से छोटी खुशी भी हाथ से रेत की तरह फिसलती जा रही है। इसलिये वे कहती हैं –

'तुमने जब से यह सब/देखना कम किया है/
ऊँची हो गई है तुम्हारी आवाजें/
तुम्हें कहाँ पता है कि/कहाँ-कहाँ अस्थिर
कर देती है/ये आवाजें'

आत्मीय-पारिवारिक परिदृश्यों, आसंगों और संबंधों के सरल-तरल लगावों से भरी हैं शान्ति सुमन की कवितायें। उनमें ढेर से ऐसे प्रसंग और परिदृश्य आये हैं जिनको पढ़कर हमारा मन अपनी कुंठाओं और तनावों से परे होकर घर, जीवन, समाज और अपने समय की सभी बचा लेने योग्य चीजों के प्रति आकृष्ट होता है। वह नदी से भी अपना संबंध महसूस करने लगता है –

'पानी नहीं है तो क्या/नदी तो है
अभी बरसे बादल या आये बाढ़/तो भर जाएगी नदी/
अपनी दादी की तरह'

शान्ति सुमन संबंधों में आस्था रखनेवाली कवयित्री हैं। किसी भी निषेध में इनका विश्वास नहीं। संबंधों की रक्षा से ही सब कुछ को बचा लिया जा सकता है – घर-परिवार, समाज, देश, विश्व – सब कुछ –

'दादी है तो पिता को/अहसास है कि उनकी माँ है/
दादी है तो हाँक लगाती/रहती है दिनभर'

और उस पर यह आशा और विश्वास जो शान्ति सुमन की कविताओं की निजी विशेषता है –

'नदी सूख भी जाएगी तो नदी होगी
चिड़िया जाएगी उसके पास
पेड़ बदल नहीं लेंगे जगह – खड़े रहेंगे
उसके किनारे, भाग नहीं

जायेंगे उसकी बगल के मंदिर से देवता
कोई नहीं छीन लेगा नदी से नदीपन'

शान्ति सुमन की कविताओं की उदासी, निराशा और पीड़ा के चित्र भी भविष्योन्मुख लगते हैं। वे जीवन से थक-हारकर बैठने का संदेश नहीं होते। वस्तुतः हमारा चुप रहना भी हमारी एक भाषा होती है। निराशा भी हमें अपनी यथास्थिति को बदलने का संकेत देती है।

कविता को वृहत्तर जन समुदाय से जोड़ने के लिए कविता को उनके आंगन, घर-परिवार से जुड़ना होगा। उनकी संवेदनाओं में उतरना होगा। उनके संघर्षों और यथार्थ को जानना होगा। आज के गद्यात्मक समय में कविता जीवित रहने के लिए वहीं से अपना उपकरण प्राप्त करती है, दृश्य जोड़ती है। शान्ति सुमन की कविताओं में स्त्री जीवन के विविध रूप चित्रित हुए हैं, किन्तु इनकी कविताओं में एक बात है कि अनेक दुख-तापों को सहती हुई भी स्त्री अपने मूल रूप में स्त्री होती है। शान्ति सुमन यह भी नहीं मानती कि स्त्री के शोषण में पुरुष वर्चस्व का ही हाथ है। कभी-कभी स्त्री को पूरा भरोसा देने वाला पुरुष ही होता है, कभी-कभी एकदम अपरिचित-अनजान पुरुष भी। अभी जब शांति सुमन का कविता-संग्रह आनेवाला है तो इनकी कविताओं में और भी रंगों को देखने की सुविधा होगी।

शान्ति सुमन क्योंकि पहले गीतकार हैं, तब कवयित्री, इसलिये इनकी कविताओं में जगह-जगह पर गीतात्मक लय-संगीत की संहिति स्वाभाविक रूप से हुई है। कविताओं के इस सघन अनुभवों के दौर में इनकी कविताओं के नए रूप, नयी भंगिमायें, नये मुहावरे अलग से कविताओं की पठनीयता तय करते हैं। अधिकांश कवितायें एक तनाव से शुरू होती है और अनायास नाटकीय मोड़ रचती हुई कविता में आकर्षण बनाती है। शान्ति सुमन की कविताओं को पढ़ना शुष्क गद्य और विचारों को पढ़ना नहीं है। इनमें एक कवयित्री के मन का स्वप्न-संगीत पढ़ना भी सुखद है। इस कड़ुवे समय में जहाँ जीवन के आसपास कठोरताओं का जमघट है, वही शान्ति सुमन की कविताएँ कोमल संवेदनाओं का अक्षय भंडार देखती हैं। गरीब, विपन्न लड़कियों, बच्चों के जीवन में भी कोमलताओं के अजस्र स्रोत फूटते हुए होते हैं। अन्यथा किसी रिक्शावाले, किसी मजदूर को घर लौटने की जल्दी नहीं होती। ईंट भट्ठों पर काम करने वाली अधेड़ औरतें पकती हुई ईंटों की लाली से अपनी ममता, अपने प्रेम की लाली को नहीं जोड़तीं –

यहीं ईंट भट्ठे में जलती हुई किसी ईंट पर
लिखी है हमारी प्रेम कथा

जो जलने से पहले धुआँएगी और फैल जाएगी
अगरु-धूप बनकर
इस निर्जन खेत के आर-पार।

अथवा

घट्ठे पड़े हुए हाथों का खुरदुरा स्पर्श
जिस पर रचा है श्रम-गीत

कितना शीतल करता है – बाड़ी के हरसिंगार पर हिलती हवा की तरह इन कविताओं में व्यक्त अनुभव। **एक स्त्री रचनाकार के अनुभव इनमें भले व्यक्त हुए हैं, पर देखे गये परिदृश्य और कविताओं के प्रभाव की दृष्टि से इनको एक स्त्री रचित कविताओं से अधिक अपने समय और समाज की लिखी हुई कवितायें मानना चाहिये जिनमें कविता मनुष्य-विरोधी दीवारों को हटाकर मनुष्यता के लिए आशाओं का नया क्षितिज रचती है –**

'परकटी चिड़िया को उसके साबुत पंख लौटा
देने के लिये
हवाओं में विषैली गंध की जगह
खुशी की सुगंध बांटने के लिए
पृथ्वी पर अभी भी बचा है बहुत कुछ
किस कोख से जनमेगी मनुष्यता
आओ, उस बचे जीवन और बची हुई
मनुष्यता को बचा लो'

●

शान्ति सुमन का गद्य : वस्तु और शिल्प

❑ मनीष रंजन

शान्ति सुमन गीतों में चर्चित रही हैं। समकालीन गीत-साहित्य में ये एक स्थापित गीतकार के रूप में हैं। इनके गद्य के बारे में उतनी चर्चा नहीं हुई जितनी गीतों की हुई। दरअसल जब एक रचनाकार कई विधाओं में लिखता है तो स्वाभाविक है कि किसी विधा की चर्चा अपेक्षाकृत अधिक हो और कोई विधा कम चर्चा में आये। ऐसे विरले ही रचनाकार होते हैं जो प्रत्येक विधा में समान रूप से चर्चित-विज्ञापित हों और साथ ही लोकप्रिय भी। ऐसे रचनाकार अपवाद के रूप में केवल निराला हैं जिनके गद्य और पद्य समान रूप से चर्चित रहे हैं। महाकाव्य नहीं लिखने पर भी उनकी 'राम की शक्ति-पूजा' के महाकाव्यात्मक बंध को सबने स्वीकार किया।

शान्ति सुमन के साथ बात अलग है। पहले तो इनकी एषणा में गीत ही गीत है। इन्होंने स्वयं को एक गीतकार के रूप में प्रतिफलित होना ही स्वीकार किया है। फिर रचना के अतिरिक्त कोई चिन्ता इन्होंने की ही नहीं कि कहाँ चर्चा हो रही है और कैसी चर्चा हो रही है। अपनी रचनात्मक निष्ठा के कारण इन्होंने कभी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया। पर अभी जब मैं इनके गद्य के बारे में सोच रहा हूँ तो मेरी समझ में कई बातें आती हैं। पहली बात तो यह है इन्होंने गद्य के रूप में एक उपन्यास, एक आलोचना की पुस्तक और कुछ समीक्षायें लिखी हैं। ये इतनी रचनायें इनकी प्रकाशित हैं। वैसे एकाधिक प्रकाश्य गद्य लेखन भी हैं जो इस आलेख में सम्मिलित नहीं किये गये हैं।

दूसरी बात है कि इन्होंने कुछ कहानियाँ लिखीं जो चार-पांच से अधिक ही हैं, पर उनको कहीं प्रकाशित होने के लिए नहीं भेजा। कदाचित गीतों के साथ उनकी रचनात्मक कुछ अनबन हो या कई और कितनी अन्तर्वस्तुएँ ऐसी हों जिन पर गीत ही लिख गये हों और फिर कहानी का मन नहीं बना हो। यह तो रचनाकार से सघन साक्षात्कार के बाद ही समझा जा सकता है। तीसरी बात यह है कि गीत के अतिरिक्त शान्ति सुमन ने समीक्षा या आलोचना को अपनी रचना की विधा के रूप में स्वीकार किया। फिर यह बात भी सामने आती है कि इन्होंने मुख्य रूप से गीत-संग्रहों की ही समीक्षा लिखी है। इनके अतिरिक्त कुछ कहानी-संग्रहों और उपन्यास की।

आलोचना में इन्होंने एक वृहत् विषय का चुनाव किया। 'मध्य वर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' जैसे गंभीर विषय पर इन्होंने आलोचना लिखी

है। मध्यवर्ग जो एक नये वर्ग के रूप में अंग्रेजी प्रशासन के दौरान अस्तित्व में आया, लेखिका ने उसके अभ्युदय, विकास और विस्तृत प्रसार के साथ भारतीय अर्थतंत्र, राजनीति, धर्म और संस्कृति विशेषकर कविता सभी क्षेत्रों में उसकी भूमिका का विवेचन किया है। विवेचन का आयाम बहुत फैला हुआ है। इन्होंने न केवल अंग्रेजी शासन-काल के इस बिचौलिये वर्ग का विश्लेषण किया है, अपितु पूर्वापर संबंध दिखाने के लिए आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल के साथ भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और उनके उत्तरकालीन युगों की भी विस्तृत विवेचना की है। मध्यवर्ग का यद्यपि उन दिनों कोई आकार नहीं था, फिर भी लेखिका ने उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की विस्तृत व्याख्या के द्वारा पूरी वर्ग-स्थिति और उसकी संकल्पना को खोलने की चेष्टा की है। आधुनिक युग में नई कविता की विशेष चर्चा में 'तार सप्तक', 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' की विस्तृत और गंभीर आलोचना की है। एक-एक कवि का वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से विवेचन किया है। सप्तकेतर कविताओं में अकविता से लेकर किसिम-किसिम की कविता की भूखी पीढ़ी, युयुत्सु पीढ़ी आदि सभी अनियतकालीन-अल्पजीवी काव्य प्रवृत्तियों का आकलन किया है। भूमिका से लेकर फलश्रुति तक कविताओं के बारे में लिखकर समकालीन कविता की अनिवार्य परिणति के रूप में लेखिका ने नवगीत की भी चर्चा की है।

समीक्षा हो या आलोचना दोनों में लेखिका की भाषा की बुनावट अपनी पहचान लिए हुए है। भाषा की सम्प्रेषणीयता अद्‌भुत है। आलोचना की भाषा आमतौर पर कैसी निस्पृह हो जाती है, वैसी नहीं होकर बेहद जीवंत और प्रभावी है। उसी प्रकार शान्ति सुमन की समीक्षायें भी अपना आत्मीय प्रभाव छोड़ती हैं, अधिकांश स्थलों पर वे अपने वर्ण्य विषय के अनुरूप गंभीर विचारों के साथ लयात्मक भी लगती हैं।

समीक्षा या आलोचना तो रचना की प्रतिरचना होती है। शान्ति सुमन को उसमें विशेषकर आलोचना में अपनी कल्पना-शक्ति, भावुकता, संवेदनशीलता, सामाजिक सरोकार आदि को दिखाने के अवसर कम ही थे। इनकी स्वतंत्र गद्य रचना तो इनका उपन्यास ही है। **198 पृष्ठों में रचित 'जल झुका हिरन' एक उपन्यास से अधिक गीतिकाव्य ही लगता है। ऐसा उसकी भाषा के लावण्य के कारण लगता है। बहुत पहले अज्ञेय ने ऐसी काव्यात्मक भाषा का व्यवहार अपने उपन्यासों में किया था। कथ्य के कारण सही, पर भावात्मक सौंदर्य के कारण उनके उपन्यास अधिक चर्चा में आये। भाषा की नाटकीयता अथवा उसके नाटकीय सौंदर्य ने पाठकों को अधिक प्रभावित किया था। आज भी युवाओं में उनके उपन्यास अधिक लोकप्रिय हैं। 'जल झुका हिरन' उपन्यास का शीर्षक पहले तो एक ऐन्द्रीय बिम्ब**

ही प्रस्तुत करता है। जल पर झुका हिरन का चित्र ही बहुत कुछ कह देने में समर्थ है। शान्ति सुमन अपने गीतों और कविताओं में अपने ताजे-टटके अपूर्व बिम्बों के लिए अधिक जानी जाती हैं। **इस उपन्यास में जिस कथ्य को बुना गया है, वह पहली दृष्टि में गीतात्मक ही है। यश और सुमि, तनु और शील – चार व्यक्तियों की चार जोड़ी आंखों में उतरा अपने-अपने जीवन का सच कल्पनाओं के संसार का अतिक्रमण कर यथार्थ के सपाट मोड़ पर उतर जाता है। मगर मुझको लगता रहा है कि जिन कल्पनाओं को ये पात्र जीते हैं, वे एकदम अतीन्द्रिय नहीं हैं, अविश्वसनीय भी नहीं, कहीं से असंभव आदर्श को जीने की हठधर्मिता भी नहीं। वह कथारम्भ और कथान्त की कोमल कल्पनाओं के बीच का यथार्थ ही है जिनके धरातल पर यह उपन्यास रचा गया है।** इसके पात्र हमारे ही वर्ग के पात्र हैं – नितान्त निम्न मध्यवर्गीय चेतना से युक्त। निम्न मध्यवर्गीय कहकर मेरा इशारा इनके चरित्र के ढुलमुलपन से कदापि नहीं है और न इनमें दोमुँहापन ही है। ये इतने सरल-तरल पात्र हैं कि अपनी साधारणताओं में लिप्त रहने के लिए विवश हैं।

सुमि एक साधारण युवती है। उसकी कल्पनाओं, उसके स्वप्नों और आकांक्षाओं का ग्राफ कभी उसकी जीवन स्थितियों से ऊँचा नहीं हो पाता। कहना चाहिये कि वह ग्राफ कभी इसके कद का अतिक्रमण नहीं करता। यह 'कद' सुमि के सामाजिक-पारिवारिक वातावरण से ही बना है, उसकी ही देन है। प्रेम भी एक सामाजिक संघर्ष है। इस उपन्यास के मूल में भी व्यक्ति की संघर्ष-चेतना है। भले इसकी कहानी में आजीविका का अलग से तनाव नहीं है, पर प्रत्यक्षतः इस उपन्यास के सारे पात्र सामाजिक व्यवस्था के शिकार हैं। इतनी दृढ़ इच्छाशक्ति भी कभी-कभी थरथराने या काँपने लगती है।

सबसे बड़ी बात है कि 'जल झुका हिरन' में समकालीन जीवन की कई छवियाँ शामिल हैं, कई परिदृश्य – सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक भी उजागर हुए हैं। प्रेम आज भी एक अस्वीकृत, अभिशप्त परीलोक की कथा की तरह ही है। इसलिए आत्मा के अतल से भाप की तरह उठता हुआ मन का कोमल आवेश सुखांत के पहले ही स्थगित हो जाता है। परिस्थितियों के साथ मनःस्थितियों का चित्रण लेखिका ने बड़ी खूबसूरती से किया है। उनकी भाषा सदैव पाठकों के साथ चलती है। हर स्तर पर लड़ते पात्रों की संघर्षशीलता के बावजूद उपन्यास की अंतर्वस्तु मन को बांधे रहती है। पात्र, परिवेश और घटनायें तथा परिदृश्य सभी चित्र लिखे से लगते हैं। इस उपन्यास को बार-बार पढ़ने की इच्छा बनी रहती है – 'यश नहीं जानता था, अभी पूरी तरह नहीं जानता है – उसके भीतर भी कोई कल्पक

रहता है। वही कवि रहता है जो अभी भी कालिदास है। सुमि और उसके बीच यह दूरी की आँच है, जाने कितने स्मृति-चित्रों को जोड़ने पर उसको मजबूर कर रही है। बीता हुआ देशकाल जो बिल्कुल सुरक्षित है यश के मन के कोनों में : रिक्शा, सुमि की मसृण बाँह, उसमें सुलगता उन्माद, सुमि की हथेली, यश का चुम्बन, स्टेशन, धुआँ, भीड़, सुमि की आँखें, फिर-फिर उसकी आँखें, लौटता वह, बार–बार पीछे छूट जाता वह, खुद को समेटता-बीनता-चुनता वह, सीटी.....'

नितान्त अराजक-अमानवीय और दुर्दान्त समय में जब हिंसा, खून-खराबा और हत्या की घटनाओं से समाज पटा है और जीवन में बेचैनियों, तनावों और अर्थतंत्र के दमघोंटू षड्यंत्रों के जानलेवा हमले हो रहे हों, हिन्दी के कई और उपन्यासों की तरह 'जल झुका हिरन' भी हमें उन परिदृश्यों से अलग कर चैन के सौम्य-शीतल शाद्वल में ले जाता है। यह संघर्षों को कम करके उसको पीठ देने का काम नहीं करता, बल्कि उन संघर्षों को सहने और उनसे सीखने तथा उनका सामना करने की इच्छाशक्ति देता है। **इस उपन्यास की कथावस्तु में तत्कालीन समय-समाज की कई घटनाओं का चित्रण हुआ है अथवा इसकी कथावस्तु में तत्कालीन समय की कितनी ही घटनायें अंतर्ग्रथित हैं, जिनसे कथानक की विश्वसनीयता बढ़ी है। उदाहरणस्वरूप – महिला छात्रावास की जीवन-चर्या, छात्राओं का रहन-सहन, कॉलेज, विश्वविद्यालय छात्रावास की राजनीति, जात-पात के झगड़े, गोलियाँ-दहशत और फिर लड़कियों की नियमों की कैद में छटपटाती जिन्दगी और उससे मुक्त होने की कभी-कभी लापरवाह कोशिशें भी – इस उपन्यास में खुलकर आई हैं।** कुछ पंक्तियाँ देखिये – 'इस हॉस्टल में तो रहना मुश्किल हो गया है। सब लोग मना करते थे कि कोई दूसरा धंधा कर लेना, पर गर्ल्स हॉस्टल का मेस मत चलाना। भुजिया में जब तक तेल नहीं चूता रहे तब तक किसी को रुचता नहीं। अभी देखिये, दाल में फोरन के जले जीरे को दिखाकर कुछ लड़कियों ने हल्ला करना शुरू कर दिया है कि दाल में पिलुआ है और देखादेखी सभी लड़कियों ने दाल छोड़ दी है। सभी भुजिया भात खाने लगी हैं। मैं उतना भुजिया कहाँ से लाऊँगा। बारह आने शाम में ही मुझको घाटा लगता है, उसपर से ये परेशानी।' मेस के बाबाजी के कथन से तत्कालीन विश्वविद्यालय गर्ल्स हॉस्टल की सारी छवियाँ सामने आ जाती हैं। **हॉस्टल में और भी बहुत कुछ होता है। कुछ लड़कियाँ बिना परमिशन लिए अपने भीजिटर से मिल रही हैं। अभी मिलने का वक्त नहीं है, फिर भी। मगर कुछ ऐसी लड़कियाँ भी हैं जो रास्ते में दीदी की चप्पल उखड़ जाये तो उन्हें अपने हाथों से**

लेकर उनके कमरे तक पहुंचा आती हैं। उन दिनों के परिवेश के वे तनाव भरे पृष्ठ भी हैं जिनमें विश्वविद्यालय के गर्ल्स हॉस्टल की अधीक्षिका बनने के जहरीले अनुभव भी हैं और वे तनाव भी जिनको झेलकर कितनी अधीक्षिकायें रोकर वहाँ से गईं। उपन्यास के पृष्ठ पर यह सवाल भी अनकहा नहीं रहता कि 'कालेज की अच्छी-भली चैन की जिन्दगी के साथ हॉस्टल का यह जहर क्यों मोल ले लिया ?' इसके साथ ही यह वाक्य भी उस क्षेत्र विशेष के विश्वविद्यालय की भयावह राजनीति को सत्यापित करता है – ''दीदी, आप हॉस्टल में कैसे आईं ? और इस हॉस्टल में जो विश्वविद्यालय की राजनीति का सदैव अखाड़ा बना रहा है। आपसे पहले भी दो अधीक्षिकाएँ थीं जो रो–रोकर वहाँ से गईं। एक की तो तनख्वाह भी बाकी थी जो कभी लेने नहीं आईं।'' **इस उपन्यास में वे भयावह 'डिटेल्स' है जिनमें कॉलेज में नियुक्ति पाने के लिए कितने झंझावातों को अपने पीछे कर लेना होता है। हॉस्टल के भीतर की राजनीति तो आज भी वही है। कुछ लीडर टाइप लड़कियाँ लड़कों के साथ मिलकर योजनाएँ बनाती रहती हैं।** ब्वायज हॉस्टल में बनती है योजनायें – ''कैसे उपकुलपति को साधना है। गर्ल्स हॉस्टल पर अपने प्रभाव को कायम रखना है। अमुक लड़के किस जाति के हैं ? इस बार कितने को फर्स्ट क्लास आ रहा है ? उसमें पहला-दूसरा नाम किसका है ? लड़कियाँ ट्यूशन पढ़ने आयें तो उन्हें कोई भी वक्त दे दिया जाए। किन लड़कियों के नाक-नक्श कितने तीखे हैं ? अमुक वर्ष की अमुक लड़कियों का किसके साथ संबंध है ? छात्रों में अधिक से अधिक प्रभाव कायम किया जाए और विश्वविद्यालय का लगाम हाथ से न छूटने पाए।''

'जल झुका हिरन' में उन दिनों घटनेवाली निरंकुश घटनाओं का चित्रण भी है जो सच होने के साथ-साथ बहुत आतंककारी है – ''सुना युनिवर्सिटी कैम्पस में दो दलों में जोर की भिड़न्त हुई। गोलियाँ तक चल गयी थीं। एक गोली हॉस्टल की दाई के बेटे को लगी। तुरंत उसको लापता कर दिया गया। दाई ने रोना-चिल्लाना शुरू किया तो उसको सौ रुपये दे दिये गये और कहा गया कि तुम्हारा बेटा अस्पताल के एक डाक्टर के घर पर है। उसकी दवा हो रही है और वह ठीक है। ज्यादा हल्ला करोगी तो बस देख लोगी। डर के मारे दाई साफ झूठ बोल गई कि उसके बेटे को गोली लगी ही नहीं और उसका बेटा तो अभी बहन के घर गया हुआ है।'' इस तरह इस उपन्यास में कर्फ्यू लगने की चर्चा है और कहा गया है कि रात को मिलनेवाले लोग दिन में ही मिल रहे हैं। सरेआम शिक्षा का मुँह काला कर रहे हैं। एक बहुत बेधक प्रसंग भी इस उपन्यास में चित्रित है जिसको उद्धृत करने का लोभ भी संवरण नहीं कर पा रहा हूँ – 'विश्वविद्यालय के इन दोनों दलों

में से कोई भी दूसरे को चकमा नहीं दे सकता। एक दूसरे की नीतियाँ स्पष्ट हो चुकी हैं। बैकवर्ड कहे जाने वाले लोगों के लिए समस्या है कि वे अपने को किस अभिजात वर्ग के नाम पर सलाम कर दें। **लंगट सिंह कॉलेज से लेकर गर्ल्स हॉस्टल तक पुलिस जवानों से भरी लारियाँ, सीधी तनी राइफलें और गाड़ियों की घर्र–घर्र सुनाई देती है। आतंकित सन्नाटा चारों ओर चीख रहा है।'**

ऊपर जितने विवरण दिये गये हैं, वे इस उपन्यास के एक रंग हैं। दूसरा रंग इसका प्रेम है और यह उपन्यास उन विवरणों से अधिक प्रेम के निश्छल, निर्मल और नितांत करुण-कोमल प्रसंगों से भरा है। वही इस उपन्यास की मुख्यभूमि है। दो पात्र मिलते हैं, दो आत्माएँ मिलती हैं और संबंध का कोई महीन मालकौंस अंतर में बजता है, पर समाज के घात-प्रतिघातों से वह अछूता नहीं रहता। प्रेम उपन्यास के फलागम तक साथ नहीं जाता। एक सुगंध की तरह अंतरतम में निरंतर गमकता रहता है वह, पर निराकार रहना ही शायद उसका आकार है। और होता यह है – ''क्या करे यश ? जितना कर सकता था, किया। वह यही है। यही भर है – उसे प्यार करता – केवल प्यार करता एक आदमी और प्यार क्या होता है आजकल ? केवल प्यार से ? जितने भर का यह है, उतना सुमि देती ही है – उदारतापूर्वक – अपने घर, पढ़ाई, काव्य-लोक और नींद से समय निकाल कर।''

इस पूरे उपन्यास में एक पात्र जो अपनी पूरी गरिमा के साथ उपस्थित है, वह है राजीव – सुमि का पति। उसका व्यक्तित्व शालीन सभ्यता एवं शिष्टाचार से निर्मित है। यद्यपि सारे घात-प्रतिघातों को सहनेवाला पात्र वही है, पर उसमें तनिक भी विचलन नहीं है। सुमि के व्यवहार, आचरण और संगति में वह कहीं टूटता नजर नहीं आता। यश के लिए भी वह मन में मलिनता रखने की बजाय सबसे स्वस्थ संवाद स्थापित करता है। जीवन के प्रति उसकी दृष्टि अत्यंत सकारात्मक है। हारकर भी जीतने की संभावनाओं को वह हरदम थामे रहता है। हारकर इसलिये कि सुमि और राजीव के बीच हवा के लिए भी जगह नहीं थी, पर यश का उस तरह आ जाना एक प्रकार की प्रच्छन्न हार ही है। पर अपने घर और ऑफिस के बीच वह सामान्य जीवन जीते हुए कहीं उतावला नहीं दीखता। वह इसको भी एक संघर्ष के रूप में लेता है। संघर्ष उसके लिए जीवन सौंदर्य के रूप में आता है, अभिशाप के रूप में नहीं।

शान्ति सुमन ने इस उपन्यास में समाज के विकृत चेहरों को भी बड़े बेवाक रूप से दिखाया है। दूसरी ओर वैसे लोगों को भी दिखाना वे जरूरी समझती हैं जिनके जीवन में शान्ति है, सुकून है जो समय के झंझावातों को ओट देते हुए सरल जीवन जीना चाहते हैं। जो समय के दांव-पेंचों को समझते हुए उस

कीचड़ में पैर रखने से खुद को बचाते हैं जिनसे पैर गंदे होते हैं, आत्मा पर जिनका बोझ बढ़ता है। जीवन के संघर्षों को वे मानते हैं, पर उन संघर्षों के बोझ तले पिस जाना उनको स्वीकार नहीं। वे उन संघर्षों से बचना नहीं चाहते, अपितु उनकी तल्खियों को लगातार कम करते हुए बहुत साधारण जीवन जीते हैं। उनमें अभिजात वर्ग की कोई कुण्ठा नहीं है। वे सीधे-सादे निम्न मध्यवर्गीय लोग हैं। केवल यश के व्यक्तित्व में थोड़ा अभिजात बोध है जिसके कारण वह प्रेम के लिए रोता रह सकता है, टूट जा सकता है, पर किसी शर्त पर स्वाभिमान खोना नहीं जानता। वह एक स्थान पर कहता है – 'मेरे प्रेम पर तुम्हें जरा भी गौरव नहीं ? खीज है ?' यश मान रहा है कि यह उसके लिए अभिमान का कारण होना चाहिये। इसी मानसिकता का प्रक्षेपण कुछ इस प्रकार इन पंक्तियों में होता है – 'यह भी सुन लो, मैं दूसरे ढंग से, शरीफाना ढंग से, दुनियावी ढंग से – तुमसे प्यार नहीं कर सकता। मैंने कोशिश की। एक स्वस्थ, लौकिक व्यक्ति–प्रेमी दिखने की। पर यह मेरी प्रकृति के लिए संभव नहीं। अब यही हूँ मैं – एक बहुत लम्बी चीख की तरह उठा हुआ, चाहो तो उसे अपने वक्ष में सहेज लो, या फिर शून्य में छोड़ दो निरुद्देश्य भटकने – मरने के लिए। कुछ भी करो, पर जल्दी करो।'

सुमि ने यश के भीतर के मरोड़ को देखा है और पीड़ित भी हुई है। उसने अपना सारा आभिजात्य नोंचकर फेंक देना चाहा है और बरसते मेघ के साथ यश की आंखें भी डबडबा आई हैं। प्रश्न दर प्रश्न खुलता जाता है उपन्यास जैसे पतंग को कोई आकाश नहीं मिल रहा हो। एक बड़ा प्रश्न तो यही है – 'क्या तुम अपने को अस्तित्वहीन नहीं बना सकती ? क्या तुम मेरे शून्य में नहीं मिल सकती ? पूरी। अपनी चमड़ियों को खोलकर।' सुमि को कदाचित् पछतावा भी है कि यश के भीतर वसंत को उसी ने जगाया है। उसे इस तरह वह नहीं समेट सकती। कुछ ऐसा अघट हुआ है कि सुमि एकाएक किसी निष्करुण अपरिचय की ओर लौटने लगी है। यश जैसे स्वप्न से संवाद करता है – 'वह क्यों नहीं आती ? संभव हो तो सब कुछ छोड़कर, उसका भविष्य मुरझाने के पहले।' अपने निम्न मध्यवर्गीय संस्कार और शिष्टाचार से लिपटी सुमि अपने निर्वायु एकांत में मर नहीं पाती हुई बैठी हुई है।

प्रश्नों से आहत और आकुल यश अब अपने ही मन से पराजित होता हुआ जैसा है। शान्ति सुमन का उस परिदृश्य का चित्रण अत्यंत मार्मिक और तरल है। उदाहरणस्वरूप ''शाम को जब यश कमरे से बाहर निकला तो समझ नहीं सका। सोच नहीं पाया कि कहां जाए। कहीं जाए – क्यों जाए ? क्यों ? क्यों ? एक तरल निरर्थकता उसकी चारों ओर मरे साँप की तरह लिपटी हुई है। क्यों यह जीवन ? निष्कारण! जी करता है उड़ता हुआ जाए और सुमि के पल्ले को

पकड़कर खींच ले। उसकी भीनी-भीनी महकती गोद में माथा रख दे और कभी नहीं उठे। सुमि के मुस्कुराते होंठों को और एक अजीब से उजले स्नेह में चमकते दाँतों को देखता रहे – देखता रहे – सामने बैठा, पूरी दुनिया से मुक्त, अपनी पिछली कविताओं से मुक्त, पूरा स्वाभाविक, त्वचाहीन। अदृश्य।''

यश के भीतर की आकांक्षाएँ उससे भी बड़ी हो गई हैं। सुमि को पा लेने के बाद वह कुछ भी कर ले सकता है – प्रकृति के विरूद्ध भी, अंधेरे ही नहीं, देवताओं के विरूद्ध भी। पर जिस असमर्थता ने उसके प्यार, उसके जीवन, उसकी आत्मा, उसके सब कुछ को बांध लिया है, वह इस समाज की बनी-बनायी व्यवस्था है जो किसी दुर्दान्त कारा से अधिक है उसके लिये। पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु में आत्मीयता की तलाश करनेवाली तनु स्वयं को कितनी अकेली महसूस करती है जब उसको अपनी पसंद पर प्रसन्नता व्यक्त करने की भी सुविधा नहीं मिलती, मोहलत या छूट नहीं मिलती। **'जल झुका हिरन' उपन्यास सुमि और तनु के माध्यम से समाज में स्त्री की जगह को भी कहता है। पुरुष का असली चेहरा सामने आता है जब यश खुलकर प्रेम करना चाहता है और शील अपनी व्यस्तता को अधिक महत्व देता है, राजीव अपने दर्प से अलग होने को तैयार नहीं, पर स्त्री की जगह जानने के लिए जब हम सुमि और तनु को देखते हैं तो दोनों को समाजनीत मर्यादा की फांसों के बीच देखते हैं।** सुमि उतनी स्वाधीन नहीं है जितना यश, तनु स्वेच्छा से उतनी अभिभूत नहीं है जितना शील। एक तरह से पढ़ी-लिखी होने के बावजूद ये दोनों स्त्री पात्र अभिशप्त हैं – पुरुष की सहमति-असहमति, इच्छा-अनिच्छा, हर्ष-विवाद, प्रेम-घृणा और सभी तरह के पुरुषोचित अनुभावों को सहने के लिये। अंत में तो स्थिति ऐसी आती है जब कथानायिका फूल-पत्ते-बादल-पानी, हवा-धूप आदि से आत्मीयता का अनुभव करने लगती है, उन्हें ही प्यार करने लगती है, उसकी सांसों से संगीत फूटता है आहत और स्वप्न से भरा हुआ।

शान्ति सुमन ने, लगता है, बहुत सारी प्रेम-कथाएं पढ़ी हैं, समाज में प्रेम करनेवाले लोगों को देखा-सुना है, तभी उनकी भाषा में प्रेम की इतनी महीन आँच आ सकी है। **जरा सी भावुकता की बढ़त से सुमि की जिन्दगी बदल जा सकती थी, पर लेखिका ने इसमें जल्दीबाजी नहीं दिखाई है और चीजों को अपने स्वाभाविक स्वरूप में ही रहने दिया है। ऐसा नहीं है कि भावनाओं की समृद्ध दुनिया में जीते हुए पात्रों को सामाजिक सरोकार की चिन्ता नहीं है। सच तो यह है कि ये सभी समाज के सकारात्मक पक्ष से बंधे हुए हैं।** यही कारण है कि इस उपन्यास में इनके मन की गांठें खुलकर आई हैं। ये मन की गांठें ऐसी हैं जिनके आसपास समाज

की गांठें भी हैं। इन गांठों के चलते ही इतना-इतना खुलकर भी सुमि या तनु का परिवेश बँधा-बँधा रह जाता है। **स्वयं शान्ति सुमन निम्न मध्यवर्गीय समाज में जीनेवाली एक स्त्री हैं। उनको इस समाज में जीनेवाली स्त्रियों के बारें में सबकुछ पता है। इसलिये भी 'जल झुका हिरन' में समाज अनुपस्थित नहीं है। हाँ, यह है कि गांव के लिए इतनी आत्मीयता रखनेवाली शान्ति सुमन का गांव इसमें नहीं है।** ऐसा देश-काल-पात्र की सीमा के कारण हुआ है। इसमें शहरी निम्न मध्यवर्गीय समाज आया है जो भीड़ में जीने के लिए अभिशप्त होकर भी अकेलापन चाहता है, अपना मन-माफिक जीवन जीना चाहता है और समय, समाज, परिवेश सबसे उसको एक तरह का भय है। यश को ही देखिये – वह अपने दुख को समाज से मिला देने के पूर्व के शून्य से भर गया है। उसके चेहरे पर लिखी बेबशी की इबारत पढ़ी जा सकती है। उसने जितना जिया श्रेष्ठ जिया। प्रेम में उतना भी जीना बहुत होता है। अंततः विवशता को कृतज्ञता ही मान लेता है वह। फिर किसी अंग्रेजी कविता में डुबाकर वह अपने को व्यस्त कर लेगा। मैं तो समझता हूँ कि चुप रहने की विवशता ही उसकी विवशता है। बहुत कुछ कह लेने के बाद भी पुनः बहुत कुछ उसके भीतर शेष है और उसको मथ रहा है। कहने से अधिक का शेष रह जाना ही इस उपन्यास की सार्थकता है। दूसरे-दूसरे उपन्यासों की ऐसी कथाओं में इन अनकहों को बार-बार कहा जाएगा।

'जल झुका हिरन' की कथा की जमीन नयी नहीं है। जाने कितनी लेखक-लेखिकाओं ने अपने-अपने उपन्यासों-कथाओं में प्रेम को कितनी बार कितने रूप में कहा है। यह उपन्यास यदि उन सबसे अलग है तो सिर्फ इसलिये कि इसमें प्रेम निर्जीव नहीं है। जीवन के साथ वह चलता है। व्यक्ति को भीतर से भर देता है और आंखों में किसी प्रकार का शून्य नहीं होता। **शान्तिसुमन के उपन्यासकार की सबसे बड़ी विशेषता उनकी विश्वसनीयता है। उन्होंने जिस कथा-परिदृश्य को उठाया है, उसके परिदृश्यों में डूबकर लिखा है।** एक वाक्य में कहना चाहता हूँ कि शान्ति सुमन का यह उपन्यास अपने आस-पास की दुनिया के एहसास और अपने भीतर की संवेदनाओं, विचारों को खोलता है, उनमें हस्तक्षेप करता है। इस उपन्यास ने पाठकों के मन में उत्सुकता जगाई है। इसमें लेखिका ने अपने विचारों का बोझ पाठकों पर नहीं रखा है।

कभी-कभी लगता है कि 'जल झुका हिरन' एक कथाहीन उपन्यास है। इसमें जो कथांश है वह सबसे अधिक यही कि प्रेम के लिए यश कितना और कर्त्तव्य के बंधन में बंधी सुमि कितना सहती है। यह एक काव्यात्मक कथा है जो धीरे-धीरे मन में उतरती है, पाठकों को उलझाती नहीं, बल्कि अपनापन से सराबोर करती है। यह एक उपन्यास

भर नहीं है, जीवन के कुछ सूत्रों को कायदे से समेटने की कला है। सुमि की यादों की **खुशबू** जब-जब यश को अपने आसपास गमकती हुई लगेगी, उसको वसंत का पहला फूल याद आएगा और याद आएगा पोखर में फुदक-फुदककर नहाती बया का पंख। यश के पास शेष रह जाएगी यादों की दुनिया। कहना है कि जिस व्यवस्था में लोकतंत्र को सुविधातंत्र बना देने की मनमानी है, राजनीति हाँ में हाँ मिलानेवाले लोगों के सिर यद्यपि झुके होते हैं, फिर भी वे अपने सिर उठे हुए मानते हैं, विरोध करने वालों की लाश बोरे में बंद मिलती है, उस व्यवस्था के घिन से बहुत दूर कोई चैन और सुकून की जिन्दगी जीना चाहता है, कोई असामाजिक-आपराधिक कर्म नहीं करता, समाज की सकारात्मक शक्ति बन सकता है तो इस उपन्यास को पढ़ा जाना चाहिये। इसमें न तो कोई बाल-दिवस है, न कोई भाषण, फिर भी इसमें घटनाओं और प्रसंगों की कमी नहीं है। उन तमाम घटनाओं को मूल्य-प्रसंग से जोड़ा गया है। **इस उपन्यास की रचना में ही वह मानवीय अनुबंध गुँथा हुआ है जिससे मनुष्य का जीवन बचा रहता है। जीवन के प्रति जिस कथा में इतने आग्रह-अनुबंध जुड़े हों, वह कथा साधारण होकर भी असाधारण होती है। प्रेम और संवेदना की तलाश में लिखा हुआ यह उपन्यास शान्ति सुमन की अनन्य उपलब्धि है।**

ऐसे उपन्यास जिनमें संभ्रान्त मर्यादा को जीते हुए घरों में स्त्री-अस्मिता की अवमानना होती है, तमाम तरह के शोषणों के बीच उसकी चीख दबा दी जाती हो, उसकी आहत प्रार्थनायें भी दीवारों के बाहर नहीं निकल पाती हों, संबंधों के मकड़जालों में जहाँ दम घूटता हो, उन सभी दमघोंटू और जानलेवा कथा-संसार से अलग 'जल झुका हिरन' एक अपनी तरह का ही उपन्यास है। इसकी भाषा जहाँ इसकी शक्ति बनकर उभरी है, वहीं इस बात की शिकायत भी हो सकती है कि जो इस भाषा की सभ्यता से परिचित नहीं हैं, जिनको ऐसी भाषा पढ़ने की आदत नहीं है या तो सपाट बोलचाल की भाषा में ही उपन्यास या कहानी पढ़ना चाहते है, वे इसको पसंद करेंगे कि नहीं ? एक और बात है कि जो पाठक कहानी या उपन्यास में रहस्य-रोमांच पढ़ना चाहते हैं, देश की समाजार्थिक व्यवस्था के उठते-गिरते आंकड़े – उन्हें भी यह उपन्यास कम पसंद आएगा। मगर जो पात्रों के जीवन के रू-ब-रू अपना जीवन रखकर देखेंगे, उनको पात्रों का संघर्ष भी अपना संघर्ष लगेगा, कमोवेश उनको अपने जीवन का आइना उसमें मिलेगा।

यह उपन्यास उस अर्थ में एकांगी हो सकता है जहाँ इसकी मुख्य नायिका सुमि को समाज में किसी स्तर पर सक्रिय नहीं दिखाया गया है। कॉलेज में पढ़ाती हुई प्राध्यापिकायें भी सामाजिक मुक्ति से जुड़ती रही हैं। पर प्राध्यापन

का पद ही ऐसा सौभ्य-शांत पद है जिसका व्यवहार और अनुशासन दूसरे प्रकार का है। जिन दिनों का यह उपन्यास है, उनमें अधिकांश प्राध्यापक और प्राध्यापिकाएँ राजनीति से अपना संबंध कम ही रखती थीं। उनको शांत जीवन जीना पसंद था। इसलिए इस उपन्यास के बारे में ऐसा सोचना गलत होगा कि इसकी नायिका सामाजिक-राजनीतिक सवालों से जुड़ी क्यों नहीं है। **सुमि बड़ी सुलझी हुई स्त्री है। इसलिये उसके पास शब्दों और विचारों के मकड़जाल नहीं हैं। कहना होगा कि इस उपन्यास को पढ़ना सुमि और तनु जैसी लड़कियों की जिन्दगी से गुजरना है।** अपने कथ्य और कथावस्तु में 'जल झुका हिरन' एक सार्थक और सजीव उपन्यास है। और एक बात जो पहले भी कही गयी है कि 'जल झुका हिरन' एक सहज और साधारण उपन्यास है। और यह बात भी पहले कही गयी है कि 'जल झुका हिरन' की अंतर्वस्तु में जो आत्मीयता और खुलापन है उसमें एक प्रकार का आकर्षण है। हम बार-बार नहीं तो एक बार ही उन चीजों, घटनाओं, संबंधों और सबसे ज्यादा मनुष्य की प्रवृत्तियों को देखना – अनुभव करना चाहते हैं। देखी गयी चीजों को फिर से देखने की, अनुभव में आये हुए प्रसंगों को फिर से अनुभव करने की लालसा हमें इस उपन्यास में मिलती है। यह देखना भी अच्छा लगता है कि क्या प्रेम में मनुष्य प्रेम की तरह हो जाता है ? उपन्यास का अंतिम अंश मर्म को आलोड़ित करनेवाला है – 'कभी तुमने पत्र लिखने से मना किया था। तब मर्माहत हुआ था। सारी दुनिया अचानक अंधेरी हो गयी थी – बेरंग और मनहूस। आज इस पत्र को लिखते हुए छिल रहा हूँ। आखिर बार-बार निष्कवच – नहीं निश्चर्म हो जाने से क्या फायदा ? तुम्हारे कशाघात मैं जानता हूँ। तुम्हारे नहीं हैं, मेरी नियति के हैं।' 'यही है मेरी कमाई-धमाई।'

देखता हूँ कि प्रेम किस तरह जीवन को मर्यादित करता है। 'जल झुका हिरन' में यह मर्यादा प्रारंभ से अंत तक है और यही इस उपन्यास की सार्थकता है। 'जल झुका हिरन' में हिरन जल पर झुका तो है, पर उसकी तृषा को कितना जल मिला यह अनकहा है और यही अनकहापन शान्ति सुमन की समर्थ शब्द चेतना है।

●

शांति सुमन : एक गीति प्रतिमा

❑ सुजाता सिन्हा

शांति सुमन एक प्रसिद्ध गीतकार-कवयित्री ही नहीं, लेखिका एवं राजभाषा हिन्दी की विदुषी भी हैं। इनका जन्म 15 सितम्बर 1942 ई० को उत्तरी बिहार के सहर्षा जिले के कासीमपुर गाँव में हुआ था। वह गाँव इतना अविकसित और पिछड़ा था कि एक सीधा रास्ता तक उसमें नहीं था। गरीबी, अशिक्षा और अंधविश्वासों की परम्परा को जीता हुआ मिथिलांचल के अनेक गाँवों की तरह एक गाँव वह भी था। पिता श्री भवनन्दन लाल दास जो कुँवर जी के नाम से अधिक चर्चित रहे हैं, हिन्दी और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता हैं। कृषि उनका मुख्य व्यवसाय था। गाँव में सौ बीघे जमीन के मालिक थे, पर खेती बटायेदारों के द्वारा होती थी। छः भाई और तीन बहनों में इनका स्थान पहला है। जब इनका जन्म हुआ, पिता अंग्रेजी राज में डिफेन्स में नौकरी करते थे। इसलिए पिता और उनसे अधिक बच्चा काका (मदन मोहन लाल) के महात्त्वाकांक्षी विचारों के कारण इनकी शिक्षा में कोई कमी नहीं हुई।

प्रारम्भ में गाँव में ही इनकी पढ़ाई शुरू हुई। अपने दरवाजे पर ही बाँस की फट्ठियों से बनी बेंच पर अपने टोले और गाँव के अन्य बच्चों के साथ मनोहर पोथी पढ़ी। मालिक की बेटी होने के कारण कोई मास्टर जी – पंडित जी इन्हें कुछ नहीं कहते थे और ये बच्चों की नेता बनी फिरती थीं। सुधा (बचपन की एक मित्र) इनका बस्ता लेकर स्कूल जाती थी। इस तरह यहाँ की पढ़ाई समाप्त कर पिता ने इनको अपनी बहन (फुआ) के पास मिडिल स्कूल में पढ़ने के लिये भेज दिया। गाँधी विद्यालय राजपुर (अब मधेपुरा जिला में) में इन्होंने कुछ वर्षों तक शिक्षा ली। पुनः अपने गाँव आकर पास के गाँव सुखपुर के चेतमणि विद्यालय से मिडिल पास कर वहीं के एक उच्च विद्यालय की छात्रा रहकर स्वतंत्र छात्रा के रूप में मैट्रिक की परीक्षा सुपौल के बहुद्देशीय उच्च विद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। यह एक रिकार्ड था। कासीमपुर तो क्या, इसके बीस-तीस गाँवों में किसी लड़की ने तब मैट्रिक पास नहीं किया था। इससे उत्साहित होकर पिता इन्हें आगे पढ़ाना चाहते थे, पर उन दिनों गाँव की मानसिकता इतनी पिछड़ी हुई थी कि किसी लड़की को बाहर भेजकर पढ़ाना असंभव ही नहीं, असम्मानजनक भी था। इसलिए एक अनुकूल परिवार ढूँढ़कर 25 फरवरी 1959 को इनका विवाह हुआ। पति जागेश्वर लाल दास ने अच्छी भूमिका निभाई और उस वर्ष लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर में इनका नामांकन प्रीयूनिवर्सिटी (आई० ए० प्रथम वर्ष) में हो गया। फिर तो 1963 में हिन्दी ऑनर्स और 1965 में विशेष पत्र-प्रेमाख्यानक

सूफी काव्य के साथ एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। 1971 में 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। सितम्बर 1966 में इनकी नियुक्ति अस्थायी रूप में महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय के हिन्दी-विभाग में हुई। इसके पूर्व उन्होंने महिला शिल्पकला भवन महाविद्यालय में भी कई महीनों तक प्राध्यापन किया जिसकी सेवा-सम्बद्धता उन्होंने नहीं ली। 1972 के जुलाई से इनकी सेवा विभाग में स्थायी हुई। 1982 में ये रीडर हुईं तथा 1991 में प्रोफेसर के पद पर संस्तुत हुईं। सेवा-मुक्ति तक ये महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय के हिन्दी-विभाग से सम्बद्ध रहीं। 2004 के सितम्बर में अध्यक्ष पद पर रहते हुए ये सेवा-मुक्त हुईं।

शान्ति सुमन प्रवेशिका में अध्ययन-काल से ही कवितायें विशेषकर गीत लिखती रहीं। अनुभव और भाषा का कच्चापन लिये उन दिनों की कुछ रचनायें अब भी सुरक्षित हैं। प्रवेशिका में पढ़ते हुए ही उन्होंने महादेवी, पन्त, बच्चन आदि की कविताओं को पढ़ा था। प्रेम को समझे बिना तभी बिरह के गीत लिखने लगी थीं। निश्चय ही महादेवी के गीतों ने उन दिनों उनके कोमल मन पर अपनी छाप छोड़ी थी। 1960 से इन्होंने अपनी समझ के साथ गीत लिखना शुरू किया। उन दिनों 'रश्मि' नामक पत्रिका में इनकी पहली गीत रचना छपी। उसके बाद तो गीत पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे। कवि-सम्मेलनों में भी ये आमंत्रित होने लगीं और मंचों पर इन्होंने अपनी अलग छवि बनायी। अन्य कवयित्रियाँ मंच के लिये ही लिखती-पढ़ती थीं। साहित्य से उनका गहरा लगाव नहीं था। उनका साहित्य मंच से शुरू होकर मंच पर ही समाप्त हो जाता था। **शांति सुमन ने साहित्य को अपने जीवन का हिस्सा बनाया। वे साहित्य से गहरे रूप से जुड़ीं। एक स्थायी भाव की तरह कविता इनके मन-प्राण में बस गई। कई-कई जरूरी कामों में एक कविता भी जरूरी काम की तरह इनके लिये नहीं थी, अपितु एक जरूरी काम कविता के साथ अन्य और काम थे। इसलिये महाविद्यालय में एक विदुषी प्राध्यापिका के रूप में नाम-यश प्राप्त करने के बाद भी ये पहले रचनाकार ही बनी रहीं, तब प्राध्यापिका।** कवि-सम्मेलन के मंचों की इन्होंने उपेक्षा नहीं की। यात्रा सदैव इनके पाँवों से बँधी रही। महीनों के वेतन से जाने कितने रुपये कम मिलते थे छुट्टियों में रहने के कारण। किन्तु इन्होंने कभी उसकी चिन्ता नहीं की। इनका मानना था कि एक अच्छी रचना मंच के द्वारा जनता तक पहुँचती है। यदि हम लोकप्रियता और धन कमाने के लिये मंच का दुरुपयोग करें तो इसमें मंच दोषी नहीं है। राजनीति ही नहीं, साहित्य में भी जनता/पाठक की बड़ी भूमिका होती है। हम जिनके लिये लिखते हैं, चीजें उन तक पहुँचती हैं तो इससे अच्छी बात

और क्या होगी।

उन दिनों बनारस में डॉ० शंभुनाथ सिंह के गीतों की बड़ी चर्चा थी। वही समय था जब बड़ी–बड़ी नावों को एकजुट कर उन बेड़ों पर ही गंगा नदी में मंच बनाया गया था। **अपने शुरू के दिनों में शांति सुमन जिन मंचों पर गईं, उनमें काशी में गंगा की लहरों पर हिलती नावों के मंच पर अपने गीतों के पाठ की स्मृति आज भी इनको हर्ष से भर देती है।** उस मंच पर उस समय के सारे नामी गीतकार-कवि उपस्थित थे। पुराने कवियों के अतिरिक्त डॉ० शंभुनाथ सिंह, उमाकांत मालवीय, माहेश्वर तिवारी, उमाशंकर तिवारी, गोपीकृष्ण गोपेश, नर्मदेश्वर उपाध्याय, भारतभूषण, रवीन्द्र भ्रमर, भोलानाथ गहमरी, कैलाश गौतम आदि। इन कवियों-गीतकारों के बीच अपने गीतों की प्रस्तुति पर इनको प्रशंसा मिली थी।

ऐसे ही कवि-सम्मेलनों के क्रम में लक्ष्मीकांत सरस द्वारा आयोजित चेन्नई (तब मद्रास) का कवि सम्मेलन भी शांति सुमन की स्मृति में अब भी है जहाँ उमाकांत मालवीय के अतिरिक्त सोम ठाकुर तथा कलकत्ता के कई प्रसिद्ध गीतकार थे। मरीना बीच पर गीतों का पाठ और लौटने पर उस मेघाम्बर समुद्र की लहरों पर रचे गये अपने गीतों की सुखद अनुभूतियाँ इनको आज भी हर्ष से भर देती हैं। इस प्रसंग में कलकत्ता, नैनीताल, इलाहाबाद, लखनऊ, इटावा, आगरा, देहरादून, मिर्जापुर आदि के अतिरिक्त पश्चिम बंगाल के कोयला खदानों, बस्तियों एवं शहरों में आयोजित कवि-सम्मेलन में पढ़े गये अपने गीतों पर जनता–श्रोताओं का संवाद एवं सम्पृक्ति इनको आज भी बीते कल में ले जाती हैं। **हल्दिया में कवि-सम्मेलन की अगली सुबह मछलियाँ दिखाते मछुआरों की गरीबी के भीतर से झाँकती एक चमक जैसे शान्ति सुमन को कवि-सम्मेलन में मिले नाम-यश, लोकप्रियता, धनराशि के अतिरिक्त अनुभवों के आलोकवर्ण सुख भी प्राप्त हुए थे।** इस प्रकार शान्ति सुमन ने बिहार, बंगाल, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, आसाम, चेन्नई, उत्तरांचल, उड़ीसा, जम्मू-कश्मीर आदि अनेक स्थानों पर कवि-मंचों, पत्रिकाओं, दूरदर्शन-केन्द्रों तथा आकाशवाणी के प्रसारणों के द्वारा सम्पूर्ण भारत में अपने काव्य-यश का विस्तार किया।

प्रकाशित कृतियों में 'ओ प्रतीक्षित' शान्ति सुमन का पहला गीत-संग्रह है जो लहर प्रकाशन, इलाहाबाद से 1970 में प्रकाशित हुआ। बाद में 'परछाईं टूटती'–'78, 'सुलगते पसीने'–'79, 'पसीने के रिश्ते'–'80, 'मौसम हुआ कबीर'–'85, मेघ इन्द्रनील' (मैथिली गीतों का संग्रह) – '91, 'तप रहे कँचनार'–'97, 'भीतर-भीतर आग'–'02, 'पंख–पंख आसमान' (एक सौ एक चुने हुए गीतों का संग्रह)–'04, 'एक सूर्य रोटी पर'–'06, 'धूप रँगे दिन'–'07,

इनके प्रकाशित गीत-संग्रह उल्लेखनीय हैं। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'समय चेतावनी नहीं देता'–1994 में प्रकाशित हुआ। शान्ति सुमन का एक उपन्यास 'जल झुका हिरन'–1976 में प्रकाशित हुआ। इनकी आलोचना की पुस्तक 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' – 1993 में प्रकाशित हुई। शान्ति सुमन ने 'सर्जना', 'अन्यथा' का सम्पादन किया और 'बीज' का सह सम्पादन भी। दो पत्रिकायें – 'भारतीय साहित्य' और 'कन्टेम्परारी इन्डियन लिटरेचर' (अंग्रेजी में) जो दिल्ली से छपती थीं, उनकी भी ये सह सम्पादक थीं।

शान्ति सुमन की रचनायें देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। इन्होंने गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर दिल्ली में आयोजित सर्वभाषा कवि-सम्मेलन में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद-पाठ किया।

शान्ति सुमन जिनसे गीत-कविता को व्यापकता मिली है और जिनको सुनते हुए लय और राग-बोध में अंतर्मन डूबता चला जाता है, को पाठकों, श्रोताओं और संवेदनशील जनता का अजस्र स्नेह और आदर मिला है। इन्होंने नवगीत से जनवादी गीत तक की यात्रायें तय की हैं। एक विस्तृत काव्य-फलक की स्वामिनी शान्ति सुमन ने जनता का विस्तृत सम्मान भी प्राप्त किया है। सम्मानों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक पुरस्कार भी प्राप्त किये हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं – बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से साहित्य सेवा सम्मान एवं पुरस्कार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कवि रत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान एवं पुरस्कार, अवंतिका (दिल्ली) से विशिष्ट साहित्य सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद् से विद्या वाचस्पति का सम्मान, हिन्दी प्रगति समिति द्वारा भारतेन्दु सम्मान, नारी सशक्तीकरण के उपलक्ष्य में सुरंगमा सम्मान, विन्ध्यप्रदेश से साहित्यमणि सम्मान। 2005 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्य भारती तथा 2006 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा सौहार्द सम्मान से ये सम्मानित एवं पुरस्कृत हुईं।

शांति सुमन को डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह ने विकसनशील संवेदनशीलता की गीतकर्त्री माना है। **इन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था की अमानुषिकताओं को अपने गीतों के लय-छन्द में व्यक्त किया है। इसलिए गरीबी और अभाव की आग इनके गीतों में मिलती है। डॉ० शिवकुमार मिश्र इनके गीतों को 'मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे हुए गीत' मानते हैं।** उन्होंने लिखा है कि ''मुक्तिबोध ने कविता को जनचरित्री के रूप में पारिभाषित किया है। शान्ति सुमन के ये गीत मुक्तिबोध की इस उक्ति का रचनात्मक भाष्य हैं।'' राजेन्द्र प्रसाद सिंह इनके गीतों को मध्यवर्ग के जीवन-संघर्षों से रचे गये मानते हैं तो प्रसिद्ध जनगीतकार नचिकेता के लिए शान्ति सुमन के गीत 'वस्तुतः नक्सलवादी किसान-आन्दोलन और उसकी क्रांतिकारी सामाजिक चेतना की

उपज हैं।' डॉ० रेवतीरमण के अनुसार 'मैथिली संस्कृति के वे सारे उपकरण जो नागार्जुन की कविता को अमरता देने वाले हैं, बड़े शालीन तरीके से शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय हैं।' डॉ० मैनेजर पाडेय और कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने भी इनके गीतों के रचाव एवं प्रभाव की चर्चा बड़े खुले मन से की है।

सम्प्रति शान्ति सुमन हिन्दी और मैथिली के गीतकारों की अग्रिम पंक्ति में हैं। गीत को वे हिन्दी कविता का मुख्य स्वर मानती हैं। उनका मानना है कि अन्य भारतीय भाषाओं में भी गीत की यही स्थिति है। इन्होंने उपन्यास तो लिखा ही है, समीक्षायें भी लिखती रही हैं। पर मुख्य रूप से शान्ति सुमन हिन्दी नवगीत एवं जनवादी गीत की प्रतिबद्ध गीतकर्त्री हैं। प्रकृति, संघर्षशील श्रमजीवी जन का जीवन-यथार्थ और सामाजिक विसंगतियों का विरोध एवं विद्रोह इनकी गीत-कविता के मुख्य स्वर हैं।

नवगीत कोकिला : डॉ० शान्ति सुमन

❑ डॉ० पुष्पा गुप्ता

डॉ० धर्मवीर भारती ने नवगीतकारों में जिन पाँच कवियों और एकमात्र कवयित्री के वक्तव्य को 'धर्मयुग' में स्थान देकर नवगीत का इतिहास रचा वह कवयित्री हैं – डॉ० शान्ति सुमन। जिस प्रकार युगीन परिस्थितियों के प्रतिक्रिया-स्वरूप छायावद का उदय हुआ और छायावादी चतुष्टय में महादेवी का नाम आया है, ठीक उसी प्रकार युगीन परिस्थितियों के दबाव में नवगीत जनवादी गीत के रूप में विकसित और समृद्ध हुआ। जनवादी गीत की प्रतिष्ठित कवयित्री डॉ० शान्ति सुमन की कविताओं की मिठास विद्यापति के 'देसिल वयना' की याद दिलाती है। डॉ० शान्ति सुमन का जन्म 15 सितम्बर 1944 ई० को बिहार प्रांत के सहरसा जिला के कासीमपुर गाँव में पिता श्री भवनंदन लाल 'कुँवर' एवं माता श्रीमती जीवनलता देवी के घर हुआ। इस महान विभूति की कर्मस्थली मुजफ्फरपुर है, जो उत्तर बिहार की सांस्कृतिक राजधानी के नाम से जानी जाती है।

इन्होंने उच्च शिक्षा मुजफ्फरपुर के लंगट सिंह महाविद्यालय में पायी एवं महंत दर्शनदास महिला महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापन-कार्य प्रारंभ किया, अतः यह इनकी कर्मस्थली है। विदुषी, मृदुल-स्वभाव एवं सुमधुर वाणी के लिए जानी जाने वाली शांतिप्रिय और मृदुभाषिणी तो हैं ही, कोमलता तो इनके मनः प्राणों में बसी हुई है। इसी ने इन्हें वन्दनीय और महान बनाया है। **इनके गीतों में समाज-परिवेश, संबंध और संस्कृतियाँ, पर्व-त्योहार आदि अपने मूल रूप में सहज ही अभिव्यक्त हुए हैं। नवगीत और जनवादी स्वर उन्मुक्त होकर इनके गीत काव्य में ढल गये हैं। इनके सारे गीत अनुभव के रस में पगे हुए हैं और भाषा इनकी अनुगामिनी है।**

सत्तर के दशक के पहले से ही रचनाशील शांति जी ने कई महत्वपूर्ण कृतियाँ हिन्दी संसार को दी हैं। 1970 में 'ओ प्रतीक्षित', 1976 में 'जल झुका हिरन', 1978 में 'परछाईं टूटती', 1979 में 'सुलगते पसीने', 1980 में 'पसीने के रिश्ते', 1985 में 'मौसम हुआ कबीर', 1991 में 'मेघ इन्द्रनील' (मैथिली), 1993 में 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य', 1994 में 'समय चेतावनी नहीं देता', 1997 में 'तप रहे कँचनार', 2002 में 'भीतर-भीतर आग' प्रकाशित हुआ। 'पंख-पंख आसमान' चुने हुए 101 गीतों का संकलन है, जो नवगीत के प्रमुख हस्ताक्षर श्री नचिकेता के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ है। इस साहित्य यात्रा में शांति जी अनेक बार सम्मानित और पुरस्कृत होती रही हैं। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से 'साहित्य सेवा सम्मान', हिन्दी साहित्य

सम्मेलन प्रयाग से 'कवि रत्न सम्मान' बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा 'महादेवी वर्मा सम्मान' से सम्मानित और पुरस्कृत हुईं। इनके अतिरिक्त 'अवन्तिका – दिल्ली' और शाकुन्तलम् – मुजफ्फरपुर से विशिष्ट सेवा सम्मान, दिनकर साहित्य परिषद् द्वारा सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद् से 'विधावाचस्पति' सम्मान, विंध्य प्रदेश से 'साहित्य मणि' सम्मान इन्होंने प्राप्त किया और 15 सितम्बर 05 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'साहित्य भारती' सम्मान प्राप्त हुआ। डॉ० शांति सुमन की रचनाओं का मूल तत्त्व लोक संस्कृति और लोकजीवन है। उनके सामने प्रकृति और प्रेम, जीवन की आशा-आकांक्षाएं, समता और विषमताएँ शब्दों में ढल कर गीत बन गए हैं। खेत-खलिहानों में काम करने वाले मेहनतकश किसान या पत्थर तोड़ने वाले मजदूरों के 'हौसले का गीत' इन्होंने गाया है : 'बहते हुए पसीनों को हम, तमगों से पहने/नहीं देखतीं आँखें अब रेगिस्तानी सपने।' रिश्तों से बँधा जीवन कई-कई बार गीतों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा जाता है। दादा-दादी से नाती-पोते तक को गीतों में इस प्रकार समेट लिया गया है कि संबंधों के रुन-झुन मनःप्राणों में बस जाते हैं। धरती से आकश तक 'दरवाजे के आम-आँवला से आँगन के तुलसी चौरा' तक के चित्र एक कुशल चितेरे की भाँति मन-आँगन में उतार देने की कला अनूठी लगती है। सभी सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ शांति जी के पास आकर कोमल साँचे में ढलकर निखर जाती हैं। इनके लिए इन्हीं की पंक्तियाँ मैं रख रही हूँ : 'केसर रंग-रँगा मन मेरा, सुआपंखिया शाम है/बड़े प्यार से सात रंग में, लिखा तुम्हारा नाम है।'

(सितम्बर 2006 में जन्मदिन पर)

●

शान्ति सुमन के गीत-संग्रहों से

कुछ चुने हुए गीत

चयन : श्रेयसी वर्मा

ओ प्रतीक्षित

रोएँदार कुहासे

रोएँदार कुहासे -
आँखें झँपी-झँपी,
सोनरायी पातों पर ठहरी भोर

प्राणों से उलझे प्राण
झीलों भर हँसे गुलाब
उजले-काले हुए अँधेरे
भागे आहट दाब

नमी बेतहासे -
खुशबू कँपी-कँपी
कबूतर के पंखों पर ठहरी भोर

औंधे कजरौटे सा आसमान
फटे आँचल सी नदी
पथराए बरगद के नैन
ठहरी सी कोई सदी

मौसम ने फेंके पासे
मछली छपी-छपी
बरफों के फूलों पर ठहरी भोर

ठण्डे लोहे सा एकान्त
कनेरों सी दुसियायी रात
सूरज ने छिड़के अबीर
दुहरे हैं कुहरी के गात

महकी हैं साँसें
सुधियाँ तपी-तपी
अलसायी पलकों पर ठहरी भोर

●

पत्थरों का शहर

यह शहर पत्थरों का पत्थरों का शहर
टूटी हुई सुबह यहाँ
झुकी हुई शाम
जेलों से दफ्तर के
शापित आराम
गाँठों सी गलियों में भरी-भरी बदबू
साफ हवा की जगह पिएँ सभी जहर
पत्थरों का शहर
घुटते संबंधों की
चर्चा बदनाम
धुएँ के छल्लों सा
जीना नाकाम
मकड़ी के जालों सी बिछी हुई उलझनें
सतही शर्तों से सब दबे हुए पहर
पत्थरों का शहर
गोली में नींद यहाँ
बिके खुले आम
साँसों के कर्ज लिखे
इच्छा के नाम
ताजा खबरों को जीते हैं यहाँ लोग
डूबती निगाहों में नुमाइशी लहर
पत्थरों का शहर
सिर्फ औपचारिक हैं
परिचय - प्रणाम
चाय पिला जोड़े सब
चीनी के दाम
अंधी दीवारों से टकरा निरुपाय
लँगड़े सुधारों के कँफसते कहर
पत्थरों का शहर ●

जाल फेंकता रहा

फँसी नहीं मछली
जाल फेंकता रहा मछेरा
नीम-छनी चाँदनी
खड़ी राह रोके,
समय का पहरुआ -
बार-बार टोके,
बूँदे फिर उछलीं -
एक ओर गहरा अंधेरा
जाल फेंकता रहा मछेरा

गंधों के मोहपाश,
दरवाजे खड़े रहे,
लाखों त्योहार-पर्व -
सपनों में पड़े रहे,
साधें यों बिछलीं -
तिर आया नैन में सबेरा
जाल फेंकता रहा मछेरा

डगमग सी घटनइया,
खाँचे हैं खाली,
सुधि में समाई है -
पीड़ा घरवाली,
कह दे जो ओ छली !
उलट जाय बीच नदी बेड़ा
जाल फेंकता रहा मछेरा

●

क्रोशिया काढ़े दिन

क्रोशिया काढ़े दिन बीते –
अब तो चूल्हे-चौके की बात

धूओं से भर जाती घर की छत सुबह-सुबह,
किलक और ठुनक दे मन की सब बातें कह,
कोहबर के पुष्प-रेणु रीते-
अब तो बस सब मौके की बात।

बेटी सयानी से बूढ़ी सी सास तक,
चर्चा सरनाम हुई नैहर की आस तक,
मूल्यहीन मूल्य सभी जीते –
आमद-खर्चों में धोखे की बात।

अब तेरे नाम नहीं शाम का हरेक दर्द,
डायरी लिखती है गीतों के साथ कर्ज,
अब होते नहीं जीने के कई सुभीते –
पानी पर उठते फोके की बात

●

नागकेसर हवा

मुट्ठियों में बन्द कर ली
नागकेसर हवा

एक तिनका धूप लिखती
है भला-सा नाम
देखना फिर अतिथि
आयेगा तुम्हारे गाम
सर्दियों में नरम हाथों
से धरा कहवा

गेहुँओं की पत्तियों पर
छपा सारा हाल
फुनगियों पर दूब की
मौसम चढ़ा इस साल
रंग हरे हो गये पीले
बात में मितवा

एक चिड़िया चोंच भर
लेकर उड़ी अनबन
भाभियों के खनकते
हाथों हिले कंगन
स्वागतम् गूंथी हथेली
धो गयी शिकवा

●

रोशनी घरों में

लौट रही रोशनी घरों में
जैसे कुछ खोया अधरों में

खामोशी में हिलते पर्दे
उड़ रहे किताबों से गर्दे
आ जाना गीत के स्वरों में

लगती सब परिभाषा झूठी
कच्चे पीतल की अंगूठी
सोने की ईंट बादरों में

दिन कोई भूला बनजारा
पेड़ों का ले रहा सहारा
होती हूँ बन्द अक्षरों में

●

परछाईं टूटती

परछाईं टूटती
हल्दी के अंगों से उबटन-सी छूटती

हवा-हवा एक हुई
गीतों की टेक हुई
दूर अंधेरे में कोई कोंपल फूटती

धूप-छन्द चट्टानें
इन्द्रधनुष सिरहाने
यादों की बिटिया अंगूठे को चूसती

नदी से, गलीचे से
पैरों के नीचे से
डूबते किनारों की बातें दो टूक-सी

जानें हम-तुम कैसे
घुले-मिले रंगों-से
शामों की सैर आसमानों की रुख्सती

●

खुद को टेरते

यह दिन भी बीत गया
लो, खुद को टेरते

धूप-हंसी छूट गई
किरन-डार टूट गई
फूल झरे तुलसी के चौरे
कनेर के

भेद आसमानों के
गीत ये पियानों के
हौसले मकानो के घिर गये
मुंडेर से

मुट्ठी भर पेड़ खड़े
डार-पात के नखरे
मुँह ढँक के पड़े हैं किनारे
गदबेर-से

मेघ तरु फूले

मेघ-तरु फूले
साथ थे, कुछ दूर चलकर रास्ता भूले

हवा के ये महल झोंके
बीन बजते घोंसलों के
बरुनियों के देवदारु तले पड़े झूले

कब कहां, ये छूट जायें
धान-बाली फूट जायें
आंख से देखे,
उठाकर हाथ से छूले

धूल-माटी के घरौंदे
आंधियों के पांव, पौदे
दस दिशा, दस हाथ, फिर भी लग रहे लूले

बादल लौट आ

दुख रही है अब नदी की देह
बादल लौट आ

छू लिये हैं पांव संझा के
सीपियों ने खोल अपने पंख
होंठ तक पहुंचे हुए अनुबन्ध के
सौंप डाले कई उजले शंख
हो गया है इन्तजार विदेह
बादल लौट आ

बह चली है बैजनी नदियां
खोलकर कत्थई हवा के पाल
लिखे गेरू से नयन के गीत
छपे कोंपल पर सुरभि के हाल
खेत के पतले हुए हैं रेह
बादल लौट आ

फूलते पीले पलासों में
कांपते हैं खुशबुओं के चाव
रुकी धारों में कई दिन से
हौसले से कागजों की नाव
उग रहा है मौसमी संदेह
बादल लौट आ

गंध लिखी देहरी

माँ की परछाईं-सी लगती
गोरी-दुबली शाम
पिता-सरीखे दिन के माथे
चूने लगता घाम

दरवाजे के सांकल -
छाप अंगुलियों की ठहरी
भुनी हुई सूजी की मीठी
गंध लिखी देहरी
याद बहुत आते हैं घर के
परिचय और प्रणाम

उजले-पीले कई-कई
संदर्भ सलोने-से
तुतली जिद पर गुस्से लगते
कांच खिलौने के
नूपुर पहन बहन का हंसना
फिरना सारा गाम

कहीं-कहीं दुखती है
घर की छोटी आमदनी
धुआं पहनते चौके
बुनते केवल नागफनी
मिट्टी के प्याले-सी दरकी
उमर हुई गुमनाम

कोई बच्ची

जब कभी कोई बच्ची
वर्षा में नहाती है
घर की याद आती है

डाल पकड़ तोड़ना
गुच्छे कनेर के
होठ दबी हंसी
पूछना घेर के
हर बार गंध नहायी हवा
इस जगह लाती है
घर की याद आती है

जैसे रख दी गई
रंगों के घर में
एक अबूझ प्यार
समा गया हो नजर में
होते ही सुबह सांसें
लाल ईंट-सी पकाती हैं
घर की याद आती है

इमामी की महक से
भरी हुई दुपहरी
भुनी हुई सूजी की
गंध लिखी देहरी
गेरू से रंगी आंखें
इस घाट पर लजाती हैं
घर की याद आती है

●

हम मुठभेड़ हुए

थाली उतनी की उतनी ही
छोटी हो गयी रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
सबसे बूढ़ी दादी अपने गाँव की

फेन-फूल-से उठे, मगर राखों के ढेर हुए
धँसे हुए आँखों के किस्से, हम मुठभेड़ हुए
भूख हुई अजगर-सी, सूखी
तन की बोटी-बोटी
कहती बड़की काकी अपने गाँव की
सबसे सुन्दर काकी अपने गाँव की

अपना तो घर गिरा, दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी अब
दिन-दिन होती छोटी
कहती नवकी भौजी अपने गाँव की
सबसे गोरी भौजी अपने गाँव की

करना होगा खत्म कर्ज, यह सूद उगाही, लहना
लापरवाह व्यवस्था के खूँटे में बँधकर रहना
नाम भूख का रोटी पर
जीतेगी अपनी गोटी
कहती रानी बहना अपने गाँव की
सबसे छोटी बहना अपने गाँव की

●

बेटा माँगे चन्द्रमा

फटी हुई गंजी ना पहने
खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, माँगे
एक पूरा चन्द्रमा

पाटी पर वह सीख रहा
लिखना ओ-ना-मा-सी
अ से अपना, आ से आमद
धरती सारी माँ-सी
बाप को हल में जुता देखकर
सीखे होश सम्हालना

घट्ठे पड़े हुए हाथों का
प्यार बड़ा ही सच्चा
खोज रहा अपनी बस्ती में
दूध नहाया बच्चा
बाप सरीखा उसको आता
नहीं भूख को टालना

अभी समय को खेतों में
पौधों-सा रोप रहा
आँखों में उठने वाले
गुस्से को सोच रहा
रक्तहीन हुआ जाता
कैसे गोदी का पालना

●

रानी का गीत

रानी के पास हैं बहुत धन
हाथी-घोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

रानी न खेत जाये
करे न सिंचाई
रानी की थाल में है
खीर औ' मलाई
आग जो लगाये उनके
हाथ गोरे-गोरे
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

खटे न कभी मिल में
करे न कताई
रानी की देह पे है
रेशमी रजाई
पीठ के निशान भी न गिने
उनके कोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

रानी के पाँव लगे
नहीं धूल-छाई
रानी की भेंट चढ़ी
हमारी कमाई
चान औ' सुरुज हाथ उन्हें
सभी जोड़े

कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

कौन कहे समय की भी
होती है सिलाई
काटता है वही जो
करता बोआई
कभी छोटी चिड़िया भी बाज
को मरोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

●

लाल कवच पहने

जिन हाथों ने हल जोते
जिन हाथों ने वस्त्र बुने
धन्यवाद उन हाथों -
के ही हैं सारे सपने

खान-खदानों में जो निश-दिन
जलती रहती आग
कल-कारखाने में जो खेले
इस्पातों से फाग
लहूलुहान समय को जिसने
रूप-रंग दिये अपने

पिघलाकर अँधियारे को जो
सुबहें सुर्ख निकाल
चिनगारी बोते हैं उनकी
खातिर जो कंगाल
अपनी ताकत तोली जिसने
मिहनत लगी चमकने

झोपड़ियों की आँखें खोले
ये उमड़े जन-ज्वार
आनेवाले कल की हँसी -
खुशी के पहरेदार
जुल्मों को नकारकर जिसने
लाल कवच पहने

●

भूखों नहीं मरेंगे लोग

बन्दोबस्त हुआ अच्छा अब
भूखों नहीं मरेंगे लोग
अपने ही सपनों को खाकर
अपना पेट भरेंगे लोग

घर के सर्द हुए चूल्हे तो
इससे क्या बदहाल हुए
राजकुँवर की अगवानी में
कितने मालामाल हुए
पानी की कीमत पूछेंगे
प्यासे नहीं रहेंगे लोग
पूँछ उठाये मछली जैसे
खुद से जिक्र करेंगे लोग

इससे क्या आगों की धमकी
मिली आज झोपड़ियों को
बात-बात में करें उतारा
हम आँखों में परियों को
कागज के दस्तावेजों से अब
अपनी उमर गढ़ेंगे लोग
पत्थर पर भी खुदी रोटियों
की खातिर ललचेंगे लोग

कच्चे घर से वर्षा में भी
तने हुए जो हाथ यहाँ
खुशियों की खातिर वे कब से
जूझ रहे हैं यहाँ-वहाँ
बेजुबान इस बस्ती को
अब पूरा मुखर करेंगे लोग
खुशियों को कालेपानी से
वापस वही करेंगे लोग ●

बाँटो तुम चिनगी

सड़कों पर बनते जुलूस, देखूँ जब मेरे बेटे
लगता एक गलत आजादी, तेरे हाथ लगी
मिहनत तेरी नये सिरे से
इस मिट्टी को बुनती
धरती के रेशे-रेशे को
ताकत देकर रचती
अगहन हो या पूस, हाथ कटते जब तेरे बेटे
काली आँधी में फौलादी, आग नयी सुलगी

पूरा एक वसंत उठी
बाँहों में खिलता है
कई भूमिगत आगों में संकल्प
निखर चलता है
बने बहुत फानूस, होश में आओ मेरे बेटे
देखो सिर पर लिए मुनादी, पेड़ों की फुनगी

रोप समय को पौधे-सा तुम
इन्तजार हो करते
स्याह व्यवस्था को अपने
मासूम खून से रंगते
दहके लाल बुरूश, दहकते तुम भी मेरे बेटे
हवा घूमती बन शहजादी, बाँटो तुम चिनगी

●

तने हुए कच्चे घर से

तेरे बाबू लाते थे कर्जे में गेहूँ के दाने
तेरी ही खातिर आती थीं घर में कुछ खुशियाँ बेटे

तेरी माँ धरती-सी सपना
बुनती खुशहाली का
बोझ उठाती है छाती पर
दुखती बदहाली का

अँतड़ी की ऐंठन में खोजें हम इस जीवन के माने
जब भी चमका करे तुम्हारे हाथों में हँसिया बेटे

भीग-भीग कर वर्षा में कुछ
तने हुए कच्चे घर से
तुमको बढ़ते देखा मैंने
उस अनथके असर से

अपनी हालत बदलेगी, बदलेंगे मौसम के गाने
मिहनत के बहे पसीने ही बनते हैं अब मसियाँ बेटे

अपने घर में आज तलक जो
बना रहे थे तहखाने
उनसे ही खुलने को हैं उनके
जुल्मों के अफसाने

झोपड़ियों की आँखें लेंगी लील कचहरी-थाने
इतिहासों की कथा बदल देंगी तेरी हँसियाँ बेटे

●

हल-सी जिन्दगी

आ गये
काली आँधियों के दायरे में हम
खेत में जलती फसल-सी जिन्दगी

फसल जैसे आइना हो
निरखते थे रूप
बांह में हरियालियां पहने
पकड़ते थे धूप
फूल की खुशबू कहाँ कुम्हला गयी
रेत में धँसते कमल-सी जिन्दगी

दहशतों की नींद सोयी
हर गली, हर मोड़
देर कुछ जीकर मरा है
रोशनी का मोर
छू गया हो पाँव जैसे आग से
धुंआ, कुहरा, रेत-छल-सी जिन्दगी

वे भी दिन थे रंग पढ़कर
बताते थे नाम
अब हमारे हाथ को कंधे
नहीं हर शाम
भूत जैसे पेड़, पोखर, बस्तियाँ
बैल बिन बेकार हल-सी जिन्दगी

●

फूल की लाल पंखुड़ियाँ

विंधी फूल की लाल पंखुड़ियाँ
कांट के वन में

भूख लिए रोटी के सपने
झुकी हुई पेटों पर अपने
पाँखें खुजलाती हैं चिड़ियाँ
कांट के वन में

जहाँ-तहाँ बबूल-वन फूले
उड़े धूल के बड़े बगूले
रेत हुई जलहीन मछलियाँ
कांट के वन में

खिला खेत में खून-पसीना
फलकी आस लिये यह जीना
तड़क रहीं कमजोर पसलियाँ
कांट के वन में

हाथों को मशीन-सा करके
बच्चों की हंसियों से भरके
सुबह उगी ज्यों लाल बिजलियाँ
कांट के वन में

●

दूध-फूल से बढ़ेंगे

आज तक नहीं छूटी
रेहन पर लगी जो
जमीन पिछुवारे की
बहिना की शादी में

मेड़ पर उगा वह पेड़ अमरूद का
खेत के साथ ही महाजन का हो गया
हिलते हैं पत्ते अब भी अपनी आँखों में
नारंगी था अभी मन सहजन-सा हो गया

गेहूँ जो होता तो
कूट-पीस खाते;
पर कुछ भी हुआ नहीं
घुन लगी आजादी में

बाबा से बाबू तक यही तो हुआ
उम्र से दोगुने कर्ज में डूबे हैं
अपना तो डीह भी जायेगा सूखे में
घर से भी बेदखल पूरे ये सूबे हैं

यह जालिम घुसखोरी
कब तक छिपा रहेगा
अपना लाल सूरज भी
इस मोटी खादी में

भूखों की जमात लूटने चली
खेतों, खलिहानों, खदानों की थाती
अब मेहनतकश हाथ नहीं काटेंगे
चमकते हँसिये के संग ये दरांती

दूध-फूल से बढ़ेंगे
बच्चे कच्चे
ओसारों पर किलकेंगे
इन बून्दाबान्दी में ●

हरापन ओढ़ती है

फिर हरापन ओढ़ती है
ताल में झरती कमल की पंखुरी

हवा बहते ही चमकती
ये भरी आँखें
डाल पर तैयार उड़ने को
रुकी पाँखें
उस शिवाले के कलश पर
मेघ फूँके बंसरी

उजाला सा फूटता पथ
दीखते वन के
पाँव में छाले लिये
पायल कई खनके
मोड़ पर भरती कुलाँचें
हिरनियाँ जो थीं डरी

अवतरण होगा बहेगी धार
गंगा की नई
गाँव की पगडंडियों में
राजपथ होंगे कई
छाप नंगे पाँव की
अब शहर में लगती बड़ी

●

दिन आये

दिन कैसे-कैसे आये
दिन आये

रंगों का पुड़िया उड़ा
हवा लाल हुई
बादल की देह यों लगी
गुलाल हुई
दुख के अँखुवे पल में मुरझाये
दिन आये

दूब ने कनखियों से
क्या देखा
खिंची हुई भाल पर
सगुन रेखा
गाँव के सीवान लाँघ आये
दिन आये

नदी-घाट
सूखते अंगोछे
धूपों ने लहर के
मुँह पोछे
कहा धीरे, लो जी! हम आये
दिन आये

हाथों से हाथों
की दूरी
भली रही यह भी
मजबूरी
साँस पर पहाड़ उठा लाये
दिन आये

●

गमला करोटन का

बहुत खुश हूँ
खुश बहुत हूँ
हाल अपना लिखो
क्या हुआ कल रात आयी
जोर की आँधी
नीबुओं की पत्तियाँ फिर
रात भर जागीं

समय कम है
कम समय है
हर मुहिम पर दिखो
एक गमला करोटन का
ले गया कोई
अँधेरे में पत्थरों को
बो गया कोई

तेज कर उड़ानों को
उड़ानों को तेज कर
धीरज रखो
अलग मत करना कभी
इस कठिन दिन को
छाँह में भी धूप के किस्से
कहो मन को
खेत में फसलों सी
फसलों सी खेत में
दिन-दिन पको

●

खुशबू के आखर

सहमे-सहमे पत्ते डोले
चिड़ियों की पाँखों को खोले
हवा उधर से बहती जाना
खुशबू के आखर लिख आना

नींदों में बतियाती पलकें
ओठों के संगम पर चलके
टुकड़े जोड़ रही दिन भर की
बातों में जी का दिख जाना

पूरे दिन की थकी हुई सी
मूंगों जैसी टँकी हुई सी
हँसियों का झरना बह जाना
अपना सुन्दर घर भर जाना

बहुत दिनों पर बेटी जैसी
घर आई हो खुशी भली सी
इस दिन को सौ जनम बनाना
सुख को साँसों में रख जाना

●

भीतर-भीतर आग

भीतर-भीतर आग बहुत है
बाहर तो सन्नाटा है

सड़कें सिकुड़ गयी हैं भय से
देख खून की छापें
दहशत में डूबे हैं पत्ते
अंधकार भी काँपे

किसने है यह आग लगायी
जंगल किसने काटा है

घर तक पहुँचानेवाले वे
धमकाते हैं राहों में
जाने कब सींघा बज जाये
तीर चुभेंगे बाँहों में

कहने को है तेज रोशनी
कालिख को ही बाँटा है

कभी धूप ने, कभी छाँव ने
छीनी है कोमलता
एक करोटनवाला गमला
रहा सदा ही जलता

खुशियों वाले दिन पर लगता
लगा किसी का चाँटा है

●

गाँव नहीं छोड़ा

दरवाजे का आम-आँवला
घर का तुलसी-चौरा
इसीलिये अम्मा ने अपना
गाँव नहीं छोड़ा

पेबन्दों को सिलते -
मन से उदास होती
भैया के आने की खूशबू -
भर से खुश होती
भाभी ने कितना समझाया
मान नहीं तोड़ा

कभी-कभी बजते घर में
घुंघरू से पोती-पोते
छोटे-छोटे बँटे बताशे
हाथों के सुख होते
घर की खातिर लुटा दिया सब
रखा न कुछ थोड़ा

गहना बनने वाले दिन में
खेत खरीद लिये
बाबूजी के कहे हुए सब
सपने संग लिये
सह न सकी जब खूँटे पर से
गया बैल जोड़ा
इसीलिए अम्मा ने अपना
गाँव नहीं छोड़ा

●

तुमको चाहा कितना

तुमको चाहा कितना-कितना मैंने अपनी चाह में
सूरजमुखी खेत में झूमे, फसलें खड़ी गवाह में

रुकता नहीं प्यार, प्यार यह
नदी, झील पर्वत-सा
मीठा-मीठा लगे रात-दिन
शहद-घुले शरबत-सा

लाज का गहना पहने तेरी
आँखें बसी निगाह में

इन हाथों से रची रोटियाँ
प्यारी पकवानों-सी
लहू उगाती क्षण-क्षण मुझ में
ममता वरदानों-सी

धूप-हवा-पानी इस घर के
घूमे भली सलाह में

अबके काट रहा जब मैं खुद
अपने हाथों फसलें
परस तुम्हारें हाथों का भी
कहता मिलकर हंस लें

पीला फूल कनेर एक खिलता
है तो दिन-माह में

बाजूबंद नहीं है तो क्या
मुक्त हवा तो है
देने को अपने हिस्से में
रक्तजवा तो है

साथ-साथ जीते-मरते हैं
रहते इसी उछाह में ●

धीरे पांव धरो

धीरे पांव धरो !
आज पिता-गृह धन्य हुआ है
मंत्र-सदृश उचरो !

तुम अम्मा के घर की देहरी
बाबूजी की शान
तुम भाभी के जूड़े का पिन
भैया की मुस्कान

पोर-पोर आंगन के
लाल महावर-सी निखरो !
धीरे पांव धरो !

तेरी हंसी पहनकर गाये
फूलों की टहनी
तुम अन्तर की भाषा में
सपनों के सूत बनी

आंचल भरकर दूब-धान
सिन्दूरी नमन करो !
धीरे पांव धरो !

जीवन की अल्पना रचेंगे
सुख के मीन-मयूर
लहठीवाले हाथ तुम्हारे
माथे का सिन्दूर

पितरों के गौरी-गणेश को
पूजो, वरन करो !
धीरे पांव धरो !

●

एक प्यार

मुझमें अपनापन बोता है
साँझ-सकारे यह मेरा घर

उगते ही सूरज के
रोशनदान बाँटते ढेर उजाले
धूपों के परदे में खिल-खिल
उठते हैं खिड़की के जाले
चिड़ियों का जैसे खोंता है
झिन-झिन बजता है कोई स्वर

एक हँसी आँगन से उठती
और फैल जाती तारों पर
मन की सारी बात लिखी हो
जैसे उजली दीवारों पर
एक प्यार सबकुछ होता है
जिससे डरते हैं सारे डर

दरवाजे पर साँकल माँ की
आशीषों से भरी उंगलियाँ
पिता कि जैसे बाग-फूटती
एक स्वप्न में सौ-सौ कलियाँ
जहाँ परायापन रोता है
लुक-छिप खुशी बाँटता मन भर

●

एक सूर्य रोटी पर

यह भी हुआ भला
कथरी ओढ़े तालमखाने
चुनती शकुन्तला

कन्धे तक डूबी
सुजनी की देह गड़े कांटे
कोड़े-से बरसे दिन
जमा करे किस-किस खाते
अँधियारी रतनार प्रतीक्षा
बुनती चन्द्रकला

मुड़े हुए नाखून
ईख-सी गाँठदार उँगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ
खुरपी-सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने
केसर का बाग जला

बीड़ी धुकती ऊँध रहीं
पथराई शीशम आँखें
लहठी-सना पसीना
मन में चुभतीं गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा
चाँद नून-सा गला

●

पेड़

इस तरह होते बड़े ये पेड़
नहीं केवल चुप खड़े ये पेड़

टहनियों में दुख रहीं
नोकें सवालों की
बज रही समवेत धुन
कलछी-कुदालों की
हो नहीं पाते हरे ये पेड़
जड़ों से बेहद कड़े ये पेड़

आज तक खाते रहे
जो दुधमुंहे हिस्से
चुभ रहे उनको उन्हीं के
दाँत के किस्से
खुद-ब-खुद उनसे लड़े ये पेड़
भर रहे खाली घड़े ये पेड़

उगी, हाँ अब उगी
किरनें रोटियोंवाली
साँझ दहशत में सनी
होगी नहीं काली

दीखते कितने बड़े ये पेड़
नहीं मरकर भी मरे ये पेड़

●

फिर पलाश - वन दहके

याद तुम्हारी जब भी आये
ऐसे आये
सन्नाटे में दबी चीख नंगी हो जाये

डोल रहा मन तेज हवा में
जैसे दूकानें टिन की
आँखों में आकाश टूटता
सड़कों पर स्याही दिन की
अपने ही घर के आगे गोली चल जाये
कटहल के पत्तों पर बैठी चिड़िया उड़ जाये

जरद किनारीदार पहनकर
साड़ी पूजा-घर में
जैसे कोई माँ असीसती
बेटा कैद शहर में
राइफलों के कुन्दों में ज्यों कुचला जाये
जैसे बागी देशभक्त कोई मर जाये

किसी तिलस्मी-कथा सरीखे
आसंगों में बहके
तब तो ऐसा लगा कि फिर
कोई पलाश-वन दहके

मगर भूख-रोटी में जैसे महायुद्ध घिर आये
ऊंघ रही आंखों पर गर्म सलाखें भिड़ जायें

●

गेरू की लाली

फूलों का मौसम होठों पर
ओसों का टीका माथे पर
खेतों की माटी में खूब
नहायी लगती हो

गालों पर गेरू की लाली
लाली में खुशबू की जाली
घर में झाँक गयी जैसे -
पुरवाई लगती हो

मन में गमक भरी अगहन की
छँटने लगी उदासी जन की
थोड़ी हुई उदास कि चीज
पराई लगती हो

लहकी दुनिया अहसासों में
बीत गये दिन की बातों में
रामकसम, पहले से अधिक
लजायी लगती हो

●

बूँद पसीने की

देह साँवली पहने चकमक बूँद पसीने की
परब-तिहारों पर भी
तन पर वही पुरानी साड़ी
जंगल-झरने, पेड़-पहाड़ों
पर लगती है भारी

आधी झुकती डालों वाली कली नगीने की
साँसों में भीगेंगी आँखें
टपके महुवे कच्चे
बाँहों पर ताबीज लपेटे
हँसी दबाये बच्चे

गोबर-माटी सने हाथ में भाषा जीने की
बिना बात जो कभी न हँसती
कभी नहीं रोती है
आग पेट की वह केवल
आँखों में बोती है
लम्बी-चौड़ी दुनिया की पहचान उसी ने की

●

शंख बजाकर

शंख बजाकर बरसे बादल
खेती लहरी है

अँकुरे रेह-रेह में बीहन
मन में खेत टँके
दुख कोई भी नहीं कि
पहले हँसुली-बाँक बिके
सुनती नहीं हवा कछेर की
सचमुच बहरी है

चाह रही सुख को मुट्ठी में
बंद करे गाये
दुख के साये दूर-दूर से
आकर नहीं डराये
पोखर के जल नहीं बनेगी
आशा दुहरी है

खेत बटाई के देते हैं
नहीं रात भर सोने
सपने में सपने आते हैं
घर-विवाह-गौने
पाँव रंगे हैं लाल रंग में
खुशियाँ ठहरी हैं

●

खेत के नाम

बोये हुए बीज खेत में
रचते हैं रंगोली
अँकुरायेंगे तब सखियों की
होगी हँसी-ठिठोली

अपनी इच्छा, अपने सुख-दुख
और सभी डर अपने
नाम खेत के लिखकर हमने
बचा लिये कुछ सपने
इस बचाव में अनसुनी हो गयी
उनकी कड़की बोली

माँ की रोटी, नमक बहन का
और हँसी घरवाली
हलकू ने तो देखा केवल
रात पूसवाली
घीसू, माधो बिरहा गाते
साथ चल रही टोली

दुख सहकर ही हमने दर्द
भुलाया है दुख का
बचा हुआ है आँखों में
अभियान गीत सुख का
बहुत दिनों के बाद हवाओं
ने आँखें खोलीं

●

रोटी पर नमक

जाने कैसे मेड़ टूटता
बहा खेत का पानी
अपनी ही तकदीर आज
लग रही परायी सी

रोटी पर हो नमक कभी
तो प्याज नहीं मिलता
बथुवा के सागों में पिछला
स्वाद नहीं मिलता

दाने मकई-मटर के जैसे
मुट्ठी से रिसते
मन की अभिलाषा लगती
कमजोर कलाई सी

जब से बाढ़ अकाल हुए
हैं बच्चे डरे हुए
आँखें उड़ती हैं पतंग सी
पहरे कड़े हुए

किस-किसकी कहते
जीती इच्छायें साँसत में
बरस रहे सावन के जल में
दियासलाई सी

श्रम की थकन मिटे कैसे
जब रोटी-दाल नहीं
पूरा घर देने की खातिर
खुशी निहाल नहीं

कैसे कटें पूस की रातें -
बिन कम्बल सहते
हँसी और नींद पसरी है
फटी रजाई सी ●

अकाल में बच्चे

सन्नाटे में सीटी बजती
बस कुछ और नहीं
इस अकाल में बच्चे रोते
मुँह में कौर नहीं

जड़ पत्थर से खड़े शहर के
दोनों ओर मकान
यहाँ घरों के नाम खुली है
आदमखोर दूकान
सोख रहे प्रतिफल साँसों को
हम तो और नहीं

कैसे हँसे-हँसाये कोई
सुलग रही हो आग
कन्धों पर सपनों के जूए
बजते आदिम राग
ठण्डे चूल्हे के हाथों को
करते गौर नहीं

सदी यहाँ तक फेंक गयी है
हमको दिखा बताशे
उनके हाथों ढोल कभी तो
बन जाते है तासे
आशीषों से हमें रचे जो
ऐसा दौर नहीं

●

आस्था का गीत

नहीं चाहिये आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात

हम गरीब मजदूर भले
हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नई बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे

कच्चे गीतों से अच्छा है
नारा एक लिखो
बँधे हुए द्वीपों से बेहतर
धारा एक दिखो
लेकर श्रम का नाम चले
लाल मशालें थाम चले
हाथ-हाथ मिल रोशनियों का तीज मनायेंगे

टुकड़े-टुकड़े जुड़े मगर
पेबन्द नहीं होंगे
जो बादल गरजे भर
वह अनुबंध नहीं होंगे

खाई-खन्दक पाँव तले
कट जायेंगे क्यों न गले
तिलक पसीने का रचकर हम जोत जगायेंगे
अब बहसों को छोड़े साथी
सोच नयी बदलें
नए सूर्य के स्वागत में
फसलों-से हम झुक लें
जोर-जुल्म अब बहुत खले
आग हथेली पर रख ले
देखें सब दम-खम वैसा संगठन बनायेंगे

●

आँखों में आग

तुमने धरती पर हल से
अपना अधिकार लिखा
ओ रे फौलादी तुमने
अपना घर-बार लिखा

खेतों की मेड़ों का आज
दिखा तो सही दहकना
मिहनत से धरती पर गिरता
चंदन हुआ पसीना
उजले दिन की आहट ले
यह भी सौ बार लिखा

चिड़ियों के डैनों से
खुलते आये दिन उजले
फिर कोई जल-गीत लगे
नभ से उतरे हौले
बिछा हुआ कालीन फसल का ही
हर बार दिखा

अलमुनियम के तसलों में
पकते भातों सा उबले
खान-खदानों खलिहानों में
किरणें मिलीं गले
जंगल के भी पेड़ों को
अपना गुलजार दिखा

●

कोशी के कछेर की लड़की

पहली बार ट्रेन में बैठी
पहली बार शहर आई
कोशी के कछेर का अपना
घर आँखों में भर लाई

खोज रही है खपरैलों पर
पसर गई लौकी की लतरें
गिरने को दीवार मगर है
थाम रही छानों की सतरें
दूब-धान की जगह जानकी
आँचल में ही पियराई

पोखर पर चलते भाई के
कन्धों पर हाथों को डाले
कभी नहीं थकती थी चाहे
पड़ जाये पैरों में छाले
अब तो कल्याणी से आगे
जाने में भी शरमाई

उड़ते पत्तों के संग अब वह
उड़ा नहीं करती राहों में
काले धागे को लोगों से
छिपा रही अपनी बाँहों में
अब तो जान गयी है भोली
फूलों की भी परछाईं

●

मुनिया के घर का सूरज

मुनिया के घर का सूरज भी
अब पढ़ने-लिखने लगा
मुनिया की माँ का माथा अब
आगे बढ़ दिखने लगा

गाय नहीं कहती अब
वह मुनिया को
लगी समझने फिर से
इस दुनिया को
अपना ही गाँव-घर उसे अब
अपना सा लगने लगा

अभी बहुत छोटा है
उसका भाई
जिसकी खातिर बचाकर रखी
बड़ी कमाई
मुनिया का मन अब हाथों की
रेखा को पढ़ने लगा

इक हाथ में चाँदनी
इक है काला
आनेवाला दिन खोलेगा
उसका ताला
खेत-पथार-जबार सभी पर
वह नारा लिखने लगा
अंधकार से लड़नेवाली
मुनिया का चाँद तमगा

●

बड़े लाल घर में

नहीं पास में बीड़ी थी
और नहीं घड़े में पानी
बैलों सा खटकर जब आया
बड़े लाल घर में
चार घरों में बरतन मलती
उसकी बड़ी बहू
सूख रहा पैसे की खातिर
उसका लाल लहू
बाताबाती में रह जाता
बड़े लाल घर में
खींच न पाता रिकशा जब
साँसों पर ढोता ठेला
जबतक जिनगी है तब तक
ऐसा ही होगा मेला
गोइठा-करसी सुलगाता है
बड़े लाल घर में
एक बिछाता एक ओढ़ता
दो टुकड़े धोती के
ओमा की दूकान तक जाता
हाथ पकड़ पोती के
दुख को ही दुख सौंप रहा है
बड़े लाल घर में
यादों में है जीवित अभी
जवानी की यादें
हाँक बैलगाड़ी की
रस्ते पर मन को साधे
सोते में जग-जग जाता है
बड़े लाल घर में

●

आटे सी पिसती माँ

तनी शिराओंवाले हाथों
बिखर गये कुछ फूल
किसी पुरानी पीड़ा को मन
करता नहीं कबूल

रूप बदलकर आते हैं
फिर से कितने ही घाव
आँखों के रेशों में फिर
होता है कहीं जमाव
धीरज कहीं चटखने लगते
गड़ते कहीं बबूल

जब से देखा है माँ को
आटे सी पिसती हुई
बहन कभी तितली सी थी
अब चुभोती हुई सुई
गाँव-वनों-शहरों में फाँके
अपना भाई धूल

लगे न कोई गंध-विंधा
आँगन में जलती आग
खून-सनी माटी गीली
के सीने पर हैं दाग
एक लपट बन हिला गये हैं
छल के चिकने शूल

सफर बड़ा यह लम्बा है
इतिहास बड़ा संगीन
भूमिहीनों को पट्टे पर -
है बंजर मिली जमीन
मूठ हथौड़े-हल की पकड़े
दिये समय को तूल ●

उदास आँखें

उनको नींद नहीं आती है
लम्बी रात गये
सोच रहे इससे निकलेंगे
रस्ते कई नये

फटी हुई माँ की साड़ी
घर की उदास आँखें
खाँस रहे बाबू के इन
हाथों पर रखी सलाखें
पीठ दिखाई दे भाई की
कई बोझ लिये

धँसकर खोज रहे मछली
हम धूसर पानी में
बंसी में फँसती मछली
यह सहज कहानी में
जेल हमारे लिये बनी है
कुदिन हाथ सिये

दीवारों के विरवों सी
मजदूरी जब रोती
रेलों की छत पर करते
हम सपनों की खेती
कभी असम, पंजाब कभी हम
हुए यही जिये

●

निम्न मध्यवर्ग का गीत

सारा घर-आँगन लिखबा लो
भाभी, यह दलान लिखबा लो
पर अपने हिस्से भैया का प्यार
नहीं दूँगा
घुटनों के बल चले यहाँ पर
खाये खील-बताशे
दीवाली में लपट लाँघते
खूब बजाये ताशे
यह माँ का कंगन बिकवा लो
भाभी, यह अनबन दिखवा लो
पर इस आँगन में बनने दीवार
नहीं दूँगा

सबके हो जायेंगे आधे
माँ का क्या होगा
कैसे आधी होंगी 'काली'
गहबर का क्या होगा
बाबूजी का धोतीवाला तार
नहीं दूँगा

यह अनार ले जाओ भाभी
मुनुवाँ को देना
अपने काका की आँखों का
पानी सा रहना
लालपरी का छोटा घर-संसार
नहीं दूँगा

●

उदास हँसी

कल बाजार बन्द था
टिन में आटे नहीं पड़े
भूखे सो जायेंगे बच्चे
बाबा नहीं फिरे
दिन के पन्नों पर धीरे स्याही हुई जमा
एक उदास हँसी हँसती रहती है माँ

दीदी की आँखों में पिछली
रितु के रंग भरे
छत पर भींग गये सब के सब
सूख रहे कपड़े
असमय दिन में बदली ऐसे गयी समा
एक उदास हँसी हँसती रहती है माँ

बिना रुके दफ्तर की
यह आवाजाही
धीरे-धीरे मन ही अब
हो गया सिपाही
मुमकिन है फिर लायेंगे गाढ़ी नींद कमा
एक उदास हँसी हँसती रहती है माँ

अलग शहर से अबके
काम विजयवाड़ा में
बचपन, हँसी, नींद ले घर से
दूर रहे जाड़ा में
हाथों की मेंहदी आँखों में आई सगुन थमा
एक उदास हँसी हँसती रहती है माँ

●

शिशु की पहली साँस

शिशु की पहली गर्म साँस
जैसी अगहन की धूप
आती है तो किलकारी जैसी लगती है

रंग-विरंगे पंख ढूँढ़ते
बादल ये उतर रहे
गीले खेतों में जाकर
ओसों को कुतर रहे

मँजराते हुए पलास
रंग बिखेरकर नींदें
जगती हैं तो फुलवारी जैसी लगती हैं

तपे हुए हाथों वाले
सपनों के छूने भर से
सधे पाँव आते है जीवन
लगते जगर-मगर से

ये हिलते उजले कास
भाषा पहन खामोशी
अपनी केसर की क्यारी जैसी लगती है

●

नदी चिनगी सी

खिलखिलाती बहुत हँसती
गाँव की लड़की

चुनती साग खेत में -
करती हुई हवा से बातें
जैसे बड़ी बात को
छोटी खबर बनाकर छापे
टोकती है कभी कातिक
में लगी कड़की

धानी खेतों में नचना
चिड़िया की आँखों का
मीठा एक बोल लगता है
सबको लाखों का
नदी दहक चिनगी सी
धीरे से सरकी

खत को पढ़ती हुई
नयी धूपों में बँटी हुई
सीढ़ियाँ हरियाली की
फिर से चढ़ती हुई
शोभा है, पूँजी है वह
अपने नये घर की

●

मेघ इन्द्रनील (मैथिली गीत)

बेटीक लेल एक गीत

बेटी तोर सपना मे एक इन्द्रधनुष
पैरे-पैर उतरय, गोरे गोर उतरय
तोहर नीन मे चिरैयक पाँखि उड़य
एक गीत के किरिन भोरे भोर उचरय
एक जंगल लाल बिरिछ सँ भरल
अरिपन काढ़ल चौमुख पोखर
रोटी सँ लुबधल डारि-डारि
पुरइन संग झलमल बड़-पीपर
तोहर फ्राकक जेब मे अनार भरल
करविलक लाल टहनी गमकय
हरियर धानक ओ काँच सीस
दूधक आखर पोरे पोर सगुनय
तोर तरहथ बहय अकासगंगा
रोसनीक नदी ने कहियो सूखय
तीसी-जौ-गहुमक खेत-खेत
दुनू चान-सुरुज एकटक देखय
बेटी तोर आंगुर सँ रचल कविता
आँखिक उदास पाँतर परसय
तोर देहक गंध पहिर देहरी
हरदम लागय जे तिहार बरसय
तोहर हँसी नहाएल हवा बहत
फर-फर उड़ियाएत रिबन लाल
देखितहि जरि जाएत दुखक बोन
नवका दिन भेटत कमल-ताल
बेटी तोर संघर्षक माँजल मन
सोनक कलसी झलमल झलकय
जेना बाढ़य मौसम, रौद, गाछ
ओहिना आँखिक आशा निखरय ●

लाल काका

खेतक आड़ि पर ठाढ़ भेल
उदास लागथि लालकाका
उजरल सोहाग सन लागय
बाढ़ि सँ धोअल-पोछल गाम
गील माटि पर खिंचल रेख
मोनक कमजोर प्रणाम
आँखि तेना ऊसर भ गेल
पेट सँ देखथि लालकाका
जंगली हवा सन दौड़ैत छल
बिछिया बन्हने सगुनी बेटी
होरीक मादल सन ठनकि पड़य
बेटाक बोल सपनक पेटी
ओ कथा कहाँदन दहा गेल
हाथ सँ बाजथि लालकाका
टूटल खटिया पर देह पड़य
तँ लागय तड़कि जैत पसली
पछिला सुदभरना पड़ल रहल
देहक खातिर बीकल हँसली
टीनक थारी हो जेना जेल
चुपचाप सोचथि लालकाका
एहि बेर जँ फेर गाम एता
किछु मांगय पंचसाला बाबू
अपन आँत कें लाख दबेता
उघड़त ओ हटि जाइत काबू
एक अगिनकुंड सन दहकि गेल
मुट्ठी बान्हथि लालकाका

●

नयी बात नहीं

शव किसी युवती का है
इसलिये भीड़ है
देखनेवालों की
उठानेवालों की नहीं
एक दूसरे का मामला बताकर
गाँव और रेल पुलिस का
टालमटोल
कोई नहीं बात नहीं
जहाँ वह मिली है
गटर में
वहाँ सैकड़ों किस्सों के
सैकड़ों मुँह
लिखी हैं जाने कितनी कहानियाँ
उसके सिरहाने-पैताने
उसकी आत्मा में
ईश्वर नहीं था
या उसकी आत्मा तक
नहीं गया ईश्वर
वह सिर्फ देह थी,
देह के साथ रही,
देह लेकर मर गई
मनुष्य होने की आदिम परिभाषा
पर भी
पत्थर रख गई

●

फसल की किताब

उसकी आँखों में
चूल्हे की धौंक,
भुनती मछलियों की गंध
उसके होंठ, उसकी साँस,
उसके लहू में
अगहनी फसल की
फुनगियों पर दौड़ती
हवा के नृत्य होते थे
सूर्य और धूप की बातें करता था
हल जोतकर आया
वर्षा के गाछ की तरह
हरियाया उसका 'आदमी'
आटा गूँथना छोड़
वह चली जाती थी
उसके पास
सुबह के मैदान में जैसे
हवा दौड़े
दौड़ने लगते थे उसके सपने
फसल की पूरी किताब
लगती थी वह
जिसको हवा में
धीरे-धीरे खुलते
देखता था अपने मुख पर
ओस लपेटे
वह

●

गीत **शान्ति सुमन** की रचनाधर्मिता का स्व-भाव है, जिसे उन्होंने काव्याभिव्यक्ति की दीगर तमाम भंगिमाओं के बीच-शिद्दत से जिया और बचाये रखा है। यही नहीं, समय के बदले और बदलते संदर्भों में अनुभव-संवेदनों की नई ऊष्मा और नया ताप भी उन्हें दिया है। इसी नाते उनका नाम प्रगतिशील आन्दोलन के साथ आरंभ हुई जनगीतों की परम्परा को नयी सदी की दहलीज तक लाने वाले जनगीतकारों में पहली और अगली कतार का नाम है। जनधर्मिता और कविताधर्मिता का एकात्म हैं **शान्ति सुमन** के गीत, जो कविता को उसके वास्तविक आशय में जन-चरित्री बनाते हैं, उसे जन की आशाओं-आकांक्षाओं से बेहतर जिन्दगी के उसके स्वप्नों तथा संघर्षों से जोड़ते हैं। **शान्ति सुमन** के गीतों में उद्‌बोधन, आवेग और एक उमंग-तरंगित मन का उत्साह भर नहीं, समय की विद्रूपताओं से उनकी सीधी मुठभेड़ और ठोस यथार्थ का वह खरा बोध भी है, जिसे जन और उसके जीवन-संदर्भों के बीच से उन्होंने पाया और अर्जित किया है। गहरे और व्यापक जन-संघर्षों की धार से गुजरे ये गीत आज के विपर्यस्त समय की चपेट में आये साधारण जन के दुख-दाह, ताप-त्रास, उसकी बेबसी और लाचारी को ही शब्द और रूप नहीं देते, स्थितियों से संघर्ष करती उसकी जिजीविषा तथा जुझारू तेवरों को भी जनधर्मी पक्षधरता की पूरी ऊर्जा के साथ रूपायित करते हैं।

- डॉ. शिवकुमार मिश्र

Scanned by CamScanner

पूँजीवादी व्यवस्था की प्रत्येक अमानुषिकता को वे **(शान्ति सुमन)** छन्द और लय में ढालकर क्रांतिकारी चेतना की वाहिका बन सकी हैं। आरम्भिक जनवादी गीतों की नारेबाजी से शीघ्र ही निकल कर **"एक सूर्य रोटी पर"** जैसे श्रेष्ठ कालजयी गीत की रचना वे कर जाती हैं। समय से संघर्ष करने के क्रम में **शान्ति सुमन** ने ईश्वर की चोरी न कर, उसके समानान्तर, उसके सामने खम ठोंककर खड़े इन्सान की जीवंत प्रतिमा गढ़ी है। किसान और मजदूर का श्रम और संघर्ष लिखकर भी वे प्रगतिवादी नहीं, बल्कि जनवादी गीतकर्त्री हैं। यानी वे इतिहास दुहराने को नहीं, वरन् इतिहास रचने के लिये गीत के क्षेत्र में आईं। इन गीतों में श्रम और पसीने का बहुत ही मर्मस्पर्शी भावन मिलता है। मुड़े हुए नाखून, लहठी सना पसीना, सड़कों पर दिन की स्याही, आँखों में सूखे कुएँ, अलमुनियम के तसलों में उबलते भात, तड़कती हुई पसलियाँ, पाँव भर सीढ़ियाँ चढ़ती थकानें – ये जीवन के यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं। श्रम और जन के घात–प्रतिघात से ये गीत बने हैं। ये गीत भारतीय जीवन की विपत्तियों के ऐशट्रे हैं। हर प्रकार के दुख, हर प्रकार के दर्द, हर तरह के अभाव इन गीतों की भाषा और लय में ढलकर मधुरतम बन गये हैं। यही गीतकर्त्री की रचनात्मकता है। हिन्दी के जनवादी गीतों के बड़े हस्ताक्षरों में एक हैं – **शान्ति सुमन**।

– डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह

Scanned by CamScanner